विश्व मे जितने भी धर्म हैं, सबकी अपनी-अपनी आचारसहिताए है। ये आचारसहिताए धर्म गुरुओ के जीवन को नियमो-उपनियमो के नियत्रण मे रखने के लिए इसलिए अत्यावश्यक है कि वे आध्यात्मिकता की उच्च भूमिका का सरलता से स्पर्श पा सकें। जैन मुनियो के लिए विहित आचारसहिता, विश्व की प्राचारसहिताओ मे कठिनतम और कठोरतम है। आजीवन नग्न-पदयात्रा, केशलुचन और दु सह-परीषह सहन, ऐसी श्रामणी चर्याए हैं जिनका पालन असभव नही तो दु शक्यता की चरम-सीमा को निश्चित रूप से स्पर्श करता है। जैन सन्त सासारिक परिग्रह और प्रलोभनो का सर्वथा परित्याग करके, मान-अपमान, निन्दा-स्तुति के प्रति तटस्थ भावना रखते हुए और विकारो से अपने आपको रिमार्जित करते हुए, आत्मविजय के प्रशस्त पथ पर कदम बढाता है। यह पथ बडा ही दुर्गम है। इस पर अनेक बाधाए हैं। जैन सन्त का कोई निरादर कर दे तो वह उसे अमृत समझकर पी जाता है, बदले मे अपमानकर्ता को कटुवचन नही कहता। वह अपने ऊपर प्रहार करने वाले के प्रति भी करुणा प्रदर्शित करता है। ससार के प्राणीमात्र के प्रति उसका हृदय सदा मैत्री और करुणा से अनुप्राणित रहता है। सासारिक विषयो से विमुख रहकर भी, वह ससार की भलाई के प्रति कभी विमुख नही होता। किसी का उपकार करके बदले मे फल की कामना की भावना कभी उसके मन मे नही आती। स्वय को दी जाने वाली पीडा को जैन सन्त, प्रसन्नता से सहन कर लेता है परन्तु दूसरे प्राणियो को दी जाने वाली पीडा उसके लिये असह्य हो उठती है। नि सन्देह उसकी साधना आत्म-कल्याण-केन्द्रित होती है किन्तु लोक-कल्याण को वह आत्म-कल्याण का ही साधन मानता है। स्वामी चान्दमल जी महाराज एक ऐसे ही जैन सन्त थे जिन्होने श्रामणी आचारसहिता का बडी तल्लीनता, तत्परता और दृढता से पालन किया और आगामी सन्त-परम्परा के लिए स्वय को एक ज्वलत आदर्श उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया। प्रस्तुत पुस्तक मे श्रामणी आचारसहिता की सक्षिप्त रूपरेखा और स्वामी चान्दमल जी महाराज के सासारिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक जीवन का स क्षिप्त विवरण है।

मूल्य १८ रुपये

चरित्र-नायक

(जन्म सवत् १९५०—समाधि सवत् २०२५)

पूनम का चाँद

पूनम का चाँद

स्वामीजी श्री चान्दमल जी महाराज का संक्षिप्त जीवन-वृत्त

ग्रथकार

डॉ० पुरुषोत्तम चन्द्र जैन

एम.ए , एम ओ एल , पी-एच डी

प्रकाशक

जयध्वज प्रकाशन समिति, मद्रास

● जयध्वज प्रकाशन समिति ग्रथमाला पुष्पाँक—सात

● ग्रथ

पूनम का चाँद

● ग्रथकार

डॉ पी सी जैन

● प्रकाशक

जयध्वज प्रकाशन समिति, मद्रास

● प्रकाशन

वीर सवत् २५०६

विक्रम सवत् २०३५

ईस्वी सन् १६७६

● आवृत्ति प्रथम

● प्रति ११००

● प्राप्ति स्थान

पूज्य श्री जयमल जैन ज्ञान भडार,

पीपाड शहर, राजस्थान

● मुद्रक · निर्मल कम्पोजिंग ऐजेंन्सी, ७२७ जूड वाग त्री-नगर देहली-३५ द्वारा मोहन प्रिटिंग कार्पोरेशन मे छपा ।

समर्पण

परम शान्तमूर्ति,
भवसागर सतरण की साकार प्रेरक स्फूर्ति,
आगम मर्मज्ञ,
आत्म-तत्वज्ञान के रसज्ञ,
परम श्रद्धेय, महामहिम,
आचार्य प्रवर श्री जीतमल जी महाराज,
एवम्
आगम-ज्ञान-गरिमा से गरिष्ट,
मुनिरत्न मडल मे वरिष्ट,
अध्यात्म-पथ के पथिको मे अतिशिष्ट,
आगम वक्ता, पडित रत्न,
मुनि श्री लालचद जी महाराज,
के
पुनीत कर कमलो मे . . .

जिनकी
प्रेरणा, प्ररूपणा,
प्रोत्साहन एव पथप्रदर्शन
से ही
इस ग्रथ का
वपन, अकुरण,
पल्लवन और फलन
सभव हो सका है ।

"पुरुषोत्तम"

अनुक्रमणिका

द्वितीय खण्ड

प्राक्कथन

जो धर्म-सम्प्रदाय अपने संतो, विद्वानो, विचारको एव उपदेशको को भुला देता है, वह धीरे-धीरे अपनी शक्ति क्षीण कर लेता है। अत किसी भी धर्म-सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्तक की वाणी के विवेचन एव विश्लेपण की जितनी आवश्यकता होती है, उससे कही अधिक हमे अपने समकालीन अथवा निकट-भूत के संतो, चिन्तको आदि के विचारो को विवृत करने की आवश्यकता होती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि समकालीन अथवा निकट-भूत मे विद्यमान संत हमारी मन स्थितियो एव समस्याओ को अधिक गहराई से समझ लेते हैं और उन्ही के निदान के लिये प्रवचन करते है। सौभाग्य का विपय है कि भारत के धर्मो मे महत्वपूर्ण स्थान रखने वाले जैन धर्म के आचार्य, संत एव अनुयायी सभी इस तथ्य से भली-भान्ति परिचित है। इसके प्रमाणस्वरूप, प्रस्तुत है 'पूनम का चाँद' नामक पुस्तक जिसमे स्वामीजी श्री चादमलजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-वृत्त प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक डॉ० पी० सी० जैन को न केवल ४० वर्ष से अधिक का अध्यापन-अनुभव प्राप्त है, अपितु वे ३० वर्ष के शोध-अनुभव से भी सुशोभित है। वे न केवल संस्कृत के अन्तर-राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त विद्वान है, अपितु हिन्दी और अंग्रेजी के भी निष्णात पण्डित है। प्राचीन भारतीय इतिहास पर एव अर्थशास्त्र पर तो आपका विशेष अधिकार है। वे जैन धर्म के न केवल सिद्धान्तो के मर्म को समझते है, अपितु वे इनके व्यावहारिक पक्ष से भी भली-भान्ति अवगत है। अत 'पूनम का चाँद' जैसी पुस्तक लिखने का महान् उत्तरदायित्व उन जैसा समर्थ व्यक्ति ही अपने कन्धो पर उठा सकता है। इससे पूर्व वे एक अन्य पुस्तक 'सर्वतोमुखी व्यक्तित्व' लिखकर न केवल जैन धर्मावलम्बियो से श्रद्धा प्राप्त कर चुके है, अपितु सामान्य जन और साहित्यकारो से भी सराहे गये है।

जीवनी-लेखन वडी तपस्या का कार्य है। यह कार्य तब अधिक दुष्कर हो जाता है, जब जीवनी-लेखक को अपने पात्र के जीवन की

घटनाओ का सम्यक् विवरण प्राप्त न हो और उसे खोज करनी पडे। डॉ० जैन ने 'पूनम का चॉद' के लिये ऐसा ही श्रम किया है और उनकी साधना का फल ही यह पुस्तक है।

स्वामी श्री चान्दमलजी महाराज, इस युग के महान् साधक थे, विराट् चेतना के धनी और उच्चकोटि के कलाकार थे।

डॉ० जैन प्रस्तुत पुस्तक-लेखन मे अपनी प्रेरणा शक्ति के मूलस्रोत की ओर सकेत करते हुए कहते है 'चरित्र-नायक के गुरु भाई विद्वद्रत्न वर्तमान आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी महाराज एव उनके भ्रातृज्य शिष्य पण्डितरत्न मुनि श्री लालचन्दजी महाराज ने प्रेरणा प्रदान की'—ऐसे मुनिराज के पावन जीवन की रूप-रेखा लोक कल्याण निमित्त प्रकाश मे आनी ही चाहिये।

'आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी महाराज एव प० रत्न मुनि श्री लालचन्दजी महाराज के योगदान के फलस्वरूप स्वामीजी चान्दमलजी महाराज सम्बन्धी, यत्र-तत्र बिखरी सामग्री प्राप्त हो मकी।'

'स्वय श्री चान्दमलजी महाराज द्वारा यत्र-तत्र कापियो मे, पन्नो मे, डायरियो मे लिखित पक्तियो से तथा डाक्टर जैन की अनेक वर्षो की व्यक्तिगत पहचान से ही यह ग्रन्थ अपना आकार ग्रहण कर सका है।'

प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रेरणा के मूल स्रोत, उक्त दोनो सन्त रत्न हमारी भी हार्दिक बधाई एव विनम्र अभिनन्दन के पात्र है क्योकि वे आध्यात्मिक साधना के साथ-साथ, साहित्य की समृद्धि द्वारा अपने प्राचीन महामनीषी आचार्यो की परम्परा को और उनकी भावना को साकार एव अक्षुण्ण बनाने की साधना मे भी समान रूप से निरत हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ दो खण्डो मे विभाजित किया है। प्रथम खण्ड है—'जन्म से दीक्षा' इसमे चरित्र-नायक के वश की, माता-पिता, घरेलू परिस्थितियो, जैन सन्तो से सम्पर्क आदि की चर्चा है।

प्रस्तुत ग्रन्थ का दूसरा खण्ड है—'गुरु-शरण से समाधि-ससरण,' जिसमे शास्त्र अध्ययन, पचमहाव्रत-पालन, धर्म-प्रचार, पाच प्रवचनो का सार आदि की चर्चा है।

'स्वामी चान्दमलजी महाराज' डाक्टर जैन के अनुसार, 'सुकुमार शरीर, सुकुमार भावना, सुकुमार व्यवहार, सुकुमार आचार और

सुकुमार विचार से सम्पन्न थे, अर्थात्—एक कलाकार मे अपेक्षित सभी गुण उनमे प्रचुर सख्या मे उपलब्ध थे। स्वामी चान्दमल जी कलाकार इस अर्थ मे थे कि उन्होने अक्षरो के सौन्दर्य की साधना की। उनके अक्षर इतने सुन्दर, आकर्षक और आकृति से समतल और सन्तुलित है कि आजकल के छापे के अक्षर भी उनके सामने शोभाहीन प्रतीत होते है।'

डाक्टर पी सी जैन की शैली एकदम निजी है—जो गद्य मे काव्य का-सा रस प्रदान करने की शक्ति से सम्पन्न है। उपयुक्त विशेपणो के प्रयोग से और सटीक शब्दावली के व्यवहार से पुस्तक की भापा न केवल प्रसाद गुण से सम्पन्न है अपितु अनेक शब्द-अर्थ-अलकारो के सौरभ से भी सुरभित है।

अन्त मे मेरी भगवान् से यह करबद्ध प्रार्थना है कि वह, डाक्टर पी सी जैन को उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु दे जिससे वे मा सरस्वती के वरद करकमलो मे अधिकाधिक शोध-सौरभ-सम्पन्न-पुस्तक-प्रसून अर्पण कर सके। वे एक ओर धार्मिकवृत्ति के लोगो के लिये 'पूनम का चाँद' जैसी रचनाए प्रस्तुत करे, तो दूसरी ओर शुद्ध साहित्यिक प्रेमियो के लिये।

1 'Labour in Ancient India' [from Vedic Age up'to the Gupta period]

2 Socio-Economic Exploration of Mediaeval India (800 to 1300 A D)

जैसे ग्रन्थरत्नो का प्रणयन करते रहे।

२१, अप्रैल, १९७९
एम डी विश्वविद्यालय,
रोहतक।

हेमराज निर्मम,
एम ए, पी-एच डी.

अवतरणिका

इस धरातल पर कितने ही महर्षि, महात्मा, मुनि और साधक हो गये है जिन्होने साधना की व्यग्रता के कारण, ध्यान की समग्रता के कारण, शास्त्रज्ञान की दुर्ग्राह्यता के कारण, चित्तवृत्तियो के निरोध के लिये मन की एकाग्रता के कारण और स्वानुभूति को प्रधानता प्रदान करने के कारण किसी ग्रन्थ का निर्माण तो नही किया किन्तु स्वय की अनुभूति को, स्वय के सयमी जीवन को, स्वय के आदर्श सदाचार को, परोपकार को, स्वय के पावन विचार-प्रचार को और स्वय सन्मार्ग पर चलकर लोक मे उसके सचार को ही एक अनुकरणीय एव आचरणीय आदर्श पुस्तक के रूप मे जन-जन के समक्ष प्रस्तुत किया। ऐसी कितनी ही विभूतिया अतीत मे इस लोक मे आई और अपने आदर्श जीवन की अनुभूतियो के सौरभ से लोक को युग-युग मे सुरभित करके इस ब्रह्माण्ड खड मे अन्तर्धान हो गई। ऐसी ही इस युग की एक महान् विभूति जैन मुनिराज श्री चान्दमलजी महाराज थे। वे अनेक भाषाओ के, आगमो के, विविध शास्त्रो के मनीषी होते हुए भी अपनी आध्यात्मिक साधना मे इतने सलग्न थे, मग्न थे, विलीन थे, और तल्लीन थे कि वे किसी मौलिक ग्रथ की रचना के लिये समय ही नही निकाल पाये। इसका अर्थ यह नही है कि वे साहित्य के ससार का कोई उपकार ही नही करने पाये। वे उच्चकोटि के कलाकार थे—"लिपि-सस्कार" के। उनकी लिपि छापाखाना के अक्षरो का उपहास करती प्रतीत होती है। उसमे आभास है और विकास है—वास्तविकता का—तथा सन्यास है—असौन्दर्य का। उन्होने उस मनोहारिणी, आश्चर्यकारिणी और नयनानन्दसचारिणी लिपि मे बत्तीस अक्षरो की एक लाख पक्तिया लिखी है। उनका सारा जीवन आध्यात्मिक साधना एव लिपि लावण्य प्रदान के प्रयत्न मे ही व्यतीत हुआ। वे इस युग के एक महान् साधक थे, विराट् चेतना के धनी थे, और उच्च कोटि के कलाकार थे। "ऐसे मुनिराज के पावन जीवन की रूप-रेखा लोक कल्याण निमित्त प्रकाश मे आनी ही चाहिए"

यह भावना उनके गुरु भाई, विद्वद्रत्न, वर्तमान आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी महाराज एव उनके भ्रातृज शिष्य, पडित-रत्न मुनि श्री लालचन्दजी महाराज के मन मे जागृत हुई जिसका परिणाम 'पूनम का चॉद' शीर्षक यह ग्रथ पाठको के और श्रद्धालु श्रावको के समक्ष प्रस्तुत है।

किसी भी प्रकार के साहित्य के अभाव मे केवल मात्र स्मृति पटल पर अकित चरित्रनायक के गुणो को, विशेषताओ को, और जीवन से सम्बन्धित घटनाओ को ग्रथ का रूप देना कोई खाला जी का घर नही था किन्तु वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री जीतमलजी महाराज एव मुनिराज श्री लालचन्द जी महाराज के निरतर योगदान से, यत्र-तत्र बिखरी घटनाओ के आदान-प्रदान के समाधान से, उनके द्वारा सुनाई गई चरित्र नायक की चारित्र-चारुता के प्रचुर ज्ञान से, स्वय चरित्र-नायक द्वारा यत्र-तत्र कापियो मे, पन्नो मे और डायरियो मे लिखी गई पक्तियो के भान से और मेरी व्यक्तिगत कई वर्ष की पहचान से ही इस ग्रथ की रचना सम्भव हो सकी है। उक्त दोनो सम्मान्य सन्तो को यदि मैं 'पूनम का चाँद' की ही दो कलाए कह दू तो अतिशयोक्ति नही होगी। परम शान्तमूर्ति, ज्ञानवृद्ध एव वयोवृद्ध आचार्य प्रवर श्री जीतमलजी महाराज एव आगम विशेषज्ञ पडित रत्न श्री लालचन्द्र जी महाराज को भी मैं स्वामीजी श्री चादमलजी महाराज के समान ही वर्तमान युग की दो विभूतिया समझता हू। ये दोनो सतात्माए वीर धर्म के प्रचार मे, सत्य के सचार मे, साहित्य प्रसार मे और सच्चे साधु धर्म के आचार मे दिवानिश निरत है। इस सत्य से मैं तो भलीभाति परिचित हू ही किन्तु जो स्वधर्मी श्रावक उनके सपर्क मे आते रहते है, वे भी इस सत्य की सार्थकता को अच्छी तरह जानते है। इन्ही दोनो सतरत्नो की प्रेरणा से ग्रथित एव प्रकाशित गुलदस्ते का यह ग्रथ भी एक सुमन बनेगा।

यह ग्रथ दो खडो मे विभक्त है

१ जन्म से दीक्षा,

२ गुरु शरण से समाधि-ससरण।

प्रथम खड मे चरित्रात्मक के वश की, माता-पिता की, घरेलू परिस्थितियो की, जैन सतो के सम्पर्क मे आने वाली घटनाओ की

और चरित्रनायक के सस्कारो की रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

दूसरे खड मे चरित्रनायक के शास्त्र-अध्ययन का, पचमहाव्रत पालन का, धर्म के प्रचार का, पाच प्रवचनो के सार का और समाधि मरण का सक्षिप्त विवरण है। उन्होने अपने साधु जीवन मे प्रवचन तो अनेक दिये थे किन्तु लिपिवद्ध न होने के कारण उन सवका विवरण देना सभव नही था। केवल मात्र पाच प्रवचनो के नोट हमे इधर-उधर बिखरे मिल सके जिनके आधार पर हम उनके पाच प्रवचन ही दे पाये है। इन पाच प्रवचनो के सकलन मे उनके सुयोग्य, कर्मठ अध्यवसायी एव विद्वान् सन्त मुनि श्री पार्श्वचद जी महाराज के योगदान की हम हार्दिक श्लाघा करते है। "एक सुयोग्य शिष्य का अपने धर्म गुरु के प्रति क्या कर्तव्य होता है" इस तथ्य को वे भलीभाति जानते है। अपने गुरुदेव की अन्तिम क्षणो मे की गई उनके द्वारा गुरु सेवा अविस्मरणीय रहेगी। चरित्रनायक के ही प्रधान सुशिष्य मुनि श्री शुभचन्दजी महाराज का इस पुनीत कार्य मे शुभचिन्तन, श्री नूतन मुनि जी का नूतनोद्धरण प्रकरणगवेषणचातुर्य, श्री गुणवन्त मुनि जी की साहित्यसामग्री व्यवस्थापन-उपस्थापन-तत्परता एव कर्मठता और श्री भद्रिक मुनि जी की भद्रिकता—सभी अपने-अपने स्थान मे प्रार्थनीय, प्रशसनीय एव आचरणीय रहे है। इन सभी होनहार सन्तो से हम जिनशासन की समृद्धि के लिए महान् आशाए रखते है।

अन्त मे स्वर्गीय दानवीर सेठ श्रीमान् मागीलाल जी गोटावत के सुपुत्र सेठ श्रीमान् माणकलाल जी गोटावत और उनके सुपुत्र चिरजीवी श्री कुशलचन्द जी गोटावत का भी हार्दिक धन्यवाद किये बिना नही रह सकता जिन्होने 'गोटावत-भवन' मे मेरे निवासादि की समीचीन व्यवस्था करके इस ग्रथ के लेखन मे महान् सहयोग प्रदान किया।

१६-२-१९७९
गोटावत भवन,
सोजत सिटी

नम्र निवेदक
पुरुषोत्तम चन्द्र जैन

लिपिचित्र-परिचय

(१)

किशोर केलि . वारह् वर्प की अवस्था मे वैरागीपने मे किशोर केलि करते हुए स्वामी जी के हस्ताक्षर।

(२)

स्तोत्रादि पत्र का अन्तिम पृष्ठ दीक्षा-ग्रहण करने के वाद दूसरे ही वर्प मे स्वामी जी द्वारा लिखित शास्त्रीय लिपि की प्रतिलिपि।

(३)

स्तवन पत्र का अन्तिम पृष्ठ दीक्षा ग्रहण करने के छ वर्प वाद विक्रम सवत् १९७१ मे स्वामीजी द्वारा लिखित अपने गुरुवर्य स्वामी जी श्री नथमल जी महाराज द्वारा विरचित स्तवनो का सग्रह।

(४)

निशीथ सूत्र की हूडी का अन्तिम पृष्ठ दीक्षा लेने के ग्यारह वर्ष वाद विक्रम सवत् १९७६ मे स्वामीजी के शास्त्रीय हस्ताक्षर।

(५)

अपकर्ष पत्र का प्रथम एव अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् १९८२ मे लिखित स्वामी जी के शास्त्रीय हस्ताक्षर।

(६)

स्याद्वाद मजरी का अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् १९८३-८४ के मध्य स्वामी जी द्वारा वर्तमान पडित मुनि श्री लालचद जी महाराज के लिये लिखित।

(७—क)

लिपिचित्र-परिचय

(१)

किशोर केलि बारह वर्ष की अवस्था मे वैरागीपने मे किशोर केलि करते हुए स्वामी जी के हस्ताक्षर।

(२)

स्तोत्रादि पत्र का अन्तिम पृष्ठ · दीक्षा-ग्रहण करने के बाद दूसरे ही वर्ष मे स्वामी जी द्वारा लिखित शास्त्रीय लिपि की प्रतिलिपि।

(३)

स्तवन पत्र का अन्तिम पृष्ठ दीक्षा ग्रहण करने के छ वर्ष बाद विक्रम सवत् १९७१ मे स्वामीजी द्वारा लिखित अपने गुरुवर्य स्वामी जी श्री नथमल जी महाराज द्वारा विरचित स्तवनो का सग्रह।

(४)

निशीथ सूत्र की हूडी का अन्तिम पृष्ठ दीक्षा लेने के ग्यारह वर्ष बाद विक्रम सवत् १९७६ मे स्वामीजी के शास्त्रीय हस्ताक्षर।

(५)

अपकर्ष पत्र का प्रथम एव अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् १९८२ मे लिखित स्वामी जी के शास्त्रीय हस्ताक्षर।

(६)

स्याद्वाद मजरी का अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् १९८३-८४ के मध्य स्वामी जी द्वारा वर्तमान पडित मुनि श्री लालचद जी महाराज के लिये लिखित।

(७—क)

उत्तराध्ययन, हरिकेशीयाध्ययन, खरतरगच्छीय कमलसयमोपाध्याय विरचित सर्वार्थसिद्धि नामक टीका विक्रम सवत् २००१ मे

वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री जीतमल जी महाराज के लिये स्वामीजी द्वारा लिखित ।

(७—ख)

वीरस्तुति सटीक, अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् २००१ मे स्वामी जी द्वारा लिखित ।

(८)

मत्रावलि पत्र का तेरहवा पृष्ठ ।

पूनम का चाँद

(स्वामीजी श्री चान्दमलजी महाराज का संक्षिप्त जीवन-वृत्त)

स्मरण

मनो विलीन जिनपादपद्मे,
वचोऽनुरक्तं सुगुरुस्तुतौ च ।
गात्रं च सत्कर्मणि यस्य लग्नं,
स्मराम्यहं चन्द्रमुनीश्वरन्तम् ॥

श्रोत्रं पवित्रं श्रुतसश्रुतेन,
सिद्धस्तवेन प्रयता रसज्ञा ।
यस्यासवोऽर्हत्स्मरणेन पूता,
स्मराम्यहं चन्द्रमुनीश्वरन्तम् ॥

—आचार्य प्रवर श्रीजीतमलजी महाराज

जिनका मन सदा जिनेन्द्र भगवान् के चरण-कमलो मे रमण किया करता था, वाणी सुयोग्य गुरु के स्तवन मे रत रहती थी, शरीर जिनका सत्कर्मो मे प्रवृत्त रहता था, ऐसे मुनिराज श्री चान्दमलजी महाराज का मैं स्मरण करता हू ।

जिनकी श्रवणेन्द्रिय आगम-श्रवण से पावन बन गई थी, जिनकी जिह्वा सिद्धो की स्तुति मे लीन रहती थी, जिनके प्राण अर्हत्स्मरण से पवित्र हो गये थे, ऐसे मुनिराज श्री चान्दमलजी महाराज का मैं स्मरण करता हू ।

वन्दन

दयापरागो नयणारविंदे,
सच्चरस्स एव वयणारविंदे ।
दिण्णामयं जस्स करारविंदे,
वदामि चदं मुणिविंदवंद ॥

श्रीं ण जस्स मणोरविंदे,
चरियासुहा से पादारविंदे।
अमंदमानंदमामोददाई ,
वंदामि चदं मुणिविंदवद ॥

सज्झायसीलो सज्झाणसीलो,
जो ओसहीसो भविकम्मरोगे।
सोगधयारे सुहसुब्भकती,
वदामि चंद मुणिविदवद ॥

सव्वंसहो जो उवसंतभावा,
उज्जुत्तणा सुद्धमणो सुसाहू।
अगव्विओ जो सुगुणागुणेहि,
वदामि चदं मुणिविंदवदं ॥

कलाहरो जो कुमुए सुसीसे,
इलाधरो जो नियसाहणाए ॥
खतो य संतो य दंतो महतो,
वदामि चंद मुणिविंदवंदं ॥

—पंडित-रत्न मुनि श्री लालचन्दजी महाराज

जिनके कमल-नयन दया के पराग से परिपूर्ण थे, जिनका मुखारविद सत्य से पावन था, और जिनके हस्त-कमल दानामृत से युक्त थे, ऐसे—मुनिवृन्द द्वारा वन्दित—मुनि श्री चान्दमलजी महाराज को मैं वन्दना करता हू। जिनका मन-कमल सर्वथा परिग्रहहीन था, जिनके चरणारविन्द विहार रूपी अमृत से सिक्त थे और स्वय असीम आनन्द के धनी होने के कारण सम्पर्क मे आने वाले सव प्राणियो को आनन्द देने वाले थे, ऐसे—मुनिवृन्द द्वारा वदित—मुनि श्री चान्दमलजी महाराज को मै वन्दना करता हू।

जो स्वाध्यायशील थे, सदा शुभध्यान मे रमण करने वाले थे, जो कर्म के रोगियो का रोग मिटाने के लिये औषधियो के स्वामी

साक्षात् चन्द्रमा के समान थे और जो शोक रूपी अधकार मे भी सुख की किरणे फैलाने वाले थे, ऐसे—मुनिवृन्द द्वारा वंदित—मुनि श्री चान्दमलजी महाराज को मै वन्दना करता हू ।

जो बडी शान्त भावना से सब प्रकार के परीपहो को सहन करने वाले थे, जो मानसिक पवित्रता के कारण सरल स्वभाव के साधु थे, जो दुर्गुणो के अभाव से एव सद्गुणो के सद्भाव से सदा गर्वहीन रहते थे, ऐसे—मुनिवृन्द द्वारा वन्दित—मुनि श्री चान्दमलजी महाराज को मैं वन्दना करता हू ।

जो अपने कुमुद तुल्य शिष्यो को सदा कलाधर—चन्द्रमा के समान विकसित—प्रसन्न रखने वाले थे, जो अपनी साधना मे पर्वत के समान दृढ थे, जो महान् शमनशील थे, दमनशील थे और शान्त स्वभाव के थे, ऐसे मुनिवृन्द द्वारा वन्दित—मुनि श्री चान्दमलजी महाराज को मैं वन्दना करता हू ।

१

जन्म से दीक्षा

शरण करवाणि शर्मद, ते चरण वाणि ! चराचरोपजीव्यम् ।
करुणामसृणै कटाक्षपातै , कुरु मामम्ब ! कृतार्थसार्थवाहम् ।।
(शार्ङ्गधर पद्धति)

मै (पुरुषोत्तमचन्द्र नाम का ग्रन्थकार) स्थावर-जगम, सभी प्रकार की सृष्टि द्वारा वन्दित, कल्याण प्रदान करने वाले आपके पावन चरणो की शरण मे आया हूँ। अपने करुणा से स्निग्ध दृष्टिपात से, हे माते ज्ञानेश्वरी ! मुझ ससार-यात्री को कृतार्थ ('पूनम का चाँद' शीर्षक ग्रन्थ की रचना मे सफल) करने की अनुकम्पा करना ।

उत्थानिका

अनादिकाल से मरुधर के धराधाम मे अक्षुण्ण रूप से प्रवह्मान, परम पावन ज्ञान गगा के एक विपुल-सौरभ-सम्पन्न सुमन थे—सेवा-भावी, सयमी, सम्यग्-ज्ञानी, सन्त चान्दमल जी महाराज, जो अपनी ज्ञान-चारित्र की सुरभि से सुरभित कर गये जन-जन के मानस को। या फिर यो कहिये कि वे विपुलदुखदाहदग्ध धरा के अधार्मिक-समाज को शीतल करने आये थे—अपनी पीयूषमयी करुणा की किरणो की शीतलता से। परमार्थ के रहस्य को, सासारिक विषयो के अवनति-शील विपाक को, ऐन्द्रिय विषयो की क्षणिक लोलुपता को, कार्मण परिणाम की विषमता को एव अनादिकाल से जन्म-जरा-मरण की शृखला मे वधे जीव की विवेक-शून्यता को भली-भान्ति विशिष्ट विवेक

द्वारा समझ कर ही निकल पडी थी क्लवर से चान्दमल नाम धारी एक महान् सन्तात्मा, निर्जरा की पगडडी पर, मोक्ष के मार्ग पर और कैवल्य के कल्याणमय, ज्ञानमय, आनन्दमय, सत्यमय, शिवमय और सौन्दर्यमय पथ पर।

सौर जगत् की इस धरित्री पर असख्य जीव अब तक पुण्य-परिणामोपलब्ध और इसी कारण दुर्लभ मानव योनि मे जन्म ले चुके है। उनमे अधिकाधिक ऐसे थे, जिन्होने मानव-योनि की महानता को कभी समझने का प्रयत्न ही नही किया। वे जैसे इस ससार मे आये थे वैसे ही परलोक मे वापिस नही लौटे किन्तु कर्मो की और पापो की भारी गठरिया सिर पर लाद कर ससार-सागर मे डूब गये। कहते है यह पृथ्वी पापियो के नही किन्तु पुण्यात्माओ के बल पर स्थित है। मानव-योनि मे कुछ जीव ऐसे भी आये जो जग गये घोर अज्ञान की निद्रा से और समझ गये मानवता के मान्य माप-दण्ड को और मानव की अमरता के रहस्य को, जीव की जडो की गहराई को और स्व-स्वरूप की स्थिरता की सचाई को। सासारिक, सास्कृतिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक क्षेत्रो मे वे छोड गये अपने व्यक्तित्व की छाप, जिसका रग अमिट है, जिसे मिट्टी धूमिल नही बना सकती, सूर्य जला नही सकता, वायु जर्जरित नही कर सकता और काल कवलित नही कर सकता। जीवो की जीवन-साधना की वह छाप अनन्त काल तक पूर्ववत् बनी रहेगी, अनुप्राणित करती रहेगी विवेकशील आगामी पीढियो के जीवो को, जागृत करती रहेगी अज्ञानान्धकार से आवृत आत्माओ को, सचेत करती रहेगी जगत् की अतृप्त वासनाओ के बहाव मे बहने वाले वाहीको को, तरगायित करती रहेगी नवागन्तुक बटोहियो को, सन्मार्ग पर चलने के लिये।

भव्य जीवो ने अपने व्यक्तित्व की छाप को अनेक रूपो मे अभिव्यक्ति दी है। ग्रन्थकार के रूप मे, आचार-विचार की सहिताकार के रूप मे, अक्षर-सस्कार के रूप मे, लिपिकार के रूप मे, चित्रकार के रूप मे, मूर्तिकार के रूप मे, धर्म प्रचार के कर्णधार के रूप मे, आध्यात्मिक ज्ञान के सूत्रधार के रूप मे, तत्व-ज्ञान के प्रसार के रूप मे, असत्य के परिहार और सत्य के आविष्कार के रूप मे, वास्तुकला के कलाकार के रूप मे, और आत्म-ज्ञान के परिष्कार के रूप मे मानव देह मे प्रबुद्ध जीव अपने व्यक्तित्व की छाप को या जीवन की साधना

के प्रकार को विविध रूपो मे जगतीतल पर अकित कर गये है। वह छाप मूक होकर भी बहुत कुछ बोलती है। अच्छे सस्कारो वाले एव सत्सगति मे रहने वाले प्रतिभाशील जिज्ञासु मानव उसके गम्भीर अर्थ का मनन करके उसकी गहराई तक पहुच तत्व-ज्ञान को ग्रहण करके ऊर्ध्वमुखी बन जाते है और जिन आत्माओ पर अज्ञान का आवरण छाया है वे अपनी अधोमुखी प्रवृत्ति का त्याग नही कर पाते और परिणामस्वरूप उत्तरोत्तर जन्म-मरण के चक्र मे अनिर्वचनीय यातनाए भोगते रहते है।

इस वसुन्धरा पर अवतरित होने वाले उपर्युक्त अतीत के अनेक कलाकारो मे से स्वामी जी श्री चान्दमल जी महाराज भी एक प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे—सास्कृतिक क्षेत्र मे, धार्मिक क्षेत्र मे, आध्यात्मिक क्षेत्र मे और तत्व-ज्ञान के प्रसार के क्षेत्र मे। कलाकार का हृदय अत्यन्त कोमल, भावुक, पावन एव प्रसादमय होता है। स्वामी चान्दमल जी महाराज ने पूर्वजन्मार्जित पुण्य के प्रताप से ऐसा ही हृदय पाया था। उनकी सहज प्रकृति ही कोमलतामयी थी। उनके शरीर मे, वस्त्रो मे, मन मे, वाणी मे सर्वत्र कोमलता का साम्राज्य था। वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे, प्रत्येक वस्तु मे, प्रत्येक चरण मे कोमलता देखते थे और कोमलता ही पाते थे। सत्य और शिव का सम्यक् रूप से सम्मान करते हुए भी वे सुन्दर के पक्षपाती इसलिये थे कि सुन्दर कोमलता की आधारशिला है। कोमलता का सस्कार पूर्वजन्मार्जित था इसके विषय मे तो कुछ निश्चित कहा नही जा सकता किन्तु इस जन्म का पैतृक सस्कार वह निश्चित रूप से था। स्वामीजी का जन्म राजस्थान की 'फूलमाली' नाम की जाति मे हुआ था। फूलमाली नाम से ही यह स्पष्ट सुगन्धि आ रही है कि स्वामीजी के पूर्वज और माता-पिता स्वय फूलो की खेती करके फूलमालाये बनाने का काम करते थे। बडी सावधानता की आवश्यकता होती है फूलो की खेती करने मे, उससे भी कही अधिक सावधानता की आवश्यकता है फूलो की मालाओ का निर्माण करने मे। कोमल फूलो को तन्तु मे पिरोने के लिये सुकुमार हृदय और सुकुमार अगुलिया चाहिये। दिवानिश फूलो के सम्पर्क से कठोर हृदय और कर्कश अगुलियो का भी सुकुमार बन जाना असम्भव नही। स्वामी चान्दमल जी महाराज के तो पीढी-दर-पीढी के वशजो मे प्रवहमान रक्त मे ही कोमलता के कण विद्यमान

थे। ऐसी स्थिति मे स्वामी चान्दमलजी महाराज के रक्त मे कोमलता का होना और रक्त-जन्य कोमलता का तन, मन और प्रकृति मे परिणमन हो जाना न तो अस्वाभाविक ही है और न ही अतिशयोक्तिपूर्ण ही।

जन्म भूमि की अवस्थिति

राजस्थान के पाली जिले मे कर्मो की निर्जरा से परिमार्जित नि श्रेयस् के पथ के समान, एक साफ सुथरी, कटक, ककर और गर्तविहीन सडक, जिसके दोनो ओर नीम के वृक्ष अपनी घनी छाया से उसे शीतल-सुखमय बनाते है और जिनकी आरोग्यप्रद सुरभित पवन पथिको को विश्रान्ति, स्वास्थ्य और नवजीवन प्रदान करती है, पीपलिया गाव को एक किनारे पर छोडकर ऐसी आगे बढ जाती है जैसे कोई ससार के प्रति कूटस्थ सन्तात्मा ससार के तुच्छ प्रलोभनो की उपेक्षा करके अबाधगति से आध्यात्मिक मार्ग पर मस्ती से आगे बढता रहता है। पीपलिया गाव के मोड पर रुकने वाली बस से उतरने वाले कतिपय पथिक ठीक ऐसे ही प्रतीत होते है जैसे मोक्ष मार्ग से भटके सम्भ्रान्त राही अपने लक्ष्य की अन्तिम मजिल पर न पहुँच कर बीच मे ही उन्मुख हो जाते है ससार की वक्र पगडडी पर। पीपलिया गाव के दूसरी ओर कुछ अन्तराल पर रेलगाडी भकभक धुआ निकालती हुई तीव्र गति से ऐसे निकल जाती है जैसे सासारिक घोर पाप कर्मो की निर्जरा करती हुई कोई मुमुक्षु आत्मा मोक्ष पथ पर अबाधगति से आगे बढती जाती है।

धर्मपरायण फूलमाली दम्पती

इसी पीपलिया गाव मे रहता था फूलमाली जाति का जगमाल नामका माली और पारी नाम की सुशीला एव धर्मपरायणा उसकी पत्नी। दोनो का दाम्पत्य जीवन अत्यन्त सम्पन्न, शान्तिमय एव सुखमय था। मानव विधान के अनुसार

सन्तुष्टो भार्यया भर्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च।
यस्मिन्नेव कुलेनित्य, कल्याण तत्र वै ध्रुवम्॥

मनु०, ३, ६०

अर्थात्-जहा पति अपनी पत्नी से सन्तुष्ट रहता है और पत्नी अपने पति से सन्तुष्ट रहती है उस कुल मे सर्वदा, सार्वकालिक आनन्द रहता है। यह प्राचीन कथन जगमाल और पारी दम्पती पर अक्षरश घटित होता था। जगमाल नाम से ही यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उसके खेत मे फूलो की वार्षिक इतनी उपज थी कि वह जगत् के वडे भाग को फूलो की मालाए प्रदान कर सकता था। जगमाल जैसे सम्पन्न, सुयोग्य एव धर्मनिष्ठ पति को पाकर पारी प्रसन्नता के अपार पारावार को पार कर रही थी। तवर (तोमर) गोत्रीय माली जाति के अतिरिक्त पीपलिया गाव मे ब्राह्मण, ठाकुर, ओसवाल और निम्न-वर्ग की सभी जातियो के लोग निवास करते थे। जगमाल की फूलो से फूली फसल को देखकर सवके मन मे स्पर्धा तो होती थी किन्तु ईर्ष्या नही। उसके भाग्य की और पुण्य की सभी सराहना करते थे। वह वास्तव मे सराहना के योग्य भी था। दोनो पति-पत्नी श्रमण सन्तो के परम भक्त थे। प्राय जैन सन्तो का उस गाव मे पदार्पण होता रहता था। जब भी वहाँ जैन सन्त आते वे उनका परम सम्मान करते और उनके धार्मिक प्रवचनो को सुनते, मनन करते तथा उन्हे अपने जीवन मे उतारने का भरसक प्रयत्न करते थे। इस दम्पती का हरदेवा नाम का एक सुपुत्र था जो माता-पिता का परम भक्त था। वह फूलो की खेतीबाडी मे अग्रसर होकर माता-पिता की सहायता करता था।

दपती का सलाप

एक दिन पति-पत्नी मे प्रसगवश सलाप हो रहा था। जगमाल ने कहा, "प्रिये! हमारा पुत्र हरदेवा हमारे पारिवारिक धन्धे मे सब प्रकार से अतिनिपुण है। फूलो की खेतीबाडी मे जितनी सावधानी, निपुणता और परिश्रम अपेक्षित है, वह सब प्रकार से उसमे कुशल हो गया है। अब हमे और किस बात की आवश्यकता है? प्रभु की कृपा से सब कुछ हमे उपलब्ध है। कितने भाग्यवान् है हम। अब कौनसी ऐसी इच्छा है जिसे पूर्ण करने की हमे आवश्यकता है? सभी कुछ तो है हमारे पास।"

अपने परमप्रिय प्राणनाथ की बात सुनकर पारी बोली

"यह सासारिक सुखो की उपलब्धि की बात तो आपकी सत्य है किन्तु आत्मोद्धार के लिये जिस पूजी की आवश्यकता है, उसका अर्जन

हमने अब तक कहा किया है। इतने बार जैन सन्तो के प्रवचन सुनकर क्या आप पर कुछ भी रग नही चढा ? जैन मुनिराज उस दिन अपने प्रवचन मे कह रहे थे कि बिना तपश्चर्या के कर्मो की निर्जरा सभव नही है और बिना कर्मनिर्जरा के जन्म, जरा और मृत्यु से मुक्ति नही मिल सकती। सासारिक उपलब्धियो मे डूबा हुआ जीव जन्म-जन्मान्तर मे अनेक प्रकार की नारकीय यातनाओ का शिकार बनता है। उस आत्म-कल्याण करने वाली पूजी का सग्रह हमने कब किया है। बिना उसके हमारा जीव अनेक योनियो मे जन्म लेता हुआ अनन्तकाल तक दु ख-सागर मे गोते खाता रहेगा। मानव योनि मे जन्म लेना तो तभी सफल है यदि हम तपश्चर्या द्वारा पूर्वार्जित और इहलोकार्जित कर्मों का क्षय करके मोक्षपथ के अनुगामी बने। इसके बिना जन्म-मरण के बन्धन कटने सम्भव नही है।"

पारी पर जैन सन्तो के प्रवचनो का रग भलीभान्ति चढ चुका था। उसकी सारगर्भित एव आत्मकल्याणकारिणी वाणी का जगमाल पर गहरा प्रभाव पडा। उत्तर मे वह पत्नी को सम्बोधित कर कहने लगा

"बात तो तुम्हारी लाख रुपये की है और मेरे मन मे जच गई है। मानव-जन्म की सफलता इसी बात मे है, जो तुमने बताई है, किन्तु अब हम धर्म के मर्म की उस प्रक्रिया को जीवन मे कैसे उतारें, इस पर भी तो कुछ प्रकाश डालो। हमारे लिये शिक्षा, दीक्षा और भिक्षा— तीनो अत्यन्त कठिन है। इस आयु मे साधु मार्ग को अपनाने के लिये बडे उत्कट साहस की आवश्यकता होती है जिसका सद्भाव हमारे लिये सम्भव नही है। कोई और उपाय तुम्हारी समझ मे आता है तो व्यक्त करो।"

प्रत्युत्तर मे पारी पति से कहने लगी

"यदि कोई दीक्षित होना चाहे तो तुम 'नही' तो नही करोगे। अडचन तो नही डालोगे ? प्रतिज्ञा करो कि तुम अपने वचनो का पालन करोगे। नही करोगे तो यह धर्म के विरुद्ध आचरण होगा।"

जगमाल ने कहा

"मुझे तुम्हारी बात स्वीकार है किन्तु हरदेवा को दीक्षित होने की आज्ञा मैं नही दे सकता। हा, अब हमारे घर मे यदि दूसरा पुत्र

जन्म लेता है तो उसे मैं बडी प्रसन्नता से दीक्षित होने की आज्ञा दे दूगा। नि सन्देह वह पुत्र अपने कुल को तथा अपनी आत्मा को तपश्चर्या द्वारा उज्ज्वल बनायेगा। मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हू कि मैं अपने इन वचनो से तथा दृढ निश्चय से विमुख नही होऊगा।"

ऐसा कह कर जगमाल मौन हो गया। प्यारी पति की धर्मभावना और वचन निर्वाह के प्रति दृढनिश्चय जानकर मन ही मन फूली न समाती थी। पति ने उसे आगे कुछ भी कहने की गुजाइश नही छोडी थी। वह भी मौन हो गई। उसका मौन आत्मिक, मानसिक प्रसन्नता एवं तृप्ति का प्रतीक था। इस प्रसग के पश्चात् दोनो अपने-अपने दैनिक कार्य मे निरत हो गये।

नूतन जीवाधान

समय के रथ की गति कभी रुकी नही। उसके पहिये तीव्र गति से आगे बढने के लिये ही घूमा करते है। ठीक इसी प्रकार मानव का भाग्यचक्र भी जीवन पथ पर निरन्तर आगे ही बढता है। उस भाग्य-चक्र का कभी ऊपर की ओर और कभी नीचे की ओर चला जाना तो उसकी गति की प्रक्रिया है। पहिया ऊचाई और निचाई की चिन्ता नही करता, उसका काम तो चलना है। सासारिक जीवन का निर्माण करने वाला जीव भी तो जन्म, जरा और मृत्यु के मार्ग पर निरन्तर चलता ही रहता है। किसी प्राचीन ऋषि ने जीव को चलने की प्रेरणा देते हुए कहा है

"चरैवेति चरैवेति।"

अर्थात्—अय जीव! तू अबाध गति से चलता जा चलता जा।

कब तक चलता जा, जीवन की अन्तिम घडी तक चलता जा। अन्तिम घडी की सीमा सौ वर्ष तक निश्चित की है। ईशावास्योपनिषद् मे एक महर्षि कहते है

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेम शरद. शतम्।"

अर्थात्—हे प्रभो! हम कर्म करते हुए सौ शरद् ऋतुओ को देखने के लिये जीने की इच्छा करते है। दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ यह भी हो सकता है कि कर्मशील, गतिशील या चलता हुआ मानव ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा रखे, जो निष्कर्मण्य है, उसे दीर्घायु प्राप्त करने की आवश्यकता ही क्या है? गीता का—

"योग' कर्मसु कौशलम् ।"

अर्थात्—सच्चा योगी वही है जो कर्म करने मे कुशल है—पद्यांश भी इसी विचार धारा का समर्थक है । इस दृष्टि से जगमाल और पारी का कर्मशील जोडा किसी योगी से कम नही था । उनके गृहस्थ का रथ गतिशील था, वह आगे बढ रहा था । उसके पहिये वडे शक्ति-शाली थे और पहियो से भी अधिक शक्तिशाली थे उस रथ को खीचने वाले उनके जीव । रथ आगे वढ रहा था, घडिया प्रहरो मे, प्रहर दिन-रातो मे और दिनरात सप्ताहो, पक्षो और मासो मे परिवर्तित होते जा रहे थे । समय बीत रहा था और अपने चिन्ह की रेखाए पीछे छोडता जा रहा था । पारी के शरीर पर नवीन गर्भ के चिन्ह प्रकट होने लगे थे । या यो कहिये कि गृहस्थ जीवन के रथ के पहियो की ये रेखाए थी । जगमाल को भी नवजीवन के अकुरो के प्रस्फुटन को समझने मे देरी नही लगी । उसने हसते हुए कहा, "पारी ! बधाई-बधाई, कितने पुण्यवान है हम । हमारी कोई भी इच्छा अपूर्ण नही रही । जो तुम चाहती थी वही होगा, ऐसा प्रतीत होता है । बोलो आज इस खुशी मे क्या मिष्ठान्न खिलाओगी ?"

पारी लज्जा से नतमुख हो मुस्करा दी और कहने लगी, "जो मिष्ठान्न आप कहेगे वही प्रस्तुत कर दिया जायेगा । यह सब गुरुओ के आशीर्वाद का परिणाम है । जैन सन्तो के प्रवचन सुनने से, उनका मनन करने से और उन्हे जीवन मे उतारने से सब अच्छा ही होता है और भविष्य मे अच्छा ही होगा । ऐसी मेरी अटूट श्रद्धा है और दृढ विश्वास है । महाराज अपने प्रवचन मे एक बार कह रहे थे कि जो धर्म मे श्रद्धा रखता है वह शुभ कर्म करता है और शुभ कर्म ही वान्धता है । जैसा वीज होगा वैसा ही वृक्ष होगा । बीज यदि रुग्ण है तो वृक्ष भी रुग्ण होगा । बीज स्वस्थ है तो वृक्ष भी स्वस्थ एव चिर-स्थायी होगा । ठीक वैसे ही विचार का बीज भी होता है । विचार यदि स्वस्थ है और निर्विकार है तो तज्जन्य-आचार भी स्वस्थ और विकारहीन होगा । विवेक को विचार की आधारशिला वना ली जाये तो विचार मे पावनता आ जाती है । पावन विचार, पावन आचार को ही जन्म देता है । पावन आचार से शुभ कर्मो का उदय होगा और शुभ कर्मो के उदय से मानव-जन्म सफल, धन्य और कृतार्थ वनेगा ।" कितना सारगर्भित उपदेश दिया था महाराज साहव ने उस दिन । तो

मैं तो यही समझती हू कि हमारी जो धर्म मे निष्ठा है उसी शुभनिष्ठा का यह शुभ परिणाम है ।"

इस प्रकार पारस्परिक हित की, धर्म की, कल्याण की, परिवार की, सहचार की और सदाचार की बाते करते-करते दोनो निद्रालु हो गये और अन्धकार की कोमल छाया मे सो गये निद्रा की गोद मे। प्रात काल हुआ दोनो समय पर जगे। पत्नी ने पतिमुख के दर्शन किये और चरण स्पर्श किया। शास्त्र का विधान है कि गर्भवती भार्या को प्रात जगकर सर्वप्रथम पतिमुख के ही दर्शन करने चाहिये, इससे गर्भस्थ शिशु के शरीर-निर्माण के समय पिता की आकृति ज्यो की त्यो बालक के कलेवर मे उतर आती है। जगमाल प्रातराश करके अपने फूलो के खेत मे चल दिया और पारी अपने गृहकार्यो मे जुट गई। जबसे पारी के गर्भ मे नया जीव आया था तब से न जाने क्यो उसके मस्तिष्क मे श्रेष्ठ भावो की सृष्टि हो रही थी। जगमाल का मन भी आनन्द की हिलोरे ले रहा था। इस से यही समझना चाहिये कि यह सब आने वाले जीव के ही पुण्य का प्रताप था।

धर्म-रग-रजिका: सखी कुसुंबा

जगमाल के पडौस मे एक ओसवाल (वैश्य) जैन श्रावक का घर था। इस सम्पन्न घर की स्वामिनी कुसुम्बा बाई का सारा परिवार ही धर्मपरायण था। कुसुम्बा बाई मे धर्म की लगन विशिष्ट रूप मे विद्यमान थी। जब कभी जैन सन्त अथवा सतिया ग्राम की भूमि को अपने चरण रज से पवित्र करते तो वह उनसे धर्मध्यान का लाभ पूर्ण रूप से उठाती थी। उनके प्रवचनो को सुनना, उनका मनन करना और उन्हे क्रियान्वित करना उसका सहज स्वभाव बन गया था। उनकी अनुपस्थिति मे भी वह उनके द्वारा निर्दिष्ट धार्मिक क्रियाओ का सचाई से पालन करती थी। जो भी स्त्रिया या पुरुष उसके सम्पर्क मे आते उन्हे भी वह धर्म की प्रेरणा देती और धार्मिक जीवन मे रगने का प्रयत्न करती। सौभाग्य से पारी भी कुसुम्बा के सम्पर्क मे ही विशेष रूप से रहती थी और उसी के रग मे रग गई थी।

चिर प्रतीक्षा के बाद

ग्रीष्म ऋतु का अन्तिम चरण समाप्त हो चुका था और वर्षा ऋतु के श्री गणेश का सन्देश आकाशमण्डल मे मण्डराने वाले मेघ गर्जन की

ध्वनि मे घोषित कर रहे थे। ग्रीष्म ऋतु की असह्य आतप से सतप्त धरणी चिरकाल से वर्षा ऋतु के बादलो की प्रतीक्षा मे आकाशमण्डल की ओर अपनी आखे बिछा रही थी। ग्रीष्म ऋतु की दाह ने किसानो के तन और मन ही दग्ध नही कर दिये थे किन्तु उनके धन के साधन खेतो को भी झुलस डाला था। सब शीतलता की बाट जोह रहे थे। किसान पत्नियो न वर्षा ऋतु के स्वागत मे सम्मिलित स्वरो मे सावन के गीत गाने आरम्भ कर दिये थे। जो सताता है, तपाता है, झुलसाता है और नसाता है उसका कौन स्वागत करता है, उसके कौन गीत गाता है और उसकी कौन प्रतीक्षा करता है ? जो नवजीवन प्रदान द्वारा तन और मन मे शान्ति का सचार करता है, ससार का उद्धार करता है, जीवन की आपत्तियो का सहार करता है, आहार के अभाव का परिहार करता है और धूलि धूसरित ससार का परिष्कार करता है उसकी प्रतीक्षा मे असख्य निर्निमेष आख टकटकी लगा कर देखा करती है, उसे दसो दिशाओ मे ढूढा करती है, उसकी अनुपस्थिति मे बैचेन हो जाती है। उसे निहार कर मुग्ध हो जाती है, शान्त हो जाती है, तृप्त हो जाती है और सन्तुष्ट हो जाती है।

पहले आकाशमण्डल मे सजल बादलो का अन्धकार, फिर बून्दा-बान्दी, तत्पश्चात् धारामयी वर्षा और अन्त मे मूसलाधार वर्षा जम कर बरसी। इस प्रथम वृष्टि ने ही जन-जन के मानस मे व्याप्त निदाघ की तपस ऐसे ही शान्त कर दी जैसे ऐन्द्रिय-सुखो के परिणामो से सन्तप्त जीव की तपम ज्ञान की चरम सीमा पर पहुच कर शान्त हो जाती है। एक दो सप्ताहो मे ही नवजीवन पाकर वनभूमिया, खेतो की क्यारिया और ग्राम प्रान्त आवृत हो गये—नवजन्तुओ से, नव-वनस्पतियो से और बालतृणो के अकुरो से। जीवो की उत्पत्ति ऋतु-कालीन थी। नवजात वनस्पतियो को किसी ने बोया नही था किन्तु इनके बीज सो रहे थे मूर्च्छावस्था मे धरित्री के गर्भ मे। आवश्यकता थी—केवल जल की, जीवन की, जिसे पाकर सब जाग गये, अकुरित हो गये और पल्लवित हो गये। ठीक ऐसे ही जैसे जीव के ज्ञान-तन्तु अज्ञान की तपस से मुर्झा कर सुप्तावस्था मे स्थित रहते है एव ज्ञान की शीतलता से अज्ञान की तपस शान्त हो जाती है तो ज्ञान तन्तु सहज रूप मे अकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित अवस्था मे पहुच कर जीव को स्वस्थिति या मोक्ष मे पहुचा देते है।

व्यग्य और समाधान

दूर देशो मे कार्यवश यात्रा करने वाले पथिको के मार्ग वन्द हो गये थे मार्ग के नदी-नालो की वाढ से, किन्तु किसानो के खेतो की पगडडिया और शकट-पथ पूर्ववत खुले थे निर्वाध गमनागमन के लिये। इन पगडडियो पर किसान वालाए, परिणीत नवयुवतिया, प्रौढाए और सशक्त वृद्धाए चल पडी थी—अपने खेतो की ओर हाथो मे लम्बी डडी की कुदालिया, खुरपिया और दातिया लिये खेतो को नाणने के लिये। सम्मिलित स्वरो मे उनके वर्षा ऋतु के सजीव एव मधुर गीतो मे गुजरित हो रहा था—दिड्मडल और आकाशमडल। इन कृपक मण्डलियो मे एक मण्डली पारी की भी थी। पारी की एक सहेली पारी पर व्यग्य कसते हुए वोली, "पारी! मेरे तो खेत मे फूलो की सुगन्धि आ रही है, तेरे तो अन्दर से फूल की सुगन्ध आ रही है।' सव सहेलिया खिलखिला कर अट्टहास करने लगी। पारी शर्मा गई। "अरे! शर्माती क्यो है, क्या इत्र और प्रेम की सुगन्धि किसी से छिपाये छिपती है। तू चाहे लाख प्रयत्न कर, वह सुगन्धि ओढने के आचल मे वान्धकर रोकी नही जा सकती।" दूसरी ने व्यजना-भरी वाणी मे पारी को छेडा। पुन सब खिलखिलाकर हसने लगी। "अरे हा, पारी के हाथो मे खेत निनाणने के उपकरण है ही नही, फिर यह खेत कैसे निनाणेगी? शायद अपने मन की खुशी के नशे मे निनाण के उपकरण घर पर ही भूल आई है।" तीसरी ने ताना कसा। एक ही अगुली, सितार के तार को झकृत करने मे पर्याप्त होती है, यहा तो अनेक अगुलिया पारी पर तन रही थी। आखिर उसे अपना मौन खोलने के लिए विवश होना पडा। कहने लगी, "तुम्हारा अनुमान सत्य है। यह सुगन्धि तो नारी की परिपूर्णता की द्योतक है। नारी का नारीत्व इस सुगन्धि मे ही निहित है। वाकी रही बात निनाण के उपकरण न लाने की, वह तो सकारण है। मै वास्तव मे खेत को निनाणने नही आई हू किन्तु वर्षा ऋतु के वरदान स्वरूप आई खेतो की हरियाली को, शोभा को और छटा को देखने आई हू।"

ध्वनि मे घोषित कर रहे थे। ग्रीष्म ऋतु की असह्य आतप से सतप्त धरणी चिरकाल से वर्षा ऋतु के बादलो की प्रतीक्षा मे आकाशमण्डल की ओर अपनी आखे बिछा रही थी। ग्रीष्म ऋतु की दाह ने किसानो के तन और मन ही दग्ध नही कर दिये थे किन्तु उनके धन के साधन खेतो को भी झुलस डाला था। सब शीतलता की बाट जोह रहे थे। किसान पत्नियो न वर्षा ऋतु के स्वागत मे सम्मिलित स्वरो मे सावन के गीत गाने आरम्भ कर दिये थे। जो सताता है, तपाता है, झुलसाता है और नसाता है उसका कौन स्वागत करता है, उसके कौन गीत गाता है और उसकी कौन प्रतीक्षा करता है? जो नवजीवन प्रदान द्वारा तन और मन मे शान्ति का सचार करता है, ससार का उद्धार करता है, जीवन की आपत्तियो का सहार करता है, आहार के अभाव का परिहार करता है और धूलि धूसरित ससार का परिष्कार करता है उसकी प्रतीक्षा मे असख्य निर्निमेष आख टकटकी लगा कर देखा करती है, उसे दसो दिशाओ मे ढूढा करती है, उसकी अनुपस्थिति मे बैचेन हो जाती है। उसे निहार कर मुग्ध हो जाती है, शान्त हो जाती है, तृप्त हो जाती है और सन्तुष्ट हो जाती है।

पहले आकाशमण्डल मे सजल बादलो का अन्धकार, फिर बून्दा-बान्दी, तत्पश्चात् धारामयी वर्षा और अन्त मे मूसलाधार वर्षा जम कर बरसी। इस प्रथम वृष्टि ने ही जन-जन के मानस मे व्याप्त निदाघ की तपस ऐसे ही शान्त कर दी जैसे ऐन्द्रिय-सुखो के परिणामो से सन्तप्त जीव की तपम ज्ञान की चरम सीमा पर पहुच कर शान्त हो जाती है। एक दो सप्ताहो मे ही नवजीवन पाकर वनभूमिया, खेतो की क्यारिया और ग्राम प्रान्त आवृत हो गये—नवजन्तुओ से, नव-वनस्पतियो से और बालतृणो के अकुरो से। जीवो की उत्पत्ति ऋतु-कालीन थी। नवजात वनस्पतियो को किसी ने बोया नही था किन्तु इनके बीज सो रहे थे मूर्च्छावस्था मे धरित्री के गर्भ मे। आवश्यकता थी—केवल जल की, जीवन की, जिसे पाकर सब जाग गये, अकुरित हो गये और पल्लवित हो गये। ठीक ऐसे ही जैसे जीव के ज्ञान-तन्तु अज्ञान की तपस से मुर्झा कर सुप्तावस्था मे स्थित रहते है एव ज्ञान की शीतलता से अज्ञान की तपस शान्त हो जाती है तो ज्ञान तन्तु सहज रूप मे अकुरित, पल्लवित, पुष्पित और फलित अवस्था मे पहुच कर जीव को स्वस्थिति या मोक्ष मे पहुचा देते है।

व्यग्य और समाधान

दूर देशो मे कार्यवश यात्रा करने वाले पथिको के मार्ग वन्द हो गये थे मार्ग के नदी-नालो की वाढ से, किन्तु किसानो के खेतो की पगडडिया और शकट-पथ पूर्ववत खुले थे निर्बाध गमनागमन के लिये। इन पगडडियो पर किसान बालाए, परिणीत नवयुवतिया, प्रौढाए और सशक्त वृद्धाए चल पडी थी—अपने खेतो की ओर हाथो मे लम्बी डडी की कुदालिया, खुरपिया और दातिया लिये खेतो को नाणने के लिये। सम्मिलित स्वरो मे उनके वर्षा ऋतु के सजीव एव मधुर गीतो से गुजरित हो रहा था—दिड् मडल और आकाशमडल। इन कृपक मण्डलियो मे एक मण्डली पारी की भी थी। पारी की एक सहेली पारी पर व्यग्य कसते हुए बोली, "पारी! मेरे तो खेत मे फूलो की सुगन्धि आ रही है, तेरे तो अन्दर से फूल की सुगन्ध आ रही है।' सब सहेलिया खिलखिला कर अट्टहास करने लगी। पारी शर्मा गई। "अरे! शर्माती क्यो है, क्या इत्र और प्रेम की सुगन्धि किसी से छिपाये छिपती है। तू चाहे लाख प्रयत्न कर, वह सुगन्धि ओढनें के आचल मे बान्धकर रोकी नही जा सकती।" दूसरी ने व्यजना-भरी वाणी मे पारी को छेडा। पुन सब खिलखिलाकर हसने लगी। "अरे हा, पारी के हाथो मे खेत निनाणने के उपकरण है ही नही, फिर यह खेत कैसे निनाणेगी? शायद अपने मन की खुशी के नशे मे निनाण के उपकरण घर पर ही भूल आई है।" तीसरी ने ताना कसा। एक ही अगुली, सितार के तार को झकृत करने मे पर्याप्त होती है, यहा तो अनेक अगुलिया पारी पर तन रही थी। आखिर उसे अपना मौन खोलने के लिए विवश होना पडा। कहने लगी, "तुम्हारा अनुमान सत्य है। यह सुगन्धि तो नारी की परिपूर्णता की द्योतक है। नारी का नारीत्व इस सुगन्धि मे ही निहित है। वाकी रही बात निनाण के उपकरण न लाने की, वह तो सकारण है। मै वास्तव मे खेत को निनाणने नही आई हू किन्तु वर्षा ऋतु के वरदान स्वरूप आई खेतो की हरियाली को, शोभा को और छटा को देखने आई हू।"

"अभी तो गर्भावस्था को कतिपय मास ही बीते है, अभी से इतनी सुकुमारता और निष्कर्मण्यता, कुछ वात समझ मे नही आई। इस कालू किसान की बीनणी को देखो, आठवे मास मे भी निनाण के लिये कटि-

बद्ध होकर आई है।" जमना बाई ने उत्कठापूर्ण स्वर मे कारण जानना चाहा।

"परसो ही की तो बात है रत्तू की बहू खेत से घर मे आई ही थी कि उसने एक बालक को जन्म दे दिया।" गगा ने जमना की बात का समर्थन करते हुए कहा।

"नही, मेरे निनाण न करने का सम्बन्ध मेरी गर्भावस्था से नही है किन्तु धर्म से है। जैन सन्तो ने अपने प्रवचन मे कहा था कि वनस्पति मे भी जीव होते है। उन्हे उखाडने का अर्थ है कि उन्हे जीवन से वचित कर देना, और फिर वनस्पति को उखाडते समय पृथ्वी मे फैले हुए अनेक जीव जन्तुओ की भी तो हत्या हो जाती है। यह हिंसा है, इस से पाप लगता है, निकृष्ट कर्मो का आस्रव होता है और आत्म-कल्याण का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। इसलिये मानव को, जहा तक सम्भव हो सके, हिसा के मार्ग से दूर ही रहना चाहिये। मैने केवल इस बार ही नही किन्तु अपने भावी जीवन के लिये भी अपने फूलो के खेत मे निनाण न करने का नियम ले लिया है। नियम लेने से मनोबल का विकास होता है और आत्मिक शक्ति समुन्नत होती है, इसलिये उसका पालन करना मेरा परम धर्म है।" सबकी बातो का समाधान करते हुए पारी ने बडी ही मधुर एव सारगर्भित वाणी मे सबकी बातो का, प्रश्नो का और व्यग्यो का सामाधान किया।

"अरे, पारी अपनी पडोसन कुसुम्बा बनियाणी के जो निरन्तर सम्पर्क मे रहती है, प्रभाव मे आ गई है। वह बडा धर्म कर्म करने का ढोग रचाती है। सेठ सूद पर पैसा देने का धन्धा करता है। दश को सौ बना देना और सौ को हजार बना देना उसके बाए हाथ का खेल है। एक बिन्दी और टिकाने की कला मे वह बडा सिद्धहस्त है। हराम की कमाई आती है। तभी तो खाली बैठी बनियाणी को ज्ञान की बाते बनानी आती है। बैठी-बैठी दुम्बे की तरह फूल रही है। अपने शरीर का भार भी ढोना भार बन रहा है। हमारी तरह खेती करके पेट भरना पडे तो नानी याद आ जाये, सारी चर्वी दो दिन मे ही ठिकाने लग जाये। खेती करने से पाप लगता है। दस का सौ बनाकर भोले-भाले किसानो को ठग लेना, उन्हे धोखा देना क्या पाप नही है, हिंसा नही है और दुष्कर्म नही है? कृषि-कर्म से बढकर ससार मे कोई उत्तम कर्म नही है। तभी तो लोक मे कहावत है

उत्तम खेती, मध्यम बान,
निषिद्ध चाकरी, भीख, निदान ।

अर्थात् जीवन यापन के साधनो मे खेती करने का धन्धा सबसे उत्तम, व्यापार से धन कमाना मध्यम, नौकरी करके पेट भरना निषिद्ध और भीख मागकर खाना तो अत्यन्त निकृष्ट है ।

किसान सहज स्वभाव से ही भोला होता है । वह हेराफेरी नही जानता । किसी को धोखा देना उसके रक्त मे नही है काले बाजार की काली करतूत से वह सर्वथा अनभिज्ञ है । 'तस्करी नाम की विद्या का उसे तनिक भी ज्ञान नही है । उसका परिग्रह सीमित है । वह केवल एक ही बात जानता है, वह है—'खून पसीना बहाकर श्रम करना ।' भयानक गर्मी मे, मूसलाधार बरसात मे, तीखी सर्दी मे और कभी-कभी तो तीव्र ज्वर की अवस्था मे भी वह खेत मे काम करता दृष्टिगोचर होता है । उसकी कमाई खून-पसीनें की कमाई है, हक की कमाई है, किसान की कमाई को पूजीपति-वर्ग उपेक्षा की दृष्टि से देखता है, अनादर का व्यवहार उससे करता है, उसे धोखा देता है, उसका अनाज सस्ता खरीद कर उसे बाजार मे महगा बेचता है और अधिक से अधिक उसका शोषण करने मे तत्पर रहता है । जिन्होने खेती के महत्व को समझा नही है, वे ही खेती मे हिसा की बात करते है और खेती की निन्दा करते है । खेती मे यदि दश प्रतिशत हिसा होती भी है तो नब्बे प्रतिशत पुण्य भी तो होता है । किसान के द्वारा पैदा किये अन्न से ही तो ससार के प्राणी पलते है । गाव मे ही देखलो, जब फसल आती है तो नाई, जुलाहे, कुम्हार, लुहार, बढई, चमार, तेली आदि सब जातियो के लोग खलिहानो पर पहुच कर किसान से ही अनाज लेकर जीवन का निर्वाह करते है । जगली जानवर एव आकाश-गामी पक्षी भी तो खेती की फसल पर निर्वाह करते है फिर भला कृषिकर्म कैसे त्याज्य हो सकता है ?"

कस्तूरी नें अपने विस्तृत, सारगभित एव युक्तियुक्त बखान मे सबको प्रभावित करते हुए कहा ।

"कृषि भी सब धन्धो मे उत्तम है" यह सिद्धान्त हजारो वर्ष पूर्व आर्य-जाति मे जन्म ले चुका था । सम्भवत कस्तूरी की धारणा उसी परम्परागत भावना या मान्यता की एक कडी थी । ऋग्वेद के एक

ऋषि ने द्यूत (जुआ) मे रमने वाले एक नवयुवक को सम्बोधन करके कहा था

अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व, वित्ते रमस्व बहुमन्यमानः।
तत्र गावः कितव तत्र जाया, तन्मे विचष्टे सवितायमर्यः॥
ऋग्०, १०,३४,१३

"अय जूआ खेलने वाले युवक! तू जूए का त्याग कर। इसमे कुछ नही रखा है, यह तो हानिकारक है। इसके स्थान पर तू कृषि-कर्म किया कर। यदि तू कृषि को बहुमान्यता देगा तो उससे तुझे पत्नी भी मिलेगी, पशु धन भी मिलेगा और तू धन-धान्य की समृद्धि मे रमण करेगा।"

नि सन्देह कृषि-कर्म की मान्यता की उत्तमता मे सन्देह नही किया जा सकता परन्तु मान्यताओ की आधार शिला मानव की चिन्तन-धारा है जो अनादिकाल से अनुकूल और प्रतिकूल दोनो प्रवाहो मे बहती चली आ रही है। मानव विधि-विधान के विशेषज्ञ मनु महाराज की वैधानिक विचारधारा के अनुसार कृषि-कर्म को इसलिये निकृष्ट माना गया है कि जब किसान खेत मे हल चलाता है तो हल की तीखी फाल से अनेक जीव जन्तुओ की हत्या होती है। मनु-महाराज ने इस हिसा से बचने के लिये द्विजो (ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य) को यही परामर्श दिया है कि वे यथासम्भव हिसा-प्रधान कृषि-कर्म का त्याग करे। मनु का कथन है

सा वृत्ति : सद्-विगर्हिता।
भूमि भूमिशयाश्चैव हन्ति काष्टमयोमुखम्॥ १०-८४

निष्कर्ष रूप मे कृषि-कर्म उत्तम है अथवा जघन्य है इसका समाधान तो अनेकान्त दर्शन द्वारा ही सम्भव है। ससार की सब वस्तुए अपेक्षा की दृष्टि से अच्छी भी है और बुरी भी है। धन-धान्य के लाभ की दृष्टि से खेती उत्तम भी है और हिसा की दृष्टि से खेती त्याज्य भी है। इस दृष्टि से पारी की धारणा भी सत्य थी और कस्तूरी की मान्यता भी परिहार के योग्य नही थी।

गर्भ पोषण

इस प्रकार मार्ग मे सलाप करती हुई किसान नारियो की टोलिया अपने-अपने खेतो मे गईं, और निनाण (अनावश्यक एव वलात् फसल

मे उगे हुए घास, छोटे-छोटे पौधे और लताए जो वास्तविक रोपे गये पौधो को पृथ्वी के रसका शोषण करके हानि पहुचाते है—उन्हे उखाड कर फेंक देना) करने लगी। पारी ने अपनी फूलो की फसल मे निनाण नही किया, उसके खेत का निनाण जगमाल और हरदेवा कर रहे थे। पारी तो बैठकर मात्र फूलो की फसल के सौन्दर्य का पान कर रही थी। पारी का मन इतना प्रसन्न कभी नही रहा जितना अब रहता था। आजकल की जीव सम्बन्धी वैज्ञानिक गवेषणा के अनुसार गर्भस्थ जीव की भावनाए माता की भावनाओ के रूप मे अभिव्यक्त होती है। इसी प्रकार माता की चिन्तन-धारा और आचार-विचार का प्रभाव भी गर्भस्थ जीव पर पडता है। सम्भवत पारी की अतिप्रसन्नता का कारण गर्भस्थ जीव के पूर्व पुण्यार्जित सस्कारो का ही प्रभाव हो, यह बात रहस्यात्मक है, इसे निर्णयात्मक रूप मे व्यक्त नही किया जा सकता।

जगमाल के फूलो के खेत मे फूलो की कलिया फूल की पूर्ण अवस्था को प्राप्त करने के लिये मन्द गति से विकासशील थी और पारी के गर्भस्थ जीव के अग-प्रत्यग भी उत्तरोत्तर प्रगति की ओर बढ रहे थे। जैसे-जैसे फूलो की फसल पकती जा रही थी वैसे-वैसे खेत का काम काज हलका पडता जा रहा था किन्तु पारी के शरीर का भार, भारी होता जा रहा था। उधर खेत के फूल पूर्ण रूप से खिलने की स्थिति मे थे और इधर पारी के फूल के खिलने की अवस्था भी पूर्णता तक पहुचने वाली थी।

पूनम का अनोखा प्रातः

पूर्णिमा का प्रात काल था। जगमाल की योजना के अनुसार आज के दिन महती सख्या मे फूलो को तोडा जाना था। जगमाल कतिपय अन्य सहायक मालियो को साथ लेकर खेत मे पहुचा। फूलो को डडियो या नालो से तोडा जाने लगा। जिस नाल की फूल शोभा बढा रहे थे और जिससे जीवन पाकर मुस्करा रहे थे वे उस नाल से अब कभी भी नही जुड सकेंगे। उनका अपनी जन्मदात्री नाल से सार्वकालिक सम्बन्ध विच्छेद वैसे ही हो गया जैसे मुक्तात्मा का कर्मक्षय से सासारिक सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। अन्तर केवल इतना ही था कि फूल इस सम्बन्ध विच्छेद से दुखी थे और इस कारण मुरझाने लगे थे किन्तु

मुक्तात्मा सासारिक सम्बन्ध विच्छेद से प्रसन्न होती है और स्वस्थिति के आनन्द मे खो जाती है। कुछ पौधो पर कलिया अवशिष्ट थी, वे अभी विकास की स्थिति मे नही आई थी। वे कबीर के शब्दो मे इस कारण दुखी थी

माली आवत देखकर कलियां करत पुकार।
फूले-फूले चुन लिये काल हमारी बार॥

अर्थात्—माली को देखकर कलिया इस कारण चिन्ता मे डूब रही थी कि जो फूल बन चुकी थी उनको तो मालो से तोडा जा रहा है, कल हम भी जब फूल के रूप मे परिणत हो जायेगी तो हमारी भी यही दशा होगी। ससार में पाप की गठरिया बान्धने वाले जीव भी जब किसी मृतक को देखते है तो उनके मन मे भी ससार की असारता के प्रति और अपने अन्धकार-पूर्ण भावी जीवन के प्रति भयावह भावनाये उत्पन्न होने लगती हें।

जन्म

सम्वत् १९५० मे आसौज की पूर्णिमा की रात्रि के द्वितीय प्रहर मे जगमाल माली की धर्मपत्नी पारी ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। खेत के फूल टूटकर मुर्भा गये थे किन्तु यह फूल टूटकर विकसित हो गया। सबसे आश्चर्य भरी बात यह थी कि शिशु जन्म लेते ही प्राय रोया करता है किन्तु जगमाल का यह शिशु पहले मुस्कराया और फिर रोया। इस घटना को अपवाद ही कहना चाहिये। सम्भवत वह मुस्कराया इसलिये कि उसे गर्भ की यातना से मुक्ति मिली और रोया इसलिये कि उसके जन्म-मरण का चक्र अभी समाप्त नही हुआ और उसके कर्मो की राशि का अभी बहुत बडा भाग क्षय होना बाकी है। बालक की कान्ति, चन्द्रमा के समान कान्त थी। ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्णिमा का चान्द अपनी कौमुदी का कुछ अश इस बालक मे रखकर ही आगामी दिन से घटना चाहता था। या फिर यो कहिये कि चन्द्रमा अगले दिन से इसलिये घटना आरम्भ हो गया था कि उसकी चान्दनी को इस बालक ने छीन लिया था। सक्षेप में शिशु का चान्द जैसा वदन, विशालभाल, गौरवर्ण, तीखे नख-शिख, सर्वांगो की क्रमबद्धपूर्णता, कोमल-कान्त-कलेवर, कमनीय और आकर्षक कान्ति, सौभाग्य द्योतक शुभ लक्षणो की सर्वांगीणता, सामुद्रिक शास्त्र एव अग-विद्या

निर्धारित सुलक्षणो की यथार्थता एव चरितार्थता, पूर्वजन्मार्जित पुण्यो की प्रामाणिकता, वर्तमान जीवन की सफलता और भावी जीवन की परमार्थता के चिन्ह ऐसे थे जो दर्शको के मन को मुग्ध करने वाले थे। ब्राह्मणो के, जाटो के, वैश्यो के, मालियो के अन्य सभी गाव के मुहल्लो के नर-नारी जगमाल और पारी के घर बधाई के सन्देश लेकर आने लगे। गाव के लोग नगर के परिवारो के और लोगो के समान स्वकेन्द्रित नही होते, समय आने पर वे सभी जाति-पाति, गोत्र और न्यात के भेद-भाव को भूलकर एक दूसरे के सुख-दुख मे हाथ बटाते है। एक दूसरे के दु ख मे दुखी हो जाना एव सुख मे सुखी होना—यह उनका जन्मजात सस्कार होता है।

नाम करण

स्थानीय ग्राम ज्योतिषी को हरदेवा बुला लाया। ग्राम ज्योतिषी पडित यद्यपि ज्योतिष् शास्त्र का कोई निष्णात पण्डित नही था किन्तु मुहूर्त, लग्न, ग्रह-दशा और जन्मकुण्डली निर्माण की विद्या मे वह भली भान्ति दक्ष था। उसने बालक की जन्म कुण्डली बनाई और जगमाल से कहा, बुरा नही मानना, मै अपनी ओर से कुछ नही कहूगा, मै तो वही कहूगा जो ग्रहो की चाल भविष्यवाणी कर रही है। यद्यपि इस बालक के जीवन मे माता-पिता की सेवा करने की सम्भावना कम है किन्तु यह बालक होनहार है, यह भविष्य मे एक महान् विद्वान्, उत्कृष्ट तपस्वी और ख्याति प्राप्त कलाकार होगा। इसकी जन्म कुण्डली मे यद्यपि कुछ ऐसे ग्रह पडे हुए है जो हानिकारक है किन्तु केन्द्र मे बृहस्पति बैठा है इस कारण उनका कोई प्रभाव नही पडेगा। ज्योतिष् शास्त्र के अनुसार

मुक्तात्मा सासारिक सम्बन्ध विच्छेद से प्रसन्न होती है और स्वस्थिति के आनन्द मे खो जाती है। कुछ पौधो पर कलिया अवशिष्ट थी, वे अभी विकास की स्थिति मे नही आई थी। वे कबीर के शब्दो मे इस कारण दुखी थी

माली आवत देखकर कलिया करत पुकार।
फूले-फूले चुन लिये काल हमारी बार॥

अर्थात्—माली को देखकर कलिया इस कारण चिन्ता मे डूब रही थी कि जो फूल बन चुकी थी उनको तो मालो से तोडा जा रहा है, कल हम भी जब फूल के रूप मे परिणत हो जायेगी तो हमारी भी यही दशा होगी। ससार मे पाप की गठरिया बान्धने वाले जीव भी जब किसी मृतक को देखते है तो उनके मन मे भी ससार की असारता के प्रति और अपने अन्धकार-पूर्ण भावी जीवन के प्रति भयावह भावनाये उत्पन्न होने लगती है।

जन्म

सम्वत् १९५० मे आसौज की पूर्णिमा की रात्रि के द्वितीय प्रहर मे जगमाल माली की धर्मपत्नी पारी ने एक पुत्र-रत्न को जन्म दिया। खेत के फूल टूटकर मुर्झा गये थे किन्तु यह फूल टूटकर विकसित हो गया। सबसे आश्चर्य भरी बात यह थी कि शिशु जन्म लेते ही प्राय रोया करता है किन्तु जगमाल का यह शिशु पहले मुस्कराया और फिर रोया। इस घटना को अपवाद ही कहना चाहिये। सम्भवत वह मुस्कराया इसलिये कि उसे गर्भ की यातना से मुक्ति मिली और रोया इसलिये कि उसके जन्म-मरण का चक्र अभी समाप्त नही हुआ और उसके कर्मो की राशि का अभी बहुत बडा भाग क्षय होना बाकी है। बालक की कान्ति, चन्द्रमा के समान कान्त थी। ऐसा प्रतीत होता था कि पूर्णिमा का चान्द अपनी कौमुदी का कुछ अश इस बालक मे रखकर ही आगामी दिन से घटना चाहता था। या फिर यो कहिये कि चन्द्रमा अगले दिन से इसलिये घटना आरम्भ हो गया था कि उसकी चान्दनी को इस बालक ने छीन लिया था। सक्षेप मे शिशु का चान्द जैसा वदन, विशालभाल, गौरवर्ण, तीखे नख-शिख, सर्वांगो की क्रमवद्धपूर्णता, कोमल-कान्त-कलेवर, कमनीय और आकर्षक कान्ति, सौभाग्य द्योतक शुभ लक्षणो की सर्वागीणता, सामुद्रिक शास्त्र एव अग-विद्या

निर्धारित सुलक्षणो की यथार्थता एव चरितार्थता, पूर्वजन्मार्जित पुण्यो की प्रामाणिकता, वर्तमान जीवन की सफलता और भावी जीवन की परमार्थता के चिन्ह ऐसे थे जो दर्शको के मन को मुग्ध करने वाले थे। ब्राह्मणो के, जाटो के, वैश्यो के, मालियो के अन्य सभी गाव के मुहल्लो के नर-नारी जगमाल और पारी के घर बधाई के सन्देश लेकर आने लगे। गाव के लोग नगर के परिवारो के और लोगो के समान स्वकेन्द्रित नही होते, समय आने पर वे सभी जाति-पाति, गोत्र और न्यात के भेद-भाव को भूलकर एक दूसरे के सुख-दुख मे हाथ बटाते है। एक दूसरे के दु ख मे दुखी हो जाना एव सुख मे सुखी होना—यह उनका जन्मजात सस्कार होता है।

नाम करण

स्थानीय ग्राम ज्योतिषी को हरदेवा बुला लाया। ग्राम ज्योतिषी पडित यद्यपि ज्योतिष् शास्त्र का कोई निष्णात पण्डित नही था किन्तु मुहूर्त, लग्न, ग्रह-दशा और जन्मकुण्डली निर्माण की विद्या मे वह भली भान्ति दक्ष था। उसने बालक की जन्म कुण्डली बनाई और जगमाल से कहा, बुरा नही मानना, मै अपनी ओर से कुछ नही कहूगा, मै तो वही कहूगा जो ग्रहो की चाल भविष्यवाणी कर रही है। यद्यपि इस बालक के जीवन मे माता-पिता की सेवा करने की सम्भावना कम है किन्तु यह बालक होनहार है, यह भविष्य मे एक महान् विद्वान्, उत्कृष्ट तपस्वी और ख्याति प्राप्त कलाकार होगा। इसकी जन्म कुण्डली मे यद्यपि कुछ ऐसे ग्रह पडे हुए है जो हानिकारक है किन्तु केन्द्र मे बृहस्पति बैठा है इस कारण उनका कोई प्रभाव नही पडेगा। ज्योतिष् शास्त्र के अनुसार

किं कुर्वन्ति ग्रहा. सर्वे यदि केन्द्रे बृहस्पतिः।

अर्थात्—यदि केन्द्र मे बृहस्पति पडा हो तो दूसरे ग्रह कोई हानि नही पहुचा सकते।

जन्म कुण्डली की ग्रह-दशा के अनुसार शिशु का नाम 'च' पर पडता था परन्तु माता-पिता ने अभी उसका कोई भी नाम रखने का विचार स्थगित कर दिया। वे उसे 'चोला' अर्थात् छोटा कहकर पुकारने लगे। प्राकृत के चुल्ल (छोटे के अर्थ मे) का अपभ्र श रूप 'चोला' बन गया ऐसा प्रतीत होता है। कृष्ण-पक्ष मे चन्द्रमा की

कलाए उत्तरोत्तर कम होती जा रही थी किन्तु चोला का मानवीय चोला समय की वृद्धि के साथ बढता जा रहा था। शुक्ल-पक्ष का चन्द्रमा अन्धकार की ओर बढ रहा था और चोला का जीव प्रकाश की ओर। आध्यात्मिक सिद्धात के अनुसार ठीक इसी प्रकार पुण्य-क्षय के पश्चात् जीव अन्धकार—नारकीय जीवन की ओर बढता है और पुण्योदय से प्रकाश—आत्म-कल्याण की ओर। शारीरिक शुभ लक्षणो से यह बात स्पष्ट थी कि चोला ने मानव का शरीर आत्म-कल्याण के लिये ही प्राप्त किया था। मानव योनि मे जन्म लेना शास्त्रकारो ने बडा ही दुर्लभ बताया है

दुल्लहे खलु माणुसे भवे।

उत्तराध्ययन, १०,४

अर्थात्—मनुष्य योनि, जीव के लिये बडी ही दुर्लभ है। अनेक जन्मो की परम्परा मे जो जीव शुद्धि की ओर प्रगतिशील रहते हैं या उत्तरोत्तर शुद्धतर होते जाते हैं वे ही मानवयोनि मे जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं। इसी भाव को आगमकार ने निम्नलिखित गाथा मे व्यक्त किया है

जीवा सोहिमणुप्पत्ता, आययति मणुस्सय।

उत्तराध्ययन, ७।१६

अर्थात्—ससार मे आत्माए अनेक योनियो मे क्रमश शुद्ध होती हुई मनुष्य भव को प्राप्त करती हैं।

आनन्द विभोर दम्पती

चोले का जीव निश्चित रूप से पूर्व भवो मे शुद्ध होता आ रहा था, यह उसकी मानवयोनि मे जन्म से प्रमाणित था। माता-पिता चोले का वडे प्यार, ममता और स्नेह से पालन पोषण करने लगे। वे वालक का सौन्दर्य, सुस्वभाव और सौम्य आकृति देखकर फूले न समाते थे। कोई चित्रकार जव हमारा चित्र वनाकर हमे देता है तो हम उसे वार-वार देखते हैं और मन ही मन वडे प्रसन्न होते हैं। पुत्र तो माता-पिता का जीवित चित्र है। उसमे माता-पिता का रक्त, हड्डिया, सस्कार, आकृतियो की झलक, बचपन और युवावस्था सभी

कुछ तो विद्यमान है, फिर भला माता-पिता उसे देखकर आनन्द-विभोर क्यो न हो ? एक प्राचीन ऋषि ने तो यहा तक लिखा है

"तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः ।"

जिस प्रकार कैमरे के सामने चित्र खिचवाने के लिये जो बैठता है उसी का तो चित्र आता है, चित्रकार जिसको सामने बैठाकर तूलिका और रगो से चित्र का निर्माण करता है उसीका तो चित्र पटल पर अकित होता है, ठीक इसी प्रकार पत्नी (जाया) कैमरा या पटल है। पति स्वय जाया के माध्यम से पुत्र रूप मे उत्पन्न होता है। इसलिये वैदिक सस्कृति मे माताए दो प्रकार की मानी गई है—एक तो वह जो जन्म देती है और दूसरी वह जिसमे पति पुत्र रूप मे पुन जन्म ग्रहण करता है। जाया का जायात्व इसी मे है कि वह पति को जन्म दे। जब से चोला पैदा हुआ था तब से जगमाल (जिसे लोग जग्गो कह कर भी पुकारते थे) के घर की सुख-सम्पत्ति, प्रसन्नता और शुभ समाचारो की वृद्धि हो रही थी। माता-पिता इसे बालक के ही पुण्य का प्रताप समझते थे। बालक के गले मे व्याघ्र नख, रत्रपूत तावीज और गाल पर काला टीका इसलिये लगाकर रखते थे कि उसे कोई नजर न लगादे, परन्तु काले टीके से चोले का सौन्दर्य कम होने वाला कहा था। चन्द्रमा मे लगा हुआ कलक उसके सौन्दर्य को और अधिक बढा देता है। पहले झूले मे झूलना, फिर बैठना, तत्पश्चात् घुटनो के बल चलना, सहारा लेकर खडे हो जाना, फिर अपनी शक्ति से चलना आदि सारी प्रक्रियाओ को बालक पार करता जा रहा था। पहले तुतली वाणी मे मा, बापू, तत्पश्चात् तीन, चार, पाच अक्षरो के उच्चारण मे भी वह निपुण होता जा रहा था। अगाध वात्सल्य के कारण माता-पिता उसकी सभी विकास की शारीरिक क्रियाओ को देखकर फूले न समाते थे। फूले समाये भी कैसे ? प्राचीन विद्वानो ने अपनी अनुभूति ही को तो अभिव्यक्ति दी है

इद तत् स्नेहसर्वस्व, सममाढ्यदरिद्रयो :।
अचन्दनमनौशीर, हृदयस्यानुलेपनम् ॥

मृच्छकटिकम्, १०।१३

गृहे जानुचरः केल्यां मुग्धस्मितमुखाम्बुजः ।
पुत्रः पुण्यवतामेव पात्री भवति नेत्रयोः ॥

कुमारसभवम्, १६।१५

किं मृष्ट सुतवचन, मृष्टतर किं तदेव सुतवचनम् ।
मृष्टान्मृष्टतमं किं, श्रुतिपरिपक्व तदेव सुतवचनम् ॥

शांर्ङ्ग धर पद्धति, १००९

अर्थात्—माता-पिता चाहे धनाढ्य हो चाहे निर्धन, उनके स्नेह का एक मात्र पात्र और सर्वस्व उनका पुत्र होता है। चन्दन न होते हुए भी वह उनके हृदयो को शान्ति प्रदान करने वाला अनुलेपन है।

घर मे घुटनो के बल रेंगता हुआ और क्रीडा मे मस्ती भरी और भोली मुस्कराहट से विकसित कमल जैसे मुखवाला पुत्र किन्ही पुण्यवान माता-पिताओ के नेत्रो का ही पात्र बनता है।

यदि पूछा जाये कि ससार मे मधुर वस्तु कौनसी है, तो इसका उत्तर होगा शिशु की मधुर वाणी, यदि पूछा जाये कि मृष्टतर—अर्थात् और अधिकतर मीठी वस्तु कौनसी है तो उसका उत्तर भी यही होगा कि शिशु की मधुर वचन रचना, और यदि पूछा जाये कि सबसे अधिक मधुर वस्तु कौनसी है तो उसका उत्तर भी कानो के प्यारे लगने वाले शिशु के वचन ही कहा जायेगा।

कभी चोले को नहलाना, कभी खिलाना, कभी वस्त्र पहनाना कभी उसके साथ मधुर बाते करना, कभी उसके साथ विनोद करना, कभी रूठे हुए को मनाना और कभी उसके कुतूहलपूर्ण प्रश्नो का उत्तर देना आदि-आदि चोले की पालन पोषण और शिक्षण की बातों मे पारी इतनी व्यग्र रहती थी कि उसको घर के कामो की भी उपेक्षा करनी पडती थी। ऐसे अवसरो पर जगमाल और हरदेवा उसके घर के कामो मे हाथ बटाते थे।

प्रतीक्षा

चोले ने छह वर्ष की आयु व्यतीत कर अब सातवे वर्ष मे चरण रख दिये थे। चार सदस्यो का यह छोटा सा परिवार बडे सुखसे, आनन्द से, सन्तोष से और खूब खुशी से अपने जीवन की घडिया यापन कर रहा था। गाव के लोग माली जगमाल के आनन्दमय

जीवन पर स्पर्धा करते थे और प्राय कहा करते थे कि चोले के जन्म ने जगमाल और पारी के जीवन की कायापलट ही कर दी है। पारी ने कहा

"बेटे चोले ! अब तो तू दिनोदिन बडा होता जा रहा है—आयु मे भी और समझदारी मे भी किन्तु तेरे पिता की और मेरी आयु ढ़लती जा रही है। तू बडा होकर हमारी सेवा करेगा न ?"

चोला चुप रहा, उसने न स्वीकृति मे और न निषेध मे उत्तर दिया।

"बेटा ! चुप क्यो रह गया, क्या तू हमारी सेवा नही करेगा, देखो, हरदेवा हमारी कितनी सेवा करता है। खेत मे अपने पिता के साथ काम करता है और घर के कामकाज मे मेरे साथ हाथ बटाता है। तू भी ऐसा ही सेवाभावी बेटा बनेगा न ?"

चोला फिर मौन रहा। जगमाल को और पारी को चोले के मौन पर कोई आश्चर्य नही हुआ क्योकि वे बालक के भावी रहस्यमय जीवन को भलीभान्ति जानते थे, अपनी प्रतिज्ञा को भूले नही थे और अपने कर्तव्यो को पहचानते थे। यद्यपि चोले जैसे सुन्दर, सौम्य, प्रतिभावान परमप्रिय और विनम्र सुपुत्र का आकर्षण महान था किन्तु माता-पिता की आत्म-कल्याण-कारिणी एव निजवशयश प्रसारिणी भावना पुत्र मोह से भी महत्तर थी। वे उचित समय की प्रतीक्षा कर रहे थे किन्तु समय उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। किसकी प्रतीक्षा पूर्ण होगी, इसके विषय मे कुछ भी नही कहा जा सकता था, किन्तु 'समय बलवान है'—इस उक्ति की कभी भी कोई उपेक्षा नही कर सका है। समय भी द्रुतगति से आगे बढ रहा था और जगमाल तथा पारी की आशाए और भावनाए भी कम गतिमान नही थी। मानवमन की सभी इच्छाए और अभिलाषाए कभी पूर्ण नही होती।

"मेरे मन कछु और है विधि के मन कछु और।"

भवितव्यता को आज तक कोई भी सन्त, महन्त और ज्ञानवन्त नही टाल सके है। होनहार तो होकर ही रहती है। तभी तो किसी विवेकशील ने कहा है

न हि भवति यन्न भाव्यं,
भवति च भाव्यं बिनापि यत्नेन।

करतलगतमपि नश्यति,
यस्य तु भवितव्यता नास्ति ।।

भर्तृहरिसुभाषितसंग्रहः, ५६६

अर्थात्—जो घटना नही घटनी है, वह कभी नही घटती, जिसे घटित होना है, वह बिना किसी यत्न के ही घट जाती है। जिस वस्तु को नही रहना है, वह हाथ मे आई हुई भी चली जाती है।

जगमाल का अवसान

शनिवार की रात्रि थी। जगमाल खेत से ही अस्वस्थावस्था मे घर पहुचा था। सारी रात बेचैनी से काटी। परिवार के सभी सदस्य जगमाल की असामयिक और आकस्मिक स्वास्थ्य-विषमता से परेशान थे, व्याकुल थे और चिन्तित थे। ग्राम-वैद्य को बुलाया गया, सभी यथाशक्य उपचार किये गये किन्तु

औषध मगलं मंत्रं, अन्याश्च विविधाः क्रियाः।
आयुषि सति सिद्धयन्ति, न सिद्धयन्ति गतायुषि ।।

अर्थात्—औषधियो के प्रयोग, मगल कामनाए, मत्रजाप और अन्य अनेक प्रकार के विधि-विधान जो रोगी के जीवन की रक्षा के लिये किये जाते है, वे सभी तब सफल हो सकते है यदि रोगी की आयु अवशेष हो किन्तु यदि आयु पूर्ण हो चुकी हो तो कोई भी उपचार उसकी जीवन रक्षा मे सफल नही हो सकता।

प्रात काल का समय था। रविवार का रवि उदय होने की तैयारी कर रहा था, इस माली परिवार का सूर्य अस्त होने की। कुछ ही मिनटो मे जग का मालिक सूर्य उदय हो गया और इस माली परिवार का सूर्य अस्त। ससार का सूर्य प्रत्येक प्रात काल मे पुन उदय होता रहेगा परन्तु इस परिवार के सूर्य का अब कभी उदय नही होगा। प्रत्येक रात घनान्धकर के पश्चात् पुन प्रकाश पायेगी परन्तु पारी की घोर अन्धकारमयी रात्रि का तमस् अधिकाधिक घना होता जायेगा, वह कभी प्रकाश की किरण नही देख सकेगी। जगमाल माली के खेत के फूल हस रहे थे ससार की अस्थिरता पर परन्तु उसके परिवार के फूल मुरझा रहे थे ससार की नश्वरता पर। पारी की इच्छाओ पर, आशाओ पर और सुहाग पर यह एक अनभ्र वज्रपात था एव हरदेवा

और चोले के पितृप्रेम पर कठोर हिमपात। किसी प्राचीन कवि का यह कथन—

यात्रात्वेषा यन् विमुच्येह्वाष्पं,
प्राप्तानृण्या याति बुद्धिः प्रसादम् ॥

अर्थात्—ससार मे जब कोई व्यक्ति दिवगत होता है तो उसके सगे सम्बन्धी कुछ समय के लिये आसू बहाकर अपने आपको मृतक के ऋण से मुक्त समझने लगते हैं और कुछ समय के शोक के पश्चात् पुन उनका मन पूर्ववत शान्ति प्राप्त कर लेता है।

—इस माली परिवार पर घटित नही होता था। इस परिवार के सदस्य न तो कभी जगमाल के ऋण से उऋण होने की भावना मन मे ला सकते थे और न ही उसके निधन के पश्चात् उनको कभी शान्ति ही मिलने की आशा थी। सबसे बडी दुख की बात यह थी कि जगमाल, चोले के आत्म-कल्याण की दृढप्रतिज्ञा को पूर्ण करने से पहले ही ससार की यात्रा समाप्त कर गये थे। वे अपनी प्रतिज्ञा का भार अपनी जीवन सगिनी पारी पर डाल गये थे। दुर्भाग्य से पारी को पति के साथ मिलकर प्रतिज्ञा पालन का अवसर नही मिल सका। कर्म गति वडी बलवान है। प्राणी सोचता कुछ और है, हो कुछ और जाता है। ठीक ही तो कहा है मनु महाराज ने

अघटितघटितं घटयति
सुघटित घटितानि दुर्घटीकुरुते।
विधिरेव तानि घटयति,
यानि पुमान्नैव चिन्तयति ॥
सुभाषितरत्न भा० पृ० ९१, श्लो० ३६

अर्थात्—जिसका होना सम्भव नही उसे सम्भव वनाने वाला, जिसका होना अत्यन्त सरल है उसे दुशक्य बनाने वाला, दैव है। वह ऐसे काम कर दिया करता है जिनके विपय मे मनुष्य सोच भी नही सकता।

पारी : जीवन-इतिहास के चतुष्पथ पर

जगमाल के जीवन का इतिहास समाप्त हो चुका था। अब पारी अपने जीवन के इतिहास के चतुष्पथ पर खडी थी। वह अशान्त थी,

सभ्रान्त थी और आक्रान्त थी दु खदावानल से। उसे कुछ नही सूझ रहा था कि किस पथ की ओर मुडना है और आगे कैसे बढना है। उसके जग का माली तो चला गया था, अब उसे कौन पथ प्रदर्शन करेगा? कौन उसे मन्त्रणा देगा? कौन उसे आपत्तिकाल मे सान्त्वना देगा? कौन उसके सुख दुख को सुनेगा? कौन उसके धर्म की प्रेरणा मे सहायक होगा? और कौन उसके जीवन की उलझनो को सुलझायेगा? वह अपने को उस लता के समान आधारहीन और अनाथ समझ रही थी जिसके आश्रय वृक्ष को किसी निर्दय ने काटकर फेक दिया हो। उसका हृदय उस मछली के समान तडप रहा था जिसे धीवर ने पानी से निकाल दूर किनारे पर फेंक दिया हो। उसके मन मे केवल मात्र यह सन्तोष था कि उसका ज्येष्ठ पुत्र हरदेवा घर के कामकाज मे दक्ष हो गया था और वह गृहस्थ का और खेती का सारा काम सभालने मे पूर्णरूपेण समर्थ था। चोले का जीवन कैसे अग्रसर होगा यह उसकी गभीर चिन्ता का विषय था। वह मन मे सोच रही थी, "मैंने और मेरे पति ने मिलकर यह प्रतिज्ञा की थी कि चोले को आत्म-कल्याण निमित्त तथा वश के नाम को उज्ज्वल करने के लिये किसी जैन सन्त को बहराना है। अच्छा तो तभी होता यदि दोनो मिल कर इस शुभ काम को करते किन्तु दैव-दुर्विपाक से वे तो चले गये मुझ अकेली को जीवन का भारी भार देकर दुर्गम पथ पर चलने के लिये। जाते समय इस उत्तरदायित्व को निभाने का भार मुझ पर ही डाल गये। मैंने स्वय ही तो प्रेरणा दी थी उन्हे इस पावन काम के लिये। उन्होने नि सकोच स्वीकृति प्रदान कर दी थी। उन्होने मेरी किसी भी इच्छा की कभी भी उपेक्षा नही की। वे कितने भावुक थे। एक बार जब मैं तीव्र ज्वर से आक्रान्त होकर तडप रही थी तो वे मेरे शरीर पर कम्बल डालते हुए रो रहे थे और उनके कुछ आसू मेरे मस्तक पर टपक पडे थे। कितनी ममता से भरा हुआ था उनका हृदय मेरे लिये।"

पारी फूट-फूट कर रोने लगी। माता को बिलख-बिलख कर रोते देख कर हरदेवा और चोला जो उसके पास ही बैठे थे, के धैर्य का बाध भी टूट गया। वे भी उसी प्रकार रोने लगे। तीनो के आसू पोछने वाला और उन्हे सान्त्वना देने वाला वहा चौथा प्राणी कोई भी नही

था। ममता का, मोह का, और शोक का वेग किस पाषाण हृदय को भी नही पिघला देता।

शोक निवारणार्थ सगाई की सलाह, वे होते तो...

जगमाल को ससार से गये छह मास होने को आये थे। समय का प्रवाह आगे बढ रहा था किन्तु पारी के शोक सागर की लहरिया किसी भी रूप मे कम नही हो रही थी। प्रत्येक प्रसग मे उसे अपना प्यारा प्राणनाथ स्मरण आता था। वह कहने लगती "यदि वे होते तो ऐसा न होता, यदि वे होते तो ऐसा हो सकता था।" प्राणी चला जाता है किन्तु उसकी मधुर स्मृतिया प्रियजनो के हृदय पटल पर ज्यो की त्यो अकित रह जाती है। पडोसिन कुसुबा ने और अन्य शुभचिन्तक ग्राम की घनिष्ठ स्त्रियों ने पारी को हरदेवा का विवाह करने की राय दी। "विवाह की खुशियो के वातावरण से और नई बीनणी के आने से निश्चय ही पारी का शोक-पारावार नीचे उतर जायेगा" ऐसा सब का विचार था। कन्या की खोज की जाने लगी। ऐसे उत्तम कुल के लिये कन्याओ की क्या कमी थी। कई घर सम्बन्ध के लिये राजी हो गये। "हरदेव की सगाई शीघ्र ही हो जायेगी, तत्पश्चात् विवाह की तैयारिया होगी और फिर हरदेवा नई बहू ब्याह कर लायेगा, उसकी पुत्र-वधू कितनी सुन्दर होगी, वह उसकी सेवा करेगी, घर के सभी काम स्वय कर लिया करेगी, उसे आराम करने का अवसर देगी, इत्यादि-इत्यादि कल्पनाये पारी के मन को तनिक भी सात्वना नही दे सकी। उसके तो रोम-रोम मे और रक्त के कण-कण मे जगमाल रम रहा था। वह तो इस रूप मे सोचती थी कि "वे होते तो ऐसा करते, वे इस काम को जिस खूबसूरती से करते मै उसे कैसे कर पाऊगी?"

हरदेव की सगाई और विवाह

हरदेव की सगाई एक प्रतिष्ठित माली कुल मे कर दी गई और विवाह का दिन भी ज्योतिषी को बुलाकर निश्चित कर दिया गया। प्रत्येक ऋतु नये-नये भिन्न-भिन्न प्रकार के फल और फूल लेकर आती है। मानव हृदय मे अमुक-अमुक ऋतु मे अमुक-अमुक फल खाने की अभिलाषा सहज रूप मे जागृत हो जाती है। वे फल उस ऋतु मे

स्वादिष्ट भी लगते है और स्वास्थ्यप्रद भी होते है। जिस प्रकृति का अग ऋतु है, फल है और फूल है उसी प्रकृति का अग मानव शरीर भी है। मानव का भौतिक शरीर प्राकृतिक तत्वो से अनुस्यूत है। वह उनकी उपेक्षा नही कर सकता, उन्हे झुठला नही सकता उनका अनादर नही कर सकता, उनसे मुक्त नही हो सकता और उनका प्रत्याख्यान नही कर सकता। तभी तो गीता का शखनाद है कि

प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति।

भगवद्गीता, ३-३३

अर्थात्—प्रकृति से जात मानव के शरीर को प्रकृति के सामने घुटने टेकने पडते है, चाहे वह इन्द्रियो के निग्रह करने का कितना ही प्रयत्न क्यो न कर ले।

हरदेवा के जीवन की वसन्त ऋतु आरम्भ हो चुकी थी। साहित्यकारो ने युवावस्था को वसन्त ऋतु का प्रतीक माना है। इसलिये विवाह की कल्पना से ही उसके मन मे अनग की तरगे उठना स्वाभाविक था। जेसे-जैसे विवाह की घडिया समीप आ रही था वैसे-वैसे प्रमोद के कारण उसका खून बढता जा रहा था। परन्तु पारी के मन पर विवाह के शुभ दिन की स्मृति किसी विशिष्ट आनन्द को जन्म नही दे रही थी। पति-वियोग से उसका रक्त तो उत्तरोत्तर सूखता ही जा रहा था। उसके हृदय-पटल से पति की प्रतिमा एक क्षण के लिये भी ओझल नही हो रही थी। पति की स्मृति उसके लिये रोग का रूप धारण करती जा रही थी। काठ मे घुन के समान, वह उसके शरीर को खा रही थी। जैसे-जैसे हरदेवा के विवाह का दिन पास आता जा रहा था वैसे-वैसे पारी का स्वास्थ्य उससे दूर हटता जा रहा था। आखिर विवाह का दिन आ गया। सब सगे सम्बन्धियो की भीड लग गई। मिठाइया बनने लगी, बाजे बजने लगे, बरात सजने लगी और दूल्हे को भी सजाया गया। पारी ने माता के लिये प्रतिपादित सभी विधि-विधानो मे भाग लिया, उल्लास से नही, वीतरागता से, कूटस्थता से। उसकी बाह्याकृति पर प्रसन्नता की रेखा थी किन्तु उस रेखा के पीछे उदासीनता की भावना स्पष्ट झाक रही थी। अपने सुपुत्र हरदेवा के माथे पर तिलक करते समय उसने जब अपने

पति की आकृति की झलक उसके वदन पर देखी तो वह मुस्करा दी थी परन्तु वह मुस्कराहट क्षणिक थी। उस मुस्कराहट के पीछे छिपी उसके पति की स्मृति ने दूसरे ही क्षण उसे रोने को विवश कर दिया था। पास मे खडी स्त्रिया सम्भवत उसके आसुओ को आनन्द के आसू समझती होगी परन्तु वास्तव मे वे पति-वियोगजन्य वेदना के प्रस्फुटन थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने मे एक रहस्यात्मक इतिहास सजोये रहता है। किसी के बाह्य स्वरूप से उसके अन्तरतम के इतिहास का अनुमान लगा लेना सम्भव नही है।

पारी के स्वास्थ्य की चिंतनीय दशा

विवाह के विधि-विधान सुचारु रूप से सम्पन्न हो गये, वरात वापिस आ गई और नववधू का घर मे प्रवेश हो गया। वधू ने पारी के चरण छूए। बहू को अभी पूरा आशीर्वाद दे नही पाई थी कि उसका मन फिर भर आया, स्मृतियो और अनुभूतियो के तार पुन झंकृत हो उठे। वह सोच रही थी, "काश कि वे आज के दिन जीवित होते। कितने प्रसन्न होते वे अपने वश की बेल को हरीभरी देखकर। उनका उल्लास मेरा उल्लास होता, उस उल्लास मे वास्तविकता होती, वह उल्लास सजीव होता और मधुर होता किन्तु यह उल्लास कृत्रिम है, निर्जीव है और वेदनाच्छादित है, कम से कम मेरे लिये।" स्त्रिया सम्मिलित स्वरो मे विवाह के गीत गा रही थी किन्तु पारी पति की याद मे घर के पिछले भाग के एकान्त मे खडी फूट-फूट कर रो रही थी। घर एक ही था किन्तु उसमे बहने वाली भावनाओ की धाराए दो थी—एक परिहास की, दूसरी ह्रास की। इस ससार का विधान ही ऐसा है, किसी के सुहाग का श्रीगणेश होता है, किसी के सुहाग की इति-श्री होती है और किसी का सुहाग इतिश्री के पथ पर अग्रसर होता है।

इस विवाह के पन्द्रह दिन पश्चात् ही पारी के स्वास्थ्य की दशा चिन्तनीय हो गई। वह इतनी कृश हो गई कि उसका चारपाई से उतरना भी कठिन हो गया। उसके मन मे अपने जीवन के प्रति तरह-तरह के सन्देह उत्पन्न होने लगे। उसे विश्वास होता जा रहा था कि अब उसके जीवन का कोई भरोसा नही है। सबसे अधिक चिन्ता उसे चोले की थी जो रह-रह कर उसे चिन्ता-सागर मे डुबो रही थी।

कभी वह सोचती थी "यदि मैं जीवित रह गई तो हम दोनो मा-बेटा दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण करेंगे।" "कभी सोचती यदि मै चली गई तो इसका क्या बनेगा।"

पुत्र चाहे कैसा भी हो मा को अपनी जान से भी प्यारा होता है। फिर चोला तो सर्वगुणसम्पन्न और सर्वशुभलक्षणान्वित था, माता की ममता उसके लिये कैसे न उमडती? वह उसका जाया था, उसे अपना दूध पिलाया था, सुलाया था, जगाया था, दुलराया था, गृह कार्य करते समय भी अपने पैर से झूले की डोरी बाधकर झूले मे उसे झुलाया था, रोते को मधुर लोरियो से चुप कराया था, रूठे को तरह-तरह के प्रलोभन देकर मनाया था, आत्म-कल्याण की भावना के परिणामस्वरूप उसे पाया था, और वह अपने पिता की छाया था एव अपने रोम-रोम मे समाया था।

उत्तरदायित्व कुसुंबा को सौंपा

दो तीन दिन के अन्तराल मे ही पारी को पूर्ण विश्वास हो गया कि अब वह शरीर से इतनी क्षीण और जर्जरित हो गई है कि उसका बचना कठिन ही नही, असम्भव है। इस अवसर पर उसने अपनी परमप्रिय शुभचिन्तक सहेली और धर्मप्रेरिका पडौसिन कुसुम्बा को याद किया। उसे बुलाया। वह तुरन्त उपस्थित हो गई। जैसे वायु का स्पर्श पाते ही अग्नि और अधिक प्रज्वलित हो जाती है, वैसे ही दुःख के समय जब कोई हमारा अत्यन्त घनिष्ठ मित्र हमारे पास आता है तो हमारा दुःख और घना हो जाता है और आसुओ के रूप मे बाहर आने लगता है। कुसुम्बा को देखते ही पारी हिचकिया ले लेकर रोने लगी। पास मे बैठा चोला भी रो दिया, माता की ममता से आक्रान्त होकर किन्तु वह माता की पीडा के रहस्य को न छिपा सका। कुसुम्बा बडी आश्चर्यचकित थी कि आखिर इन आसुओ की पृष्ठभूमि क्या है। उसने पारी को सान्त्वना देकर कष्ट का कारण पूछा। ओढने के आचल से आसू पोछते हुए, अपने भी और चोले के भी, गद्-गद् स्वर मे बोली

"वहिन! तेरे से वढकर इस ससार मे मेरा और मेरे परिवार का कोई शुभचिन्तक नही है। तू मेरी धर्म वहिन है और धर्म का रग भी तुमने ही मुझ पर चढाया है। तुम्हारे साहचर्य से ही मै जैन सन्तो

के प्रवचन सुनने जाती रही हू। समय-समय पर तुमने ही मेरी उलझनो को सुलझाया भी है। अब एक अत्यन्त कठिन उलझन मे मैं पडी हुई हू, अधिकाधिक चिन्तन करने पर भी मैं उसे सुलझा नही सकी हू। अब तो मात्र तुम्हारी ही शरण है। "बेटे चोले ! हरदेवा के भोजन का समय हो गया है, तुम उसकी रोटी लेकर खेत चले जाओ।" चोले ने माता की आज्ञा का पालन किया। "तो हा, आज मैं तुमको अपने दाम्पत्य-जीवन की एक रहस्यात्मक बात बताती हूं जो आज तक मैंने किसी के सामने व्यक्त नही की है। एक बार जब हम दोनो पति-पत्नी जैन सन्तो का व्याख्यान सुनकर घर लौटे तो हम बडे प्रभावित थे उनकी आत्म-कल्याण की धर्म शिक्षा से। मुझे भली-प्रकार स्मरण है, तुम भी उस व्याख्यान मे उपस्थित थी। वह बखान जीव के विविध प्रकार के कर्मो के फल पर था। जीव अपने कर्मो के फल के कर्ता को और फलप्रदाता को कही बाहर ढूढता फिरता है किन्तु वास्तव मे वह स्वय ही अपने कर्मो का कर्ता और भोक्ता है। महाराज कहते थे कि जिस जीव ने शुभ कर्मो के द्वारा और तपश्चर्या द्वारा अपने अर्जित पाप-कर्मो की निर्जरा नही की, वह अनन्त काल तक अनेक योनियो मे भटकता रहता है। इसलिये असली कमाई या धन तो पुण्य कर्मो का अर्जन है। मैन अपने पति से कहा, "नि सन्देह हमारे पास जीवन की सभी सुविधाए, सुख और सम्पत्ति विद्यमान है किन्तु असली कमाई तो हमने भी अब तक कहा की है ? कौन से पुण्य की प्राप्ति हमने की है ? कौन से शुभ कर्म की ओर हमारी प्रवृत्ति अब तक रही है। इस पूजी के अतिरिक्त हमे शुभ कर्मो की पूजी का भी तो सग्रह करना चाहिये।" इसके उत्तर मे मेरे पति ने मुझ से कहा था, "बात तो तुम्हारी सोलह आने सत्य है किन्तु अब ढलती आयु मे तेरे और मेरे लिये तो सयम लेना सभव नही है। बाकी रहा हरदेवा, उसके बिना घर का और खेत का भार कौन सभालेगा, उसको तो मैं कभी भी सन्त-मार्ग पर चलने की आज्ञा नही दे सकता। हा, यदि दैव-कृपा से हमारे घर एक और पुत्र हो जाये तो मै बडी प्रसन्नता से उसे सयम लेने की आज्ञा दे दूगा।" मैने कहा, "पुत्र-मोह मे पडकर इन्कार तो नही कर दोगे ?" इस पर उन्होने बडी दृढता से कहा था, "मैं प्रतिज्ञा करता हू कि मैं अपने वचनो का सचाई से पालन करूगा।" इस प्रतिज्ञा के मास मे ही मैं गर्भवती हो गई थी जिसके

परिणामस्वरूप चोले का जन्म हुआ। हम दोनो बडे प्रसन्न हुए थे। चोले जैसे रूपवान एव शुभलक्षणसम्पन्न पुत्र को पाकर भी उसे नि श्रेयस के पथ का पथिक बनाने लिये उद्यत थे। पुत्र के मोह के कारण हमारे भावो मे कभी शैथिल्य नही आया। हमारे कुल मे कोई जीव तो आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलकर अपना कल्याण करे। अपना कल्याण ही क्यो, इससे हमारे कुल का नाम भी तो उज्ज्वल होगा। मेरे दुर्भाग्य से वे इस प्रतिज्ञा के पालन करने के समय तक जीवित न रह सके। पति प्रेम का आवेग पुन जागृत हो गया और पारी की आखो से टपटप आसुओ की बूदे टपकने लगी। विवेक से अपने को सभालती हुई कहती गई, "वे उस प्रतिज्ञा का भार मुझ पर छोड गये। काश ! कि हम दोनो मिलकर उस प्रतिज्ञा का पालन कर पाते किन्तु दैव को यह स्वीकार न था। दैव की कुदृष्टि अभी भी निरन्तर चालू है, ऐसा लग रहा है। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा है कि सम्भवत मैं भी उस प्रतिज्ञा का पालन नही कर सकूगी। मुझे अपनी आयु की घडिया अब सीमित लग रही है। यदि मैं कालकवलित हो गई तो मेरी और मेरे पति की प्रतिज्ञा का भार अब तुम पर है। चोला अभी नादान है, बेसमझ है और प्रकृति का भोला है। इसे सम्भाल कर रखना, कोई कष्ट न होने देना। अब तो बहिन तुम ही इसकी माता हो। जैसे सस्कार इसके डाल दोगी, यह भविष्य मे वैसा ही बन जायेगा। तुम तो धर्मनिष्ठ आत्मा हो, यथासम्भव इसको ऐसी शिक्षा देना कि इसकी प्रवृत्ति वैराग्य की तरफ हो जाये। यदि कोई जैन सन्त जो ज्ञानवान् विद्वान् और चरित्रवान् हो, यहा आ जाये तो चोले को उसे बहरा देना। चोला गुरु के चरणो मे रहकर विद्वान् बनेगा, धर्म का प्रचार करेगा, आत्म-कल्याण करेगा और कुल के नाम को रोशन करेगा। तुम ऐसा आश्वासन दोगी तो मेरे प्राण बडी शान्ति से पर-लोक का प्रयाण कर सकेंगे। अन्यथा इस के मोह मे उलझ कर वे बडी कठिनाई से इस देह का त्याग करेंगे। महाराज साहब का यह वाक्य मुझे अब तक याद है कि अन्त समय मे जीव के भाव अत्यन्त शुद्ध और पावन होने चाहिये। मुझे मरने की कोई चिन्ता नही है, जो आया है उसने तो जाना ही है। कोई भी यहा सदा रहने वाला नही है। मेरे जीवन सगी भी तो चले गये, किसको आशा थी कि वे इतने जल्दी चले जायेंगे। मैं तो सदा यही चाहती आई थी कि वे मुझे

अपने हाथ से विदा करके फिर जाये परन्तु मेरे चाहने से क्या होने वाला था। मुझे तो अब मात्र चिन्ता चोले की है। तुम यदि इसका उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लो तो मुझे इसकी भी चिन्ता नही है। कुसुम्बा! मुझे निराश न करना, मै वडे आत्मविश्वास से तुमसे आग्रह भी कर रही हू और प्रार्थना भी। यह तो किसी आत्मा के कल्याण की कामना है, तुम भी तो इससे शुभ कर्म वाधोगी। वोलो मै चिन्तामुक्त हो जाऊ, चोले को तुम्हारे वरद हाथो मे सौप कर।"

उत्तरदायित्व-निर्वाह की प्रतीक्षा

कर्मो की मारी पारी बेचारी यो कह कर चुप हो गई और बडी उत्कठा से कुसुम्बा के प्रत्युत्तर की प्रतीक्षा करने लगी। वह मन मे बडी शकित थी कि पता नही क्या उत्तर मिलेगा। कुसुम्बा बोली

"पारी! तुम अपना मन इतना छोटा क्यो करती हो। असल मे तो दैवकृपा से तुम स्वय थोडे ही दिनो मे स्वस्थ हो जाओगी और अपने हाथो से अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण कर सकोगी किन्तु यदि ऐसा दैव को स्वीकार नही है तो मै तुम्हारे उत्तरदायित्व का पूर्ण रूप से निर्वाह करूगी। आखिर प्राणी ही प्राणी के काम आता है। मै तुम्हे अपनी सगी बहिने से भी अधिक प्यारी और घनिष्ठ समझती हू। फिर हम धर्म-बहिने भी तो है। एक ही धर्म का पालन करती है। अशुभकर्मो से डरती है और शुभ कार्य करने मे प्रयत्नशील रहती है। यह कल्पना तो तुम्हे सपने मे भी नही करनी चाहिये कि मैं तुम्हारे उत्तरदायित्व को निभाने मे तनिक भी शैथिल्य दर्शाऊगी। चोले के विषय मे तुम्हारी यह आत्मकल्याणकारिणी भावना जानकर मेरा मन अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर रहा है। इस बात का तुमने पहले मुझसे जिक्र नही किया। यह तो अच्छी बात थी, इसे छिपाने की आवश्यकता नही थी। मुझे ऐसा लग रहा है कि चोले का जीव बडा पुण्यवान् है जिसके उद्धार के लिये जन्म से पूर्व ही ऐसी वीतरागता की भावनाए इस घर मे अपना घर कर गई थी। अपने पूर्वभवो मे वह वीतरागता की ही गोद मे पलता आया है, ऐसा मालूम होता है। मैंने तो जन्म के अगले दिन ही उसके शारीरिक शुभ-लक्षणो को देखकर अनुमान लगा लिया था कि निश्चित रूप से यह वालक होनहार है और भविष्य मे महान् वनकर अपने वश की शान मे चार चान्द लगायेगा। भवितव्यता या कर्मगति कभी अन्यथा नही होती, वह जीव को जिस ओर

ले जाना चाहती है उसे उसी ओर विवश होकर जाना पडता है। जिस जीव ने पूर्वभव मे शुभ कर्मो का उपार्जन किया है वह उत्तर जन्मो मे भी उसी ओर प्रवृत्त होता है, उसके लिये कर्मगति वैसी ही परिस्थितिया पैदा करती है। कुछ ही दिनो मे, ऐसा समाचार मिला है, यहा स्वामी सूरजमल जी महाराज के शिष्य स्वामी नथमल जी पधारने वाले हैं। वे बडे ही विद्वान्, चरित्रवान्, ज्ञानवान् धर्मध्यान मे धुरधर निष्ठावान्, इन्द्रिय पराजय मे विशिष्ट बलवान्, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कषायो पर प्रहारवान् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र के निधान, आगम-सिद्धान्त-धर्मग्रन्थो मे अतिशय गतिमान्, धर्ममार्ग-परिपन्थिग्रन्थग्रथितकुग्रन्थियो के निकृन्तन के लिये तर्क-कुठारवान्, नि श्रेयस पथ पर अबाधगति से अग्रसर होने के लिये अपेक्षित सामर्थ्यवान्, धार्मिक कर्मकाण्ड की क्रियाओ मे कर्मठ क्रियावान्, मतमतान्तरो की मान्यताओ के ज्ञान मे असाधारण मतिमान्, जीवदया-प्रचार के सचार मे सक्रिय शक्तिमान्, दु खदावानलदग्ध जगतीतल के भूतो के लिये साक्षात् मघवान्, कर्मास्रवसतप्त प्राणियो के लिये सवर और निर्जरा के साक्षात् मूर्तिमान् तत्वावधान, अज्ञानान्धकार-जनित जीव की वासनाओ को आवृत करनेवाले परिधान, कपायतमसाच्छादित जगत् के जीवो के लिए मोक्ष-मार्ग को प्रदर्शित करने वाले भास्वान् और प्राणिमात्र के लिये करुणा के निधान हैं। उनकी सेवा मे रहकर चोला मतिमान् बनेगा, ज्ञानवान् बनेगा और विद्वान् बनेगा। वे जब यहा पधारेंगे तो मैं चोले को उन्ही की सेवा मे बहरा दूगी और तेरी मनोकामना पूरी कर दूगी। जब तक उनका पदार्पण यहा नही होता तब तक मैं इसका अपने प्यारे पुत्र के समान पालन पोपण करूगी। यद्यपि माता के अभाव की पूर्ति ससार मे कोई भी नही कर सकता, तो भी मैं प्रयत्न करूगी कि इसे पूर्ण माता का वात्सल्य प्राप्त हो। चोला अत्यन्त बुद्धिमान, सौम्य, विनम्र एव गुण-ग्राही बालक है, निश्चय ही यह सन्त समुदाय का शिरोमणि, तपश्चर्या मे मूर्धन्य और विद्वानो मे अग्रगण्य बनेगा, ऐसी मेरी धारणा है।"

पारी के प्राण अमा के अंधकार में

अपने आग्रह का और अपनी प्रार्थना का कुसुम्बा से अनुकूल उत्तर पाकर पारी आनन्द-विभोर हो उठी और आखो मे आनन्दाश्रू भर कर

पाकर पारी आनन्द-विभोर हो उठी और आँखो मे आनन्दाश्रु भर कर कहने लगी, "कुसुम्बा! तेरे जैसी सज्जन, उदार और करुणामयी आत्माए बहुत कम है। मै तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर तक कृतज्ञ और ऋणी रहूगी। तुम मेरी पडोसिन और धर्म-वहिन ही नही हो, तुम तो साक्षा , बस इतना ही कह पाई थी कि उसके प्राण-पखेरु अमावस्या की घनान्धकारमयी रात्रि मे पता नही कहा खो गये। इस स्वर्गगमन की घडी पर हरदेवा, चोला, और हरदेवा की वहू-सभी उपस्थित थे। अमा के अन्धकार के समान ही घर के सभी सदस्यो के हृदयो का अन्धकार भी घनतम होता जा रहा था।

माता का वियोग

रजनी बीती, उषा ने अगडाई ली और सूर्यनारायण ने दर्शन दिये परन्तु अपनी प्यारी माता से सदा के लिए बिछुड कर चोले की शोकान्धकार की रजनी हिम-ऋतु की रात्रि के समान अधिकाधिक लम्बी होती जा रही थी। आत्म-सान्त्वना देने वाली उषा की किरण उसे कही दृष्टिगोचर नही हो रही थी। वह भलीभाति समझ गया था कि मातृवात्सल्य का प्रकाश उसे कभी मिलने वाला नही है। अभी तक तो चोला शुद्ध ससारी जीव था। अब तक उसने शिक्षा का प्रकाश कहा पाया था? अभी तक उसने वैराग्य के रग को कहा देखा था? अभी तक वह किसी विद्यागुरु के चरणो मे कब बैठा था? अब तक तो माता ही उसकी गुरु थी, जो घर के कामो से अवसर मिलने पर उसे कोई धर्म की, शिक्षा की और सदाचार की कहानी सुना दिया करती थी। दुर्विदग्ध दैव ने उसे भी उससे छीन लिया। उसके कोमल, भोले और पवित्र हृदय मे रह रह कर माता के प्रेम की लहरे उमडने लगी। ऐसे मौके पर वह अपने फूलो के खेत के कोने मे, जहा किसी की भी उस पर नजर न पडे, जाकर बैठ जाता। दु ख का साथी एकान्त है। ससार का कोई भी दुखी प्राणी आसुओ के रूप मे बहने वाले अपने दु ख को किसी के सामने व्यक्त करना नही चाहता। वह अपनी माता द्वारा किये गये अपने प्रति प्रत्येक उपकार को, दुलार को, पुचकार को, मनुहार को, कुतूहल-परिहार को, मधुर व्यवहार को, रूठने पर किये प्रेमोपहार को और वाल-सुलभ-हठ-याचित वस्तु के नकार को स्मरण करके और उन क्रियाओ के पीछे छिपी मातृ-प्रेम की भावनाओ मे डूब जाता, उसका हृदय भर आता और वह हिचकियां ले-ले कर

ने जाना चाहती है उसे उसी ओर विवश होकर जाना पडता है। जिस जीव ने पूर्वभव मे शुभ कर्मो का उपार्जन किया है वह उत्तर जन्मो मे भी उसी ओर प्रवृत्त होता है, उसके लिये कर्मगति वैसी ही परिस्थितिया पैदा करती है। कुछ ही दिनो मे, ऐसा समाचार मिला है, यहा स्वामी सूरजमल जी महाराज के शिष्य स्वामी नथमल जी पधारने वाले है। वे बडे ही विद्वान्, चरित्रवान्, ज्ञानवान् धर्मध्यान मे धुरन्धर निष्ठावान्, इन्द्रिय पराजय मे विशिष्ट वलवान्, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि कषायो पर प्रहारवान् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र के निधान, आगम-सिद्धान्त-धर्मग्रन्थो मे अतिशय गतिमान्, धर्ममार्ग-परिपन्थिग्रन्थग्रथितकुग्रन्थियो के निकृन्तन के लिये तर्क-कुठारवान्, नि श्रेयस पथ पर अवाधगति से अग्रसर होने के लिये अपेक्षित सामर्थ्यवान्, धार्मिक कर्मकाण्ड की क्रियाओ मे कर्मठ क्रियावान्, मतमतान्तरो की मान्यताओ के ज्ञान मे असाधारण मतिमान्, जीवदया-प्रचार के सचार मे सक्रिय शक्तिमान्, दु खदावानलदग्ध जगतीतल के भूतो के लिये साक्षात् मघवान्, कर्मास्रवसतप्त प्राणियो के लिये सवर और निर्जरा के साक्षात् मूर्तिमान् तत्वावधान, अज्ञानान्धकार-जनित जीव की वासनाओ को आवृत करनेवाले परिधान, कषायतमसाच्छादित जगत् के जीवो के लिए मोक्ष-मार्ग को प्रदर्शित करने वाले भास्वान् और प्राणिमात्र के लिये करुणा के निधान है। उनकी सेवा मे रहकर चोला मतिमान् बनेगा, ज्ञानवान् बनेगा और विद्वान् बनेगा। वे जब यहा पधारेगे तो मै चोले को उन्ही की सेवा मे वहरा दूगी और तेरी मनोकामना पूरी कर दूगी। जब तक उनका पदार्पण यहा नही होता तब तक मैं इसका अपने प्यारे पुत्र के समान पालन पोषण करूगी। यद्यपि माता के अभाव की पूर्ति ससार मे कोई भी नही कर सकता, तो भी मैं प्रयत्न करूगी कि इसे पूर्ण माता का वात्सल्य प्राप्त हो। चोला अत्यन्त बुद्धिमान, सौम्य, विनम्र एव गुण-ग्राही वालक है, निश्चय ही यह सन्त समुदाय का शिरोमणि, तपश्चर्या मे मूर्धन्य और विद्वानो मे अग्रगण्य बनेगा, ऐसी मेरी धारणा है।"

पारी के प्राण अमा के अंधकार में

अपने आग्रह का और अपनी प्रार्थना का कुसुम्बा से अनुकूल उत्तर पाकर पारी आनन्द-विभोर हो उठी और आखो मे आनन्दाश्रू भर कर

पाकर पारी आनन्द-विभोर हो उठी और आँखो मे आनन्दाश्रू भर कर कहने लगी, "कुसुम्बा ! तेरे जैसी सज्जन, उदार और करुणामयी आत्माए बहुत कम है । मै तुम्हारी जन्म-जन्मान्तर तक कृतज्ञ और ऋणी रहूगी । तुम मेरी पडोसिन और धर्म-वहिन ही नही हो, तुम तो साक्षा , बस इतना ही कह पाई थी कि उसके प्राण-पखेरु अमावस्या की घनान्धकारमयी रात्रि मे पता नही कहा खो गये । इम स्वर्गगमन की घडी पर हरदेवा, चोला, और हरदेवा की वहू-सभी उपस्थित थे । अमा के अन्धकार के समान ही घर के सभी सदस्यो के हृदयो का अन्धकार भी घनतम होता जा रहा था ।

माता का वियोग

रजनी बीती, उषा ने अगडाई ली और सूर्यनारायण ने दर्शन दिये परन्तु अपनी प्यारी माता से सदा के लिए बिछुड कर चोले की शोकान्धकार की रजनी हिम-ऋतु की रात्रि के समान अधिकाधिक लम्बी होती जा रही थी । आत्म-सान्त्वना देने वाली उषा की किरण उसे कही दृष्टिगोचर नही हो रही थी । वह भलीभाति समझ गया था कि मातृवात्सल्य का प्रकाश उसे कभी मिलने वाला नही है । अभी तक तो चोला शुद्ध ससारी जीव था । अब तक उसने शिक्षा का प्रकाश कहा पाया था ? अभी तक उसने वैराग्य के रग को कहा देखा था ? अभी तक वह किसी विद्यागुरु के चरणो मे कब बैठा था ? अब तक तो माता ही उसकी गुरु थी, जो घर के कामो से अवसर मिलने पर उसे कोई धर्म की, शिक्षा की और सदाचार की कहानी सुना दिया करती थी । दुर्विदग्ध दैव ने उसे भी उससे छीन लिया । उसके कोमल, भोले और पवित्र हृदय मे रह रह कर माता के प्रेम की लहरे उमडने लगी । ऐसे मौके पर वह अपने फूलो के खेत के कोने मे, जहा किसी की भी उस पर नजर न पडे, जाकर बैठ जाता । दु ख का साथी एकान्त है । ससार का कोई भी दुखी प्राणी आसुओ के रूप मे बहने वाले अपने दु ख को किसी के सामने व्यक्त करना नही चाहता । वह अपनी माता द्वारा किये गये अपने प्रति प्रत्येक उपकार को, दुलार को, पुचकार को, मनुहार को, कुतूहल-परिहार को, मधुर व्यवहार को, रूठने पर किये प्रेमोपहार को और वाल-सुलभ-हठ-याचित वस्तु के नकार को स्मरण करके और उन क्रियाओ के पीछे छिपी मातृ-प्रेम की भावनाओ मे डूब जाता, उसका हृदय भर आता और वह हिचकियां ले-ले कर

फूट-फूट कर रोने लगता। जब रोते-रोते थक जाता, आसू अवशेष न रहने से आँखो मे जलन मात्र रह जाती तो सोचने लगता

"कितनी अच्छी थी, कितनी प्यारी थी, मेरी मा। क्या ससार की सभी माताए अपने बच्चो को इतना प्यार करती होगी ? नही, ऐसा नही हो सकता। मेरी मा से बढ कर ससार की कोई मा नही हो सकती। एक बार मैं जब तीव्र ज्वर से पीडित था तो मेरी मा मेरे सिरहाने बैठी मेरे सिर पर भी हाथ फेरती जाती थी और मेरे दु ख को सहन न करके रोती भी जाती थी। उसकी आसुओ की कई बून्दे मेरी गालो पर टपक पडी थी। मा को रोते देख मै भी रोने लगा था। माँ ने मुझे पुचकारते हुए कहा था, "तू रोता क्यो है बेटे, क्या तेरे सिर मे पीडा है ? अभी ठीक हो जाएगा, मै अच्छी तरह से दवा देती हू।" "नही मा, मै तो इसलिये रोता हू कि तू जो रो रही है।" "मै कहा रो रही हू, बेटे ! तुझे भ्रम हो गया है।" मा ने मुझे सान्त्वना देने के लिये झूठ बोल दिया था। यद्यपि मा ने झूठ न बोलने का नियम ले रखा था किन्तु उस नियम से भी कही बढ कर उसके हृदय मे मेरे प्रति वात्सल्य था। वह मुझे प्रसन्न रखने के लिये बडे से बडे नियम की भी उपेक्षा कर देती थी। मुझे भलीभान्ति स्मरण है एक बार आपत्तिकाल मे जब फूलो की खेती को शीत लहर और कुहरे ने जला दिया था और घर आर्थिक दृष्टि से सकट मे पड गया था तो एक रात मा स्वय भूखी ही सो गई थी किन्तु मुझे भूखा नही सोने दिया था। घर मे मैं माँ को सबसे अधिक प्यारा था। पिता के निधन से यद्यपि मा को सबसे बडा धक्का लगा था किन्तु अपनी व्यथा की उपेक्षा करके भी वह सबसे अधिक ध्यान मेरा रखती थी कि कही मैं उदास न हो जाऊ। मा मुझे अधर मे ही छोड कर चली गई। पर यह उसके वश की बात कहा थी। वह क्या मुझे इस किशोरावस्था मे छोडकर जाना चाहती थी। उसे जाना पडा, वह सृष्टि के नियम को भला भग कैसे कर सकती थी ? मा मेरे लिये क्या नही थी, मेरा तो वही सर्वस्व थी। मै क्या मा के ऋण को कभी चुका सकता हू ? मै कितना भाग्यहीन हू, पहले पिता चले गये और उनको गये एक साल भी पूरा नही हो पाया कि मा भी मुझे अनाथ छोड कर चली गई। इस अभागे को मा ने सेवा करने का कुछ भी

अवसर न दिया। ऐसा लगता है कि मा मेरी देखरेख का उत्तर-दायित्व कुसुम्बा-मां पर छोड़ गई है। कुसुम्बा-मा भी मुझे अपनी मां जैसा ही प्यार करती है किन्तु मेरी मा जिसके हृदय का मैं टुकडा था, आखो का तारा था और जान से भी प्यारा था उसका स्थान तो संसार में कोई नही ले सकता। वह तो साक्षात देवी थी और वात्सल्यरस की प्रतिमा थी। मां के बिना अब मेरे भावी जीवन का क्या होगा? मेरी देखरेख कौन करेगा? मेरी सुविधाओ का ध्यान कौन रखेगा? मुझे प्रात. समय पर जगाकर कौन प्रातराश करायेगा? मेरी इच्छा न रहते भी कौन मुझे बलात् पौष्टिक भोजन खिलायेगा? पुचकार मे और दुलार मे तो प्यार था ही, माँ की तो डाट मे और क्रोध में भी प्यार था। कभी मेरे अपराध करने पर मुझे पीट भी देती थी तो बाद में रोने लगती थी, सभवत. इसलिये कि उसे अपने प्यारे बेटे को पीटने का पश्चात्ताप होता था। दूसरा कोई मुझ पर हाथ उठाये इसे वह कभी सहन नहीं करती थी। एक बार खेत मे दो ढोर घुसकर फसल को खराब कर रहे थे, मैं वही पर था, मैने गफलत से उन्हे हटाया नही, इस पर पिताजी ने मेरे दो चपत जमा दिये थे। मां जब मध्यान्ह का भोजन लेकर पहुंची तो उसने मुझे रोते पाया। कारण जानने पर वह पिताजी से नाराज हो गई थी और उन्हे कहने लगी कि 'क्या फूलो की फसल घर के अमूल्य फूल से अधिक मूल्यवान है?' पिताजी कुछ भी नही बोल सके, वे चुप हो गये थे। ठीक है हरदेवा भी अच्छा है और भाभी भी मेरा कभी निरादर नहीं करती, किन्तु माता का स्थान संसार मे कौन ले सकता है? भाई और भाभी से अधिक अब मुझ पर अधिकार कुसुम्बा-मां का है। उसकी शिक्षाओ और धर्म-कथाओ को सुन-सुनकर अब मुझे ससार असार लगने लगा है। वह ठीक ही तो कहती थी कि संसार नश्वर है और जीवन अस्थिर है। स्थिर होता तो पिता की असामयिक मृत्यु क्यो होती? स्थिर होता तो मेरी प्यारी मा मुझे मंझधार मे ही छोड कर क्यो चल देती? जब कोई भी स्थिर नही है तो मैं अपवाद कैसे बन सकता हूं? परन्तु कुसुम्बा-माँ यह भी तो कहती थी कि "शुभ कर्मो के अर्जन से और तपश्चर्या के अवलम्बन से जीवन अमर भी बन सकता है।" यह बात मेरे समझ मे नही

फूट-फूट कर रोने लगता। जब रोते-रोते थक जाता, आसू अवशेप न रहने से आँखो मे जलन मात्र रह जाती तो सोचने लगता

"कितनी अच्छी थी, कितनी प्यारी थी, मेरी मा। क्या ससार की सभी माताए अपने बच्चो को इतना प्यार करती होगी ? नही, ऐसा नही हो सकता। मेरी मा से बढ कर ससार की कोई मा नही हो सकती। एक बार मै जब तीव्र ज्वर से पीडित था तो मेरी मा मेरे सिरहाने बैठी मेरे सिर पर भी हाथ फेरती जाती थी और मेरे दु ख को सहन न करके रोती भी जाती थी। उसकी आसुओ की कई बून्दे मेरी गालो पर टपक पडी थी। मा को रोते देख मै भी रोने लगा था। माँ ने मुझे पुचकारते हुए कहा था, "तू रोता क्यो है बेटे, क्या तेरे सिर मे पीडा है ? अभी ठीक हो जाएगा, मै अच्छी तरह से दवा देती हू।" "नही मा, मं तो इसलिये रोता हू कि तू जो रो रही है।" "मै कहा रो रही हू, बेटे ! तुझे भ्रम हो गया है।" मा ने मुझे सान्त्वना देने के लिये झूठ बोल दिया था। यद्यपि मा ने झूठ न बोलने का नियम ले रखा था किन्तु उस नियम से भी कही बढ कर उसके हृदय मे मेरे प्रति वात्सल्य था। वह मुझे प्रसन्न रखने के लिये बडे से बडे नियम की भी उपेक्षा कर देती थी। मुझे भलीभान्ति स्मरण है एक बार आपत्तिकाल मे जब फूलो की खेती को शीत लहर और कुहरे ने जला दिया था और घर आर्थिक दृष्टि से सकट मे पड गया था तो एक रात मा स्वय भूखी ही सो गई थी किन्तु मुझे भूखा नही सोने दिया था। घर मे मै माँ को सबसे अधिक प्यारा था। पिता के निधन से यद्यपि मा को सबसे बडा धक्का लगा था किन्तु अपनी व्यथा की उपेक्षा करके भी वह सबसे अधिक ध्यान मेरा रखती थी कि कही मै उदास न हो जाऊ। मा मुझे अधर मे ही छोड कर चली गई। पर यह उसके वश की बात कहा थी। वह क्या मुझे इस किशोरावस्था मे छोडकर जाना चाहती थी। उसे जाना पडा, वह सृष्टि के नियम को भला भग कैसे कर सकती थी ? मा मेरे लिये क्या नही थी, मेरा तो वही सर्वस्व थी। मै क्या मा के ऋण को कभी चुका सकता हू ? मै कितना भाग्यहीन हू, पहले पिता चले गये और उनको गये एक साल भी पूरा नही हो पाया कि मा भी मुझे अनाथ छोड कर चली गई। इस अभागे को मा ने सेवा करने का कुछ भी

अवसर न दिया। ऐसा लगता है कि मा मेरी देखरेख का उत्तर-दायित्व कुसुम्वा-मा पर छोड गई है। कुसुम्वा-मा भी मुझे अपनी मा जैसा ही प्यार करती है किन्तु मेरी मा जिसके हृदय का मै टुकडा था, आखो का तारा था और जान से भी प्यारा था उनका स्थान तो ससार मे कोई नही ले सकता। वह तो साक्षात देवी थी और वात्सल्यरस की प्रतिमा थी। मा के विना अब मेरे भावी जीवन का क्या होगा ? मेरी देखरेख कौन करेगा ? मेरी सुविधाओ का ध्यान कौन रखेगा ? मुझे प्रात समय पर जगाकर कौन प्रातराश करायेगा ? मेरी इच्छा न रहते भी कौन मुझे वलात् पौष्टिक भोजन खिलायेगा ? पुचकार मे और दुलार मे तो प्यार था ही, माँ की तो डाट मे और क्रोध मे भी प्यार था। कभी मेरे अपराध करने पर मुझे पीट भी देती थी तो बाद मे रोने लगती थी, सभवत इसलिये कि उसे अपने प्यारे बेटे को पीटने का पश्चात्ताप होता था। दूसरा कोई मुझ पर हाथ उठाये इसे वह कभी सहन नही करती थी। एक वार खेत मे दो ढोर घुसकर फसल को खराब कर रहे थे, मै वही पर था, मैने गफलत से उन्हे हटाया नही, इस पर पिताजी ने मेरे दो चपत जमा दिये थे। मा जब मध्यान्ह का भोजन लेकर पहुची तो उसने मुझे रोते पाया। कारण जानने पर वह पिताजी से नाराज हो गई थी और उन्हे कहने लगी कि 'क्या फूलो की फसल घर के अमूल्य फूल से अधिक मूल्यवान है ?' पिताजी कुछ भी नही बोल सके, वे चुप हो गये थे। ठीक है, हरदेवा भी अच्छा है और भाभी भी मेरा कभी निरादर नही करती, किन्तु माता का स्थान ससार मे कौन ले सकता है ? भाई और भाभी से अधिक अब मुझ पर अधिकार कुसुम्बा-मा का है। उसकी शिक्षाओ और धर्म-कथाओ को सुन-सुनकर अब मुझे ससार असार लगने लगा है। वह ठीक ही तो कहती थी कि ससार नश्वर है और जीवन अस्थिर है। स्थिर होता तो पिता की असामयिक मृत्यु क्यो होती ? स्थिर होता तो मेरी प्यारी मा मुझे मझधार मे ही छोड कर क्यो चल देती ? जब कोई भी स्थिर नही है तो मैं अपवाद कैसे बन सकता हूँ ? परन्तु कुसुम्बा-माँ यह भी तो कहती थी कि "शुभ कर्मो के अर्जन से और तपश्चर्या के अवलम्बन से जीवन अमर भी बन सकता है।" यह बात मेरे समझ मे नही

आई। मेरे पिता और मेरी मा भी शुभकर्म ही तो करते थे। खेती का काम क्या तपश्चर्या नही है तो फिर वे अमर क्यो नही बने ? वे मुझे छोडकर क्यो चले गये ?"

इत्यादि अनेक प्रकार की भावनाए, स्मृतिया और कल्पनाए चोला के कोमल, विचलित एव अशान्त मन-पटल पर चलचित्र के चित्रो के समान अकित होती जाती थी। उसका विद्या-सस्कार यद्यपि अभी तक घरेलू विपम वातावरण के कारण नही हो पाया था परन्तु पूर्वभवार्जित प्रतिभा के कारण उसका अन्तर्जीव और अन्तर्मन-दोनो सजग थे। वह बोलता बहुत कम था, जैसे-जैसे उसकी आयु आगे बढती जा रही थी, वह उत्तरोत्तर गभीर होता जा रहा था। उसके मौन से सभी यही अनुमान लगाते थे कि माता की मृत्यु इसमे कारण थी परन्तु वास्तव मे उसके मौन का क्या रहस्य था ? इसका ज्ञान किसी को नही था।

वैराग्य का बीजारोपण

कुसुम्बा अपने उत्तरदायित्व एव पारी की प्रतिज्ञा को भूली नही थी। वह पारी के समान ही चोला का पूरा ध्यान रखती थी। हरदेवा और भाभी भी चोले से बडा प्यार करते थे और जो कुछ वह कहता था उसकी माग पूरी करते थे परन्तु चोला अधिकतर कुसुम्बा के पास ही रहना पसन्द करता था क्योकि वह उसे बडी सुन्दर-सुन्दर धर्म की कहानिया सुनाया करती थी। 'चोला को वैराग्य के रग मे रग कर धर्म के मार्ग पर प्रवृत्त कराना' पारी के इन शब्दो को कुसुम्बा भूली नही थी। चोला धार्मिक कहानियो को बडे चाव से सुनता था और बार-बार आग्रह करने लगा था कुसुम्बा से वैसी धार्मिक कहानिया अधिकाधिक सुनाने के लिये। कुसुम्बा का अब तक का सारा जीवन जैन सन्तो के प्रवचन सुनते बीता था। उसका मस्तिष्क धार्मिक कहानियो का भण्डार था। वह चोले को कभी भी निराश नहीं करती थी। इन धर्मकथाओ के श्रवण के परिणामस्वरूप चोले की मानसिक प्रवृत्तिया धर्म के रग से रजित होती जा रही थी। वैराग्य के सस्कारो का बीजारोपण हो चुका था, अब तो उर्वरा भूमि पाकर उनका अकुरित होना बाकी था। इसी अन्तराल मे कुसुम्बा को यह समाचार मिला कि स्वामीजी सूरजमलजी के शिष्य नथमलजी

महाराज पीपलिया गाव मे दो दिन मे पधारने वाले है। ठीक ही तो लिखा है विक्रम चरित मे

भवितव्य यथा येन, नासौ भवति चान्यथा।
नीयते तेन मार्गेण, स्वय वा तत्र गच्छति ॥

सु० र० भा० ६१।३०

अर्थात्—जो कार्य जिस ढग से जहा होना होना है वह वैसे ही होता है, उसमे परिवर्तन नही हो सकता। या तो जीव को उसकी परिस्थितिया वहा ले जाती हे या फिर वह स्वय वहा चला जाता है।

भर्तृहरि भी इसी सत्य का पोषण करते हुए लिखते है

येन यत्रैव भोक्तव्य, सुख वा दु खमेव वा।
स तत्र बध्द्वा रज्ज्वेव, बलाद्दैवेन नीयते ॥

भर्तृहरि-सुभाषित-सग्रह, ६६२

अर्थात्—जिस जीव को जो सुख या दु ख जिस स्थान पर भोगना होता है, वह जीव सुख-दु ख भोगने के लिये वहा ऐसे पहुंच जाता है जैसे दैव ने डोरी से बाधकर बलात् उसे वहा पहुँचा दिया हो।

स्वामीजी नथमलजी महाराज के, दो दिन पश्चात्, आगमन के समाचार को सुनकर कुसुम्बा फूली न समाई। उसने चोले के समक्ष स्वामीजी नथमलजी महाराज की प्रशसा करते हुए कहा

"बेटे चोले, स्वामी जी नथमलजी महाराज बडे पहुचे हुए सन्त है। वे सभी धर्मों के, शास्त्रो के, विशेष रूप से जैनागमो के असाधारण विद्वान् है। तपश्चर्या की तो वे जीती-जागती प्रतिमा है। वे जितेन्द्रिय है। काम, क्रोधादि कषायो को उन्होने अपने ज्ञानरूपी कुठार से काट डाला है। वे पच महाव्रत धारी सन्त है। उनकी ज्ञान गरिमा एव तपश्चर्या की महिमा की धूम मरुधरा की पावन भूमि मे सर्वत्र फैली हुई है। सासारिक प्रलोभनो की एव ऐन्द्रिय विषयो की बाह्य सुरम्यता और परिणाम मे दुर्विपाकता के तत्व-ज्ञान मे वे निष्णात है। समता की भावना का साक्षात् स्वरूप होने के कारण वे ऊच-नीच की भावना की लघिमा से सर्वथा अलिप्त है। उनका रोम-रोम प्राणिमात्र के प्रति करुणा से अनुप्राणित है। उनका साधुमार्गीय जीवन उच्च-विचार, सदाचार और मधुर-व्यवहार से ओत-प्रोत है। साधु मार्ग मे आने

वाले अनेक क्लेशो को, कठिनाइयो को, कर्कशताओ को और अज्ञानी जीवो द्वारा अज्ञानवश मार्ग मे प्रकीर्ण कण्टको की कटु पीडा को वे दु ख से नही किन्तु धैर्य से सहन करते है। वे अपने विरोधियो पर क्रोध नही किन्तु करुणा करते है। दुष्कर्मो मे प्रवृत्त दुष्टात्माओ को दुष्कर्म का परिणाम बताकर वे उन्हे सन्मार्ग पर प्रवृत्त करने का प्रयत्न करते है। कर्मबन्ध की कारा मे जकडे हुए जीवो को वे लोकोत्तर जन्म मे सद्गति प्राप्त करने के लिये कर्मक्षय का उपदेश देते है। कुमार्ग मे प्रवृत्त प्राणियो को वे सन्मार्ग की सरल पगडडी पर चलने की सुन्दर शिक्षा देते है। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव को भी जीवन से वचित करने मे हिसा मानते है। इसी कारण वे चलते भी सावधानी से है, बोलते भी सावधानी से है, बैठते भी सावधानी से है, उठते भी सावधानी से है, सोते भी सावधानी से है और आहार भी सावधानी से करते है। उनका ऐसा कहना है कि ऐसा करने से पाप कर्म का बन्ध नही होता। उनका प्रवचन बडा ही मधुर, सारगर्भित एव विद्वत्तापूर्ण होता है। बडे दूर-दूर के लोग उनका प्रवचन सुनने के लिये आया करते है। उनको सुनने के लिये मैने भी बडी दूर-दूर की यात्राए की है। एक बार जब वे सोजत मे विराज रहे थे तो मैने पारी को अपने साथ चलने को कहा था किन्तु उस समय तुम्हारा जन्म होने वाला था, इसलिये वह जा नही सकी थी। कल का ही दिन बाकी है, परसो मध्यान्ह मे वे पधार जायेगे। तुम भी मेरे साथ चलना बेटे, उनका प्रवचन सुनने के लिये। बडी ज्ञान की, विज्ञान की, समाधान की, कर्म-सन्धान की और मोक्षधाम की बाते सुनोगे तुम उनसे। बिना सद्गुरू की प्राप्ति के आत्म-कल्याण का बोध कभी भी सभव नही है। वे सद्गुरू है, ससार के जीवो को भव सागर से तारने वाले है और स्वय तरते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो रहे है। पूर्व जन्मार्जित कर्मो का तपश्चर्या द्वारा क्षय करते हुए वे इहलोक मे असख्य जीवो की यतना द्वारा रक्षा करते हुए शुभ कर्मो का सचय किया करते है। अपने उपदेशो द्वारा श्रावको को भी हिंसा का परित्याग करने का नियम दिलाकर महान् पुण्यार्जन करते है। सन्त तो यहा पीपलिया मे सभी धर्मो के आते रहते है परन्तु जैसी कठोर साधना, घोर तपश्चर्या और आश्चर्यजनक कष्ट-

सहिष्णुता मैंने जैन सन्तो मे देखी है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। न भी चलेगा न वेटे, उनका व्याख्यान सुनने के लिये ?

"निश्चित चलूगा मा, मुझे प्रतिदिन साथ लेने चलना। भूल न जाना कभी।"

चोले ने आग्रहपूर्वक विनम्र वाणी मे उत्तर दिया।

स्वामीजी श्री नथमलजी महाराज का आगमन

पीपलिया गाव के जैन-अजैन सभी श्रावक स्वामीजी नथमलजी महाराज के आने के तीसरे दिन की वडी उत्कठा से प्रतीक्षा करने लगे। कहते है प्रतीक्षा की घडिया लम्बी होती जाती है। अगला दिन आया और फिर आया तीसरा दिन भी। स्वामीजी के लिये गाव के स्त्री-पुरुष, वालक-वृद्ध, कई माईल तक दूर चले गये। वडी उत्कट श्रद्धा से स्वामीजी की अगवानी की। सवने सविधि वन्दना की और स्वामीजी की सुखसाता पूछी। सवको 'दया पालो' का आशीर्वाद देकर सन्त गाव की ओर वढे। स्वामीजी नथमलजी महाराज का सूर्य के समान देदीप्यमान वदन किसको प्रभावित नही कर रहा था। ज्ञान की ज्योति के वे जीवित पुज थे। विषय-वैश्वानर-सतप्त प्राणियो के वे आश्रय-निकुज थे। शरणागत और अशरणागत सभी प्रकार के जीवो के लिये वे करुणा के अवतार थे और कषाय-शत्रु-समूह-विनाश के लिये वे दुधारी तलवार थे। शान्ति, गभीरता और धीरता के वे अगाध पारावार थे। कुछ ही क्षणो मे उन्होने अपनी चरण-रज से गाव की धरित्री को पावन किया। साधु की आवश्यक क्रियाओ से निवृत्त होकर वे तखत पर विराजमान हो गये। आस-पास के गावो के लोग भी हजारो की सख्या मे वहा उनका प्रवचन सुनने के लिये पहुच चुके थे। कुसुम्बा भी चोले को लेकर वहा उपस्थित थी। वडी उत्कठा से प्रतीक्षा कर रहे थे, लोग उनके मुखारविन्द से निकलने वाली वाणी के सौरभ की।

स्वामीजी की प्रवचन-वृष्टि

स्वामी जी नथमल जी महाराज का प्रवचन आरम्भ हो गया। आरम्भ जिनेन्द्र भगवान की स्तुति से हुआ। श्रमण धर्म की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए उन्होने जैन धर्म के प्राणियो पर पडने वाले

वाले अनेक क्लेशो को, कठिनाइयो को, कर्कशताओ को और अज्ञानी जीवो द्वारा अज्ञानवश मार्ग मे प्रकीर्ण कण्टको की कटु पीडा को वे दु ख से नही किन्तु धैर्य से सहन करते है। वे अपने विरोधियो पर क्रोध नही किन्तु करुणा करते है। दुष्कर्मो मे प्रवृत्त दुष्टात्माओ को दुष्कर्म का परिणाम बताकर वे उन्हे सन्मार्ग पर प्रवृत्त करने का प्रयत्न करते है। कर्मबन्ध की कारा मे जकडे हुए जीवो को वे लोकोत्तर जन्म मे सद्गति प्राप्त करने के लिये कर्मक्षय का उपदेश देते है। कुमार्ग मे प्रवृत्त प्राणियो को वे सन्मार्ग की सरल पगडडी पर चलने की सुन्दर शिक्षा देते है। वे सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव को भी जीवन से वचित करने मे हिसा मानते है। इसी कारण वे चलते भी सावधानी से है, बोलते भी सावधानी से है, बैठते भी सावधानी से है, उठते भी सावधानी से है, सोते भी सावधानी से हैं और आहार भी सावधानी से करते है। उनका ऐसा कहना है कि ऐसा करने से पाप कर्म का बन्ध नही होता। उनका प्रवचन बडा ही मधुर, सारगर्भित एव विद्वत्तापूर्ण होता है। बडे दूर दूर के लोग उनका प्रवचन सुनने के लिये आया करते है। उनको सुनने के लिये मैने भी बडी दूर-दूर की यात्राए की है। एक बार जब वे सोजत मे विराज रहे थे तो मैने पारी को अपने साथ चलने को कहा था किन्तु उस समय तुम्हारा जन्म होने वाला था, इसलिये वह जा नही सकी थी। कल का ही दिन बाकी है, परसो मध्यान्ह मे वे पधार जायेगे। तुम भी मेरे साथ चलना बेटे, उनका प्रवचन सुनने के लिये। बडी ज्ञान की, विज्ञान की, समाधान की, कर्म-सन्धान की और मोक्षधाम की बाते सुनोगे तुम उनसे। बिना सद्गुरू की प्राप्ति के आत्म-कल्याण का बोध कभी भी सभव नही है। वे सद्गुरू है, ससार के जीवो को भव सागर से तारने वाले है और स्वय तरते हुए मोक्ष मार्ग पर अग्रसर हो रहे है। पूर्व जन्मार्जित कर्मो का तपश्चर्या द्वारा क्षय करते हुए वे इहलोक मे असख्य जीवो की यतना द्वारा रक्षा करते हुए शुभ कर्मो का सचय किया करते है। अपने उपदेशो द्वारा श्रावको को भी हिसा का परित्याग करने का नियम दिलाकर महान् पुण्यार्जन करते है। सन्त तो यहा पीपलिया मे सभी धर्मो के आते रहते हैं परन्तु जैसी कठोर साधना, घोर तपश्चर्या और आश्चर्यजनक कष्ट-

सहिष्णुता मैंने जैन सन्तो मे देखी है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। तू भी चलेगा न बेटे, उनका व्याख्यान सुनने के लिये ?

"निश्चित चलूगा मा, मुझे प्रतिदिन साथ लेते चलना। भूल न जाना कभी।"

चोले ने आग्रहपूर्वक विनम्र वाणी मे उत्तर दिया।

स्वामीजी श्री नथमलजी महाराज का आगमन

पीपलिया गाव के जैन-अजैन सभी श्रावक स्वामीजी नथमलजी महाराज के आने के तीसरे दिन की बडी उत्कठा से प्रतीक्षा करने लगे। कहते है प्रतीक्षा की घडिया लम्बी होती जाती है। अगला दिन आया और फिर आया तीसरा दिन भी। स्वामीजी के लिये गाव के स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, कई माईल तक दूर चले गये। बडी उत्कट श्रद्धा से स्वामीजी की अगवानी की। सबने सविधि वन्दना की और स्वामीजी की सुखसाता पूछी। सबको 'दया पालो' का आशीर्वाद देकर सन्त गाव की ओर बढे। स्वामीजी नथमलजी महाराज का सूर्य के समान देदीप्यमान वदन किसको प्रभावित नही कर रहा था। ज्ञान की ज्योति के वे जीवित पुज थे। विषय-वैश्वानर-सतप्त प्राणियो के वे आश्रय-निकुज थे। शरणागत और अशरणागत सभी प्रकार के जीवो के लिये वे करुणा के अवतार थे और कषाय-शत्रु-समूह-विनाश के लिये वे दुधारी तलवार थे। शान्ति, गभीरता और धीरता के वे अगाध पारावार थे। कुछ ही क्षणो मे उन्होने अपनी चरण-रज से गाव की धरित्री को पावन किया। साधु की आवश्यक क्रियाओ से निवृत्त होकर वे तखत पर विराजमान हो गये। आस-पास के गावो के लोग भी हजारो की सख्या मे वहा उनका प्रवचन सुनने के लिये पहुच चुके थे। कुसुम्बा भी चोले को लेकर वहा उपस्थित थी। बडी उत्कठा से प्रतीक्षा कर रहे थे, लोग उनके मुखारविन्द से निकलने वाली वाणी के सौरभ की।

स्वामीजी की प्रवचन-वृष्टि

स्वामी जी नथमल जी महाराज का प्रवचन आरम्भ हो गया। आरम्भ जिनेन्द्र भगवान की स्तुति से हुआ। श्रमण धर्म की विशेषताओ पर प्रकाश डालते हुए उन्होने जैन धर्म के प्राणियो पर पडने वाले

प्रभाव का प्रसग चलाया। कथा अतगढ सूत्र की थी। स्वामीजी ने फरमाया

"वहुत प्राचीनकाल की वात है। इसी भारतभूमि मे " 'पोलासपुर' नाम का एक नगर था जो विजयसेन नामक राजा की राजधानी था। धर्मनिष्ठ राजा अपनी 'श्री' नाम की रानी के साथ वडी कुशलतापूर्वक प्रजा का शासन करता था। उसका राजदण्ड दुरतिक्रम्य था, उसका न्यायनिर्णय अनतिक्रमणीय था, उसकी शासनपद्धति अतुलनीय थी और उसकी आचार-सहिता अति कमनीय थी। सभी जातियो के लोगो मे पारस्परिक समता का, प्रेम का, सहयोग का, सम्मान का, समय पडने पर अनुदान का और एक दूसरे के दु ख की पहचान का भाव था। राजा विजयसेन और रानी 'श्री' दोनो सन्तो का सग करने वाले थे। सन्तो के प्रवचनो को सदा अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करते थे। उनके राज्य मे पशुवलि राजकीय आज्ञा से निषिद्ध थी। दोनो वडे दयालु थे। किसी मनीपी सन्त के उपदेश से उन्होने आखेट का परित्याग कर दिया था। वे जाव दया के घोर पक्षपाती थे। जीव दया के पक्षपाती होने का यह अर्थ नही है कि वे मन से कायर थे। युद्ध-भूमि मे तो दुर्धर्प योद्धा ही थे। कोई पडौसी राजा यह साहस नही कर सकता था कि उनकी स्टेट पर आक्रमण करे। 'यथा राजा तथा प्रजा' की उक्ति के अनुसार उनकी प्रजा भी दया की भावना से पूर्णरूपेण सम्पन्न थी। सत्सग की अनुरागिणी थी। कोई भी श्रमणसन्त जब राजधानी की सीमा मे होता तो लोग महती सख्या मे उसकी अगवानी करने जाया करते थे। बडे सम्मान, श्रद्धा और सत्कार से नगरी मे सन्तो का प्रवेश होता था। प्रवचन समय मे भी बडी भीड रहती थी। लोग ज्ञान के पिपासु थे और धर्म के जिज्ञासु थे। ज्ञान से वे कभी सन्तुष्ट नही हुए और जिज्ञासा से वे कभी विमुख नही हुए। जिस युग का यह प्रसग चल रहा है यह युग ईसा से छह सौ वर्ष पूर्व भगवान् महावीर का युग था। यह वह चिरस्मरणीय, अनुगमनीय एव अनुचरणीय युग था जिसमे भगवान् महावीर हमारे समान मानवीय शरीर को धारण करते हुए अपनी पावन चरणरज से इस धराधाम को धन्य बना रहे थे। महापुरुष जहा अपने चरणो का न्यास करते है वही स्थान तीर्थ बन जाता है। उनकी मधुर एव सारगर्भित गिरा मे अमरता का सन्देश होता है। वे जिस ओर

मुड़ते है, युग उसी ओर मोड ले लेता है। वे रुक जाते है तो युग की गति रुक जाती है। वे चलते है तो युग आगे गतिशील हो जाता है। युग उनका नही किन्तु वे युग का निर्माण करते हैं। यही कारण है कि ससार के लोग उनको युग-पुरुष कहते हैं, युग-स्रष्टा कहते है और युग-द्रष्टा कहते है।

भगवान् महावीर को भी हम युग-पुरुष, युग-स्रष्टा और युग-द्रष्टा मानते है। सर्वज्ञावस्था मे उन्हे भगवान् की उपाधि से अलकृत करते है। चौवीसवे तीर्थंकर मानते है। अनेक नगरो और गावो मे से पैदल विहार करते-करते भगवान् महावीर पोलासपुर नगरी के 'श्रीवन' नामक उद्यान मे पधारे। गणधर मुनि गौतम समेत सैकडो शिष्य भगवान् के साथ थे। भगवान् के प्रवचन की सूचना पाकर सहस्रो नर-नारी उनके समवसरण (धर्म-सभा) मे एकत्रित हो गए। भगवान् का प्रवचन हुआ और सबने मत्रमुग्ध होकर सुना। पोलासपुर नगरी मे बडी धूमधाम थी। सारी नगरी को भगवान् के आने की सूचना पाकर पहले ही सजा दिया गया था। भगवान् के प्रवचन के पश्चात् 'गोचरी' (जैन सन्तो की आहार ग्रहण करने की पद्धति, जिसके अनुसार श्रद्धालु श्रावको के घरो से वे गौ के समान थोडा-थोडा आहार लेकर ही निर्वाह करते है, गौ भी वैसे ही कुछ घास इस स्थल से और कुछ दूसरे स्थल से खाकर पेट भरा करती है) करने के लिये गणधर इन्द्रभूति गौतम नगर-पथ पर निकले। इन्द्रस्थान पर क्रीडा करते हुए कुछ बालको ने उन्हे आते देखा। इन बालको मे अतिमुक्तक राज-कुमार भी था। वह राजा विजयसेन के सिहासन का उत्तराधिकारी युवराज था। यद्यपि अभी बालक ही था किन्तु 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' जो बालक होनहार होते है उनके शुभ लक्षण बचपन मे ही दृष्टिगोचर होने लगते है। अतिमुक्तक कुमार यद्यपि बच्चो के साथ खेलने मे व्यग्र था किन्तु उसकी दृष्टि बडी पैनी थी और उसका ध्यान सर्वतोमुखी था। उसने इन्द्रभूति गौतम को एक घर से दूसरे, दूसरे से तीसरे आदि मे आहार के लिये जाते देखा। गौतम गणधर का व्यक्तित्व बडा ही प्रभावशाली, शोभाशाली और आकर्षण का केन्द्र था। उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर लोग बलात् उनकी ओर खिंचे आते थे। ठीक वैसे ही जैसे चुम्बक की ओर धातु खिंचे चले

आते है और पृथ्वी की ओर आकाश मे फेके गये पार्थिव पदार्थ खिचे नीचे चले आते है। गणधरो का व्यक्तित्व सहज रूप मे ऐसा ही होता है। प्रतिभाशाली अतिमुक्तक कुमार भी व्यक्तित्व से प्रभावित होकर, खेल छोडकर इन्द्रभूमि गौतम के पास आकर खडा हो गया और बालसुलभ प्रश्न पूछने लगा

"तुम कौन हो ? तुम्हारा घर-घर मे अटन का क्या कारण है ?"

"हम तो श्रमण सन्त, निर्ग्रन्थ है, हमारी आचार-सहिता के अनुसार हमे इसी प्रकार घर-घर घूमकर यत्किचित् आहार लेना होता है।"

गौतम स्वामी ने उत्तर दिया।

अतिमुक्तक कुमार ने गौतम स्वामी की अगुली पकड ली, आखिर बालक ही तो था, और कहने लगा

"यदि ऐसी बात है तो चलो मेरे साथ, मै आपको अपने घर भिक्षा दिलाता हू।"

अगुली पकडे हुए अतिमुक्तक कुमार गौतम स्वामी को राजमहल में ले गया। गौतम स्वामी को देखते ही राजा विजयसेन अपने सिंहासन से उठ गया और उसके पास ही सुवर्ण-पीठ पर बैठी श्री रानी भी खडी हो गई। दोनो ने हाथ जोडकर सन्तो को सविधि वन्दना की, सुख-साता पूछी, दर्शन करके अपना अहोभाग्य व्यक्त किया और राजकुमार की बुद्धि की बडी सराहना की। कितनी श्रद्धा से, प्रेम से, उत्साह से, उत्कठा से और उल्लास से राजा विजयसेन एव रानी 'श्री' ने सन्तो को आहार बहराया—यह सारा दृश्य अतिमुक्तक कुमार बडे ध्यान से देख रहा था। वह सोच रहा था

"क्या ये श्रमण सन्त इतने महान् है कि जिनके लिये मेरे पिता महाराजाधिराज ने इन्हे देखते ही अपना सिहासन छोड दिया और मेरी माता भी सुवर्णपीठ छोडकर खडी हो गई। दोनो ने हाथ जोडकर सविधि वन्दना की। नि सन्देह ये कोई असाधारण पहुचे हुए सन्त प्रतीत होते है। अरे हा, सारी राजधानी भी तो इनके सत्कार, सम्मान एव स्वागत के लिये इनके आने से पूर्व ही सुसज्जित कर दी गई थी। स्त्री-पुरुषो के झुण्ड के झुण्ड इनके दर्शनो के लिये बाजारो और गलियो मे जाते दिखाई दे रहे थे। सामान्य व्यक्ति के लिये इतना कौन करता

है ? जहा ये सन्त ठहरे हुए है, वह स्थान मुझे भी तो देखना चाहिये। इनका प्रवचन भी तो सुनना चाहिये, यह जानने के लिये कि ये कैसी शिक्षा देते है श्रोताओ को। अवश्य ही कोई सारगर्भित ज्ञान की बात कहते होगे। तभी तो इतने नरनारी अधिक जिज्ञासा की भावना से खिचे चले जाते है।"

गौतम स्वामी जब राजमहल से गोचरी लेकर प्रस्थान करने लगे तो अतिमुक्तक कुमार उनके समीप आकर बोला

"आप कहा रहते है और क्या करते है।" उत्तर मे गौतम स्वामी ने कहा

"हम भगवान् महावीर के शिष्य है। कोई एक निश्चित स्थान हमारे रहने का नही है। केवल चातुर्मास मे अधिक हरियाली के कारण और जीवो की असख्य उत्पत्ति के कारण जीव-हिसा के भय से एक स्थान पर टिक जाते है किन्तु आठ मास तक तो हम ग्राम-ग्राम, नगर-नगर मे भगवान् महावीर के सिद्धान्तो का प्रचार करते हुए विचरते रहते है। आत्म-कल्याण के लिये या नि श्रेयस् की प्राप्ति के लिये कठिनतम परीषहो को जीतना, और श्रावको को इसका उपदेश देना, नि श्रेयस् के सच्चे पथिक बनने के लिये पूर्वजन्मार्जित एव इहलौकिक कर्मो का क्षय करना और दूसरो को ऐसा करने की शिक्षा देना हमारा काम है। जो सासारिक पाप-परिणाम-भूत दु खो से परेशान है, उन पर करुणा करना, दया करना, भी हमारा काम है, ऐसे लोगो को हम पाप के मार्ग का परित्याग करने का उपदेश देते है। गिरो को ऊचा उठाना, ऊचो की सन्मार्ग मे प्रवृत्ति कराना भी हमारा काम है। बडी सावधानी से हम पच महाव्रतो का पालन करते है और श्रावको को भी पच महाव्रत पालन का उपदेश देकर इस सन्मार्ग की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करते है। जो हम पर क्रोध करता है, हम उस पर करुणा करते है और जो हमे यातना देता है उसको हम दया की दृष्टि से देखते है। बदले मे किसी को दण्ड नही देते, उसका विरोध या प्रतिकार नही करते किन्तु धैर्यपूर्वक उस कष्ट को सहन कर लेते है। कोई हमे अपशब्द कहता है तो हम उसकी अज्ञानता पर मुस्करा देते है। ससार मे सभी प्रकार के प्राणी है, सबसे सम्मान की कभी भी आशा नही की जा सकती। हम निर्ग्रन्थ कहलाते है, गाठ बाधकर

परिग्रह के रूप मे कुछ भी नही रखते। जैसा हमारी ग्राचार सहिता के ग्रनुसार शुद्ध ग्रन्न, जल, वस्त्रादि हमे श्रावको के घरो से उपलब्ध हो जाता है, उसी से हम ग्रपना निर्वाह कर लेते है। ग्रधिक की ग्रभिलापा नही करते ग्रौर कम पर पश्चाताप नही। न भी मिले तो ग्रनुताप नही। इस प्रकार हमारा सारा जीवन तपश्चर्यामय व्यतीत होता है। हम ग्रपने गुरु भगवान् महावीर के साथ इस नगरी के श्रीवन नामक उद्यान मे ठहरे हुए है।"

गौतम गणधर के मुख से उक्त भावपूर्ण, विद्वत्तापूर्ण एव गभीर चिन्तन की वाते सुनकर ग्रतिमुक्तक कुमार के ग्रानन्द का ठिकाना न रहा। उसका कुतूहल गौतम स्वामी की वातो से ग्रधिकाधिक वढता ही जा रहा था। राजकुमार ने गौतम स्वामी से कहा

"ग्रापके गुरु भगवान् महावीर स्वामी के मै भी दर्शन करना चाहता हू। क्या ग्राप मुझे उनके चरणो मे ले चलेगे ?

"क्यो नही, तुम मेरे साथ चल सकते हो। भगवान् के दर्शन सवके लिये सुलभ है। वहा किसी भी प्रकार की रुकावट नही है।"

ग्रतिमुक्तक वडा प्रसन्न हुग्रा ग्रौर गौतम स्वामी के साथ चल दिया। राजकुमार को सन्तो के साथ जाते देख कर राजा-रानी भी वडे हर्षित हुए। राजा ने रानी से कहा

"ग्रच्छी बात है, सन्तो का सत्सग करने से कुछ ग्रच्छे सस्कारो की ही तो नीव पडेगी।"

रानी ने भी राजा की वात का ग्रनुमोदन किया। थोडे ही समय मे ग्रतिमुक्तक राजकुमार गौतम स्वामी के साथ श्रीवन नामक उद्यान मे पहुच गये। वहा जाकर उन्होने उसी प्रकार भगवान् महावीर को सविधि वन्दना की जैसे उसके माता-पिता ने राजमहल मे सन्त गौतम को की थी। तत्पश्चात् वे भगवान् के चरणो मे बैठ गये।

जैन सन्तो की ग्राचार-सहिता के ग्रनुसार जब सन्त गोचरी के रूप मे ग्राहार लेकर लौटते है तो सर्वप्रथम उन्हे वह सारा ग्राहार गुरु को दिखाना पडता है। इस प्रक्रिया का रहस्य यही हो सकता है कि गुरु यह देखले कि कोई वस्तु ऐसी तो ग्राहार मे नही ग्रा गई है जो उनकी पद्धति के विपरीत हो। गौतम स्वामी ने सारे ग्राहार के पात्र सर्वप्रथम गुरु को दिखाये, तत्पश्चात् ग्राहार करना ग्रारम्भ। किया

अतिमुक्तक कुमार इस पद्धति से भी वडा प्रभावित हुआ। वह सारी प्रक्रिया बडे ध्यान से देख रहा था।

इसके पश्चात् भगवान् महावीर ने उस बालक को स्वय धर्मोपदेश दिया। ससार मे महापुरुष वडे-छोटे का ध्यान नही करते, उनके पास तो वाल से वृद्ध तक सभी के लिये समता की भावना होती है। फूलो को वालक, नवयुवक और वृद्ध कोई भी हाथ मे ले ले, वे तो सभी के हाथ को सुगन्धित करते है। बालक को ज्ञान देना अधिक हितकारी होता है क्योकि उसकी बुद्धि ससार के विषयो से अनभिज्ञ होती है। इसलिये उसमे अच्छे से अच्छे सस्कारो की नीव डाली जा सकती है। भगवान् महावीर तो सर्वज्ञानी थे। उन्होने वालक के शुभ लक्षणो से ही जान लिया था कि बालक श्रमण-शासन की सेवा करने वाला है। जो जीव ससार रूपी सागर को अपने शुभ-कर्मो द्वारा तैर कर पार करना चाहते थे, उनके लिये तो भगवान् साक्षात् सेतु थे। किसी विद्वान् ने ऐसे महामानवो की ठीक ही प्रशसा करते हुए लिखा है

जयन्ति जितमत्सरा. परहितार्थमभ्युद्यता:,
पराभ्युदयसुस्थिताः परविपत्तिखेदाकुलाः।
महापुरुषसत्कथाश्रवणजातकौतूहला',
समस्तदुरितार्णवप्रकटसैतवः साधवः॥

सु०र०भा०, पृष्ठ, ५२, श्लोक २२५

अर्थात्—ऐसे सन्त जिन्होने ईर्ष्या की भावना पर विजय प्राप्त करली है, जो दूसरे प्राणियो का उपकार करने के लिए सदा उद्यत रहते है, दूसरो की उन्नति मे जिन्हे प्रसन्नता होती है, किसी को कष्ट और विपत्ति मे देखकर जो व्याकुल हो जाते है, महापुरुषो की मधुर एव शिक्षा-प्रद कहानियो को सुनकर जो आश्चर्यचकित रह जाते हैं और ससार के पापरूपी समुद्र को तैरने के लिये जो पुल का काम देते हैं, ऐसे महामानवो की सदा जय हो।

भगवान् महावीर ने अब तक अपने प्रवचनो द्वारा असख्य प्राणियों को सेतु बन कर ससार के पापो से और दु खो से बचाया था। जिस जीव के पुण्यो का उदय होता था वह ही उनकी सेवा मे उपस्थित होता था। राजकुमार अतिमुक्तक वडा पुण्यवान् था जो आकस्मिक अवसर पाकर उनके चरणो मे उपस्थित हो गया था। या यो कहो कि उसके

परिग्रह के रूप मे कुछ भी नही रखते। जैसा हमारी आचार सहिता के अनुसार शुद्ध अन्न, जल, वस्त्रादि हमे श्रावको के घरो से उपलब्ध हो जाता है, उसी से हम अपना निर्वाह कर लेते है। अधिक की अभिलाषा नही करते और कम पर पश्चाताप नही। न भी मिले तो अनुताप नही। इस प्रकार हमारा सारा जीवन तपश्चर्यामय व्यतीत होता है। हम अपने गुरु भगवान् महावीर के साथ इस नगरी के श्रीवन नामक उद्यान मे ठहरे हुए है।"

गौतम गणधर के मुख से उक्त भावपूर्ण, विद्वत्तापूर्ण एव गभीर चिन्तन की बाते सुनकर अतिमुक्तक कुमार के आनन्द का ठिकाना न रहा। उसका कुतूहल गौतम स्वामी की बातो से अधिकाधिक बढता ही जा रहा था। राजकुमार ने गौतम स्वामी से कहा

"आपके गुरु भगवान् महावीर स्वामी के मै भी दर्शन करना चाहता हू। क्या आप मुझे उनके चरणो मे ले चलेगे ?

"क्यो नही, तुम मेरे साथ चल सकते हो। भगवान् के दर्शन सबके लिये सुलभ है। वहा किसी भी प्रकार की रुकावट नही है।"

अतिमुक्तक बडा प्रसन्न हुआ और गौतम स्वामी के साथ चल दिया। राजकुमार को सन्तो के साथ जाते देख कर राजा-रानी भी बडे हर्षित हुए। राजा ने रानी से कहा

"अच्छी बात है, सन्तो का सत्सग करने से कुछ अच्छे सस्कारो की ही तो नीव पडेगी।"

रानी ने भी राजा की बात का अनुमोदन किया। थोडे ही समय मे अतिमुक्तक राजकुमार गौतम स्वामी के साथ श्रीवन नामक उद्यान मे पहुच गये। वहा जाकर उन्होने उसी प्रकार भगवान् महावीर को सविधि वन्दना की जैसे उसके माता-पिता ने राजमहल मे सन्त गौतम को की थी। तत्पश्चात् वे भगवान् के चरणो मे बैठ गये।

जैन सन्तो की आचार-सहिता के अनुसार जब सन्त गोचरी के रूप मे आहार लेकर लौटते है तो सर्वप्रथम उन्हे वह सारा आहार गुरु को दिखाना पडता है। इस प्रक्रिया का रहस्य यही हो सकता है कि गुरु यह देखले कि कोई वस्तु ऐसी तो आहार मे नही आ गई है जो उनकी पद्धति के विपरीत हो। गौतम स्वामी ने सारे आहार के पात्र सर्वप्रथम गुरु को दिखाये, तत्पश्चात् आहार करना आरम्भ। किया

अतिमुक्तक कुमार इस पद्धति से भी वडा प्रभावित हुआ। वह सारी प्रक्रिया बडे ध्यान से देख रहा था।

इसके पश्चात् भगवान् महावीर ने उस बालक को स्वय धर्मोपदेश दिया। ससार मे महापुरुष बडे-छोटे का ध्यान नही करते, उनके पास तो बाल से वृद्ध तक सभी के लिये समता की भावना होती है। फूलो को बालक, नवयुवक और वृद्ध कोई भी हाथ मे ले ले, वे तो सभी के हाथ को सुगन्धित करते है। बालक को ज्ञान देना अधिक हितकारी होता है क्योकि उसकी बुद्धि ससार के विषयो से अनभिज्ञ होती है। इसलिये उसमे अच्छे से अच्छे सस्कारो की नीव डाली जा सकती है। भगवान् महावीर तो सर्वज्ञानी थे। उन्होने बालक के शुभ लक्षणो से ही जान लिया था कि बालक श्रमण-शासन की सेवा करने वाला है। जो जीव संसार रूपी सागर को अपने शुभ-कर्मो द्वारा तैर कर पार करना चाहते थे, उनके लिये तो भगवान् साक्षात् सेतु थे। किसी विद्वान् ने ऐसे महामानवो की ठीक ही प्रशसा करते हुए लिखा है

> जयन्ति जितमत्सराः परहितार्थमभ्युद्यताः,
> पराभ्युदयसुस्थिताः परविपत्तिखेदाकुलाः।
> महापुरुषसत्कथाश्रवणजातकौतूहला·,
> समस्तदुरितार्णवप्रकटसैतवः साधवः ॥
>
> सु०र०भा०, पृष्ठ, ५२, श्लोक २२५

अर्थात्—ऐसे सन्त जिन्होने ईर्ष्या की भावना पर विजय प्राप्त करली है, जो दूसरे प्राणियो का उपकार करने के लिए सदा उद्यत रहते है, दूसरो की उन्नति मे जिन्हे प्रसन्नता होती है, किसी को कष्ट और विपत्ति मे देखकर जो व्याकुल हो जाते है, महापुरुषो की मधुर एव शिक्षा-प्रद कहानियो को सुनकर जो आश्चर्यचकित रह जाते हैं और ससार के पापरूपी समुद्र को तैरने के लिये जो पुल का काम देते हैं, ऐसे महामानवो की सदा जय हो।

भगवान् महावीर ने अब तक अपने प्रवचनो द्वारा असख्य प्राणियों को सेतु वन कर ससार के पापो से और दु खो से बचाया था। जिस जीव के पुण्यो का उदय होता था वह ही उनकी सेवा मे उपस्थित होता था। राजकुमार अतिमुक्तक वडा पुण्यवान् था जो आकस्मिक अवसर पाकर उनके चरणो मे उपस्थित हो गया था। या यो कहो कि उसके

पुण्य उसे भगवान् के चरणो मे खीच कर लाये थे। भगवान् के उपदेश को सुनकर अतिमुक्तक बडा प्रभावित हुआ। अब तक उस पर सबसे बडा प्रभाव उसके माता-पिता का था किन्तु भगवान् के व्यक्तित्व का प्रभाव उससे भी कही आगे बढ गया। उसने भगवान् से कहा

"हे देवानुप्रिय! मै माता-पिता से आज्ञा लेकर आपकी सेवा मे दीक्षित हो जाऊगा।"

वह भगवान् के द्वारा दी गई वैराग्य की शिक्षा के रग मे रग गया। या यो कहना चाहिये कि उसके पूर्व जन्म के शुभ-सस्कार झकृत हो गये। 'इतने अल्प समय मे किसी के व्यक्तित्व के रग मे रग जाना और राज्य के प्रलोभनो की उपेक्षा कर देना', यह सब अनेक पूर्वजन्मार्जित सस्कारो का ही परिणाम हो सकता है। भगवान् ने अतिमुक्तक कुमार की वैराग्य की भावना जानकर कहा

"शुभ काम मे शिथिलता नही करनी चाहिये। तुम अपने माता-पिता के पास जाओ और उनसे आज्ञा लेकर आओ। बिना माता-पिता की आज्ञा के हमारे पास तुम्हारा दीक्षित होना सम्भव नही है। नवागन्तुक वैरागियो के लिये हमारी आचार-पद्धति का यही विधान है।"

भगवान् की बात सुनकर अतिमुक्तक कुमार अपने माता-पिता की सेवा मे उपस्थित हुआ और उनसे भगवान् के चरणो मे अपनी दीक्षित होने की भावना को व्यक्त किया। कोई अन्य माता-पिता होते तो अपने इकलौते बालक के मुख से वैराग्य की बात सुनकर शोकाकुल हो जाते, व्याकुल हो जाते, चिन्तातुर हो जाते और मूर्छित भी हो जाते किन्तु राजा विजयसेन और उनकी रानी पर युवराज के कथन का कोई विपरीत प्रभाव नही पडा। वे बालक से बोले

"अरे! अभी से वैराग्य की बात, धर्म की बात, ज्ञान की बात और ससार त्याग की बात। अभी तो तुम बालक हो, अबोध हो, धर्म से अनभिज्ञ हो, अपेक्षित ज्ञान से हीन हो और वैराग्य की कठिनाइयो से अपरिचित हो। अच्छा बताओ तो भला कि धर्म नाम का तत्व किसे कहते है?"

"नि सन्देह मै बालक हू, अबोध हू, धर्म के गभीर ज्ञान से अनभिज्ञ हू, सम्यग् ज्ञान की गहराई से भी अपरिचित हू और वैराग्य की कठिनाइयो को भी नही जानता हू किन्तु मैं जिस धर्म को जानता हू वह यह है, "मैं जिसको जानता हू, उसको नही जानता, और जिसको नही

जानता हू, उसको जानता हू ।"

अतिमुक्तक ने अपने पिता विजयसेन से कहा ।

"अरे तुम तो विरोधी वचन बोलते हो । सभवत जैसे और बालक बे-सिर-पैर की बात कर दिया करते है, ऐसे ही तुमने अज्ञानता-वश ऐसा कह दिया है ।"

राजा ने अतिमुक्तक से पूछा ।

"नही, मैने असत्य नही कहा, जो कुछ कहा है, वह अक्षरश सत्य है । मै भली-भाति जानता हू कि जो जन्म लेता है उसकी मृत्यु निश्चित है किन्तु उसकी मृत्यु किस प्रकार एव कब होती है, यह नही जानता । मै यह नही जानता हू कि किन अर्जित कर्मो के कारण जीव जाकर चार गतियो मे जन्म लेता है, परन्तु यह अवश्य जानता हू कि निज कर्मो के परिणामस्वरूप ही जीव को चार गतियो मे जन्म लेना पडता है ।" बिना माता-पिता की आज्ञा से प्रव्रजित होने की आज्ञा नही मिल सकती, ऐसा धर्म सहिता का विधान है, अत आप मुझे आज्ञा देने की कृपा करे जिससे मै भगवान् महावीर के चरणो मे दीक्षित हो सकू ।"

अतिमुक्तक ने बडी उत्कठा से अपने पिता मे दीक्षित होने की आज्ञा को स्वीकृति देने की प्रार्थना की ।

राजा ने और रानी ने वैराग्य के कण्टकपूर्ण मार्ग की अनेक कठिनाइयो के, साधु-मार्ग के परीषहो के, साधु-मार्ग की कठोरतम आचार-पद्धति के पालन के क्लेशो के, लोच की रोमहर्षक वेदना के, जीवन भर काटो पर, ककरो पर, अतिसतप्त बालुका के कणो पर और टेढी मेढी पगडडियो पर चलने के, सरदी की शीत लहर मे, गर्मी के लू के झोको मे विहार के, कई बार आहार की प्राप्ति न होने से क्षुधा-पीडित अवस्था के, अनेक बार निवासगृह की सुविधा के अभाव मे तीखी सरदी के समय और भयानक ग्रीष्म मे वृक्ष के नीचे निवास के दु ख के, आजीवन सयम पालन के, रात्रि-भोजन, स्नान, शृ गार और पखे की वायु के त्याग के, दन्त धावन, शरीर प्रसाधन और पैरो मे जूती के परित्याग के, मच्छर, साप तथा अनेक प्रकार के जहरीले जानवरो के काटने पर अव्यग्र मन रहने के, पचेन्द्रियो के प्रलोभनकारी भिन्न-भिन्न विषयो के परित्याग के आदि अनेक प्रकार

प्रकार के सकटो का राजकुमार अतिमुक्तक के सामने विवरण प्रस्तुत किया जिससे वह वैराग्य-पथ से विमुख होकर घर मे ही रहे और भविष्य मे राज्य शासन चलाए, परन्तु भगवान् महावीर द्वारा जागृत किये गये अतिमुक्तक राजकुमार के पूर्व जन्मार्जित सस्कार भला माता-पिता द्वारा वर्णित वैराग्य पथ की विपमताओ के विवरण से फीके पडने वाले कहा थे। राजकुमार की धारणा पर्वत के समान दृढ थी। उस पर वैराग्य के मार्ग की कठिनाइयो के विवरण का कोई असर नही पडा।

राजा और रानी को यह विश्वास हो गया कि युवराज अपनी भावना से तनिक भी टस से मस होने वाला नही है और उसे आज्ञा देनी ही पडेगी। राजा ने कहा

"अतिमुक्तक ! जब तुम्हारा जन्म हुआ था उस समय हमारे मन मे यह भावना आई थी कि हम तुम्हे राज्य-सिहासन पर अभि-पिक्त कर राज्य-शासन-कर्ता के रूप मे देखे। अब यदि हम तुम्हे प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दे देते है, तो हमारी वह अभिलाषा अपूर्ण रह जायेगी। क्या तुम हमारी अभिलापा को पूर्ण करने के लिये एक दिन भी राज्य सिहासन को अलकृत करके हमे राज्य करके नही दिखा सकते।"

"राजकुमार पिता के वचन सुनकर मौन हो गया।"

'मौनं स्वीकृति लक्षणम्।'

मौन तो स्वीकृति का लक्षण होता है। राजा को निश्चय हो गया कि राजकुमार को उसकी अभिलाषा-पूर्ति स्वीकार है।

राजा विजयसेन ने बडी धूम-धाम से राजकुमार अतिमुक्तक को राज्य-सिहासन पर अभिषिक्त किया। इस समारोह मे भाग लेने के लिये आस-पास के राजा, सामन्त और मन्त्री सम्मिलित हुए। सभी आश्चर्यचकित थे कि राजा विजयसेन अपनी युवावस्था मे ही सिंहासन का परित्याग करके अपने अल्पायु राजकुमार को अभिषिक्त क्यो कर रहे है। यह रहस्य केवल मात्र राजा-रानी और राजकुमार को ही ज्ञात था। परन्तु यह रहस्य के रूप मे नही रह सका। राज्य-सिहासन पर बैठते ही राजकुमार ने देखा कि उसको सभी लोग आशातीत

सम्मान दे रहे है। राजनीति की पद्धति के अनुसार सिहासन पर अभिषिक्त राजा को अभिपेक के पश्चात् यह पूछा जाता है

"आप आज्ञा दीजिये किसी कार्य विशेष की, जिसका सपादन अभी किया जाये।"

इसके उत्तर मे अभिषिक्त राजा ने कहा

"मेरी पहली यही आशा है और अभिलाषा है कि मै भगवान् महावीर के चरणो मे दीक्षित होने जा रहा हू, खजाने से धन निकाल कर दीक्षा की तैयारी आरम्भ कर दी जाये। इसमे किसी भी प्रकार की शिथिलता नही होनी चाहिये। दो लाख सुवर्ण मुद्राए पात्रो के लिये और एक लाख सुवर्ण मुद्राए नाई के लिये खजाने से निकाल ली जाए।"

राजकुमार अतिमुक्तक की आज्ञा का पालन किया गया। बडी धूम-धाम और साज-सज्जा के साथ दीक्षा से पूर्व राजकुमार की शोभायात्रा राज-पथ और नगर की गलियो मे से निकली और तत्पश्चात् शोभा यात्रा की समाप्ति 'श्रीवन' नामक उद्यान मे हुई जहा भगवान् महावीर अपने पट्टधर गणधर गौतम तथा अन्य सैकडो शिष्यो के साथ विराजमान थे। इसी उद्यान मे भगवान् महावीर के पास अतिमुक्तक राजकुमार दीक्षित हुए। दीक्षा के पश्चात् उनके आध्यात्मिक ज्ञान का पठन, पाठन एव श्रवण आरम्भ हो गया। अतिमुक्तक राजकुमार का यह अन्तिम भव था। वे इसी भव मे मोक्ष प्राप्त कर गये थे।"

वैराग्य बीज का अंकुरण

कुसुम्बा की बगल मे बैठा चोला राजकुमार अतिमुक्तक की कथा स्वामी नथमलजी महाराज के मुखारविन्द से बडा ही दत्तचित्त होकर ध्यान लगाकर सुन रहा था। वह उस कथा के सार से और स्वामीजी के कथा-कथन के प्रभावशाली प्रसार से और रोचक शैली से बडा प्रभावित हुआ और सोचने लगा

"अतिमुक्तक तो राजकुमार था, उसको तो जीवन की सभी विलास की वस्तुए सरलता से सुलभ थी, राज्य-सिंहासन का भी कितना आकर्षण था, राजपाट की शान कितनी प्रलोभनपूर्ण थी, शासन और अधिकार का लोभ कितना मोहक था, सर्वतोमुखी सम्मान का

मुख कितना रोचक था, राजदड का अखड अधिकार भी कितना गर्व-गरिमान्वित था, अनुजीवियो द्वारा की जाने वाली चापलूसी भी कम आकर्पण-युक्त नही थी और खजाने, लक्ष्मी तथा मेना की शक्ति भी कम महत्व की नही थी, किन्तु अतिमुक्तक राजकुमार को किसी प्रकार का भी सासारिक प्रलोभन आत्म कल्याण के मगलकारी मार्ग से विचलित नही कर सका। इतना प्यार करने वाले माता-पिता के मोह को भी उसने तुरन्त त्याग दिया। मेरी स्थिति तो अतिमुक्तक के सामने सर्वथा तुच्छ है। पहले पिता चले गये, मेरा सारा उत्तरदायित्व माता पर छोड कर और फिर माता भी पिता के वियोग मे चिरकाल तक जीवित न रह सकी और मेरे भावी जीवन का सारा भार कुसुम्वा मा पर छोड गई। ठीक है, घर की आर्थिक स्थिति सदा सन्तोपजनक ही रही है किन्तु अतिमुक्तक राजकुमार की तुलना मे तो वह नगण्य है। माता-पिता की मृत्यु को अपनी आखो से देखने वाले मेरे जैसे प्राणी के मन मे ससार की नश्वरता का यदि भाव आये तो वह स्वाभाविक भी है किन्तु अतिमुक्तक कुमार के सामने तो कोई भी ऐसी परिस्थिति नही थी, उसके मन मे भी भगवान् महावीर के उपदेश को सुनकर वैराग्य की भावना का जन्म हो गया था। तो क्या मैं अपने पूर्वभवो से अच्छे सस्कार लेकर नही आया हू कि मै प्रव्रज्या लेकर अपना आत्मकल्याण कर सकू ? अतिमुक्तक को तो रोकने वाले उसके माता-पिता थे, मुझे तो रोकने वाला भी कोई नही है। अतिमुक्तक को दीक्षा से रोकने का कितना प्रयास किया गया किन्तु वह दृढनिश्चय था, उस पर रोकने की युक्तियो का कुछ भी प्रभाव नही पडा। मुझे भी दीक्षित होने का और दीक्षित भी इन्ही सन्तो की सेवा मे होने का दृढनिश्चय कर लेना चाहिये। मेरा भाई और भाभी मुझे नही रोकेंगे और कुसुम्वा-मा तो मेरे इस कार्य मे सहायक बनेगी क्योकि वह तो मुझे सदा ऐसी ही कहानिया सुनाती रही है जो वैराग्य की भावनाओ से ओत-प्रोत होती थी। वे तो यह भी कह रही थी कि वे आत्माए बडी ही पुण्यवान् होती है जो सासारिक झगडो का त्याग करके दीक्षित होकर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होती है। मै भी इस पथ का पथिक बनूगा और आत्म कल्याण करूगा।"

दीक्षा का दृढ़-निश्चय

व्याख्यान समाप्त होते ही सब श्रावक स्वामीजी नथमलजी महाराज की विद्वत्ता की, त्याग की, ज्ञान की गहनता की, अतिमुक्तक कुमार के ससार-त्याग की और उसी जन्म मे उसकी मोक्ष प्राप्ति की चर्चा करते हुए अपने-अपने घरो मे वापिस लौट गये और चोला कुसुम्बा के साथ उसके घर पहुच गया। घर आकर कुसुम्वा ने कहा

"क्यो बेटे चोले! कैसा था महाराज साहव का व्याख्यान? पसन्द आया क्या तुम्हे? बडे पहुचे हुए सन्त है, कितने मन्त्र-मुग्ध से होकर सुन रहे थे श्रावक उनके प्रवचन को। अतिमुक्तक राजकुमार की वैराग्य भावना का भी क्या सुन्दर दृष्टान्त दिया था उन्होने। जीव चाहे राजा के, चाहे रक के, किसी के घर मे भी जन्म ले ले किन्तु पूर्वभव के सस्कार उसे जिस ओर प्रेरित करते है वह निश्चित रूप से उसी ओर बढता है। जीव इसके लिये विवश होता है। कुछ वर्ष पूर्व, एक यहा और सन्त आये थे, उस समय मैं पारी को भी उनका भाषण सुनाने के लिये ले गई थी। वे कहते थे कि, 'सस्कारो की शक्ति महान् होती है, वह शक्ति जीव को ऐसे ही उडाकर अनुकूल दिशा की ओर ले जाती है जैसे प्रचण्ड वायु तिनके को उडाकर ले जाती है।' साधु-मार्ग की अपने पिता के द्वारा वर्णित कष्ट परम्परा को सुनकर भी अतिमुक्तक कुमार का मन वैराग्य-पथ से विपरीत नही गया। जाता भी कैसे, यह तो उसके पूर्वभव के सस्कारो का परिणाम था। वह तो उसके कर्म क्षय का अन्तिम भव था। उसी भव मे वह मोक्षगामी भी हुआ। तुम्हे कैसी लगी, बेटे! अतिमुक्तक कुमार की कथा?"

"वहुत ही अच्छी लगी। मैं मुनिराज के व्याख्यान से बहुत ही प्रभावित हुआ हू। मैं अतिमुक्तक राजकुमार की समानता तो नही करता क्योकि राजसिंहासन का स्वामी होते हुए भी उसने महान् त्याग किया था, आत्म कल्याण के मार्ग पर कदम रखने के लिये, परन्तु जहा तक वैराग्य की भावना का सम्बन्ध है, मेरी वैराग्य लेने की भावना भी उतनी ही दृढ है जितनी अतिमुक्तक कुमार की थी। अतिमुक्तक का वह अन्तिम भव था वह मोक्ष मे चला गया, मेरा

यह कौन-सा भव है, इसका ज्ञान तो मुझे नही है। मैं निश्चित रूप से स्वामीजी नथमलजी महाराज के चरणो मे दीक्षा लूगा। आप मेरी बडी अच्छी मा है, मेरी इस शुभ आत्म-कल्याण के काम मे पूरी सहायता करेगी, इसकी मुझे पूर्ण आशा है। वैराग्य के बीज तो आपने पहले ही मेरे मन मे वो रखे है, अब उन्हे अकुरित, पल्लवित पुष्पित और फलित होते देखकर क्या आपके मन मे उल्लास नही होगा ?"

चोले ने बडे विनम्र परन्तु दृढ शब्दो मे कुसुम्बा के प्रश्नो का उत्तर दिया।

कुसुम्बा ने चोले के चित्त की गहराई तक पहुचने के लिये कहा "परन्तु बेटे ! तुम तो अभी किशोर हो, साधु-मार्ग की कठिनाइयो से सर्वथा अपरिचित हो, धर्म के तत्व से अनभिज्ञ हो और कष्ट-सहिष्णुता की शक्ति से रहित हो। तुम कैसे इस दुर्गम-पथ पर चल सकोगे ? मुझे तो इसमे सन्देह है।"

"अतिमुक्तक तो आयु मे मुझसे भी छोटा था, तभी तो वह गणधर गौतम की अगुली पकड कर उनको महल मे ले गया था, वह भी साधु मार्ग की कठिनाइयो से सर्वथा अपरिचित था, कष्ट-सहिष्णुता की शक्ति उसमे सर्वथा अविद्यमान थी क्योकि वह तो राजकुमार था, फिर उसने सब कुछ कैसे त्याग दिया था ? मुझे आत्म-कल्याण के निमित्त कष्टो की कोई चिन्ता नही है, मैं अवश्य दीक्षा लूगा।

चोले ने दृढतापूर्ण वाणी मे उत्तर दिया।

कुसुम्बा को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि चोला अब दीक्षित होने के लिये पूर्णरूप से प्रस्तुत है। मै जो उसमे आज तक बहुत दिनो से वैराग्य के बीज बोती आ रही हू वे अकुरित हो गये है। पारी ने मृत्यु के समय जो मुझसे कहा था वह उसकी अभिलाषा मैंने पूर्ण कर दी है। सन्तो को चोले के बहराने की जो बात है वह भी पूरी कर दूगी। ऐसा करके मै पारी का और चोले का ही उपकार नही करूगी किन्तु स्वय के लिये भी शुभ-कर्म बान्धने का यह प्रयत्न है। कल प्रवचन के पश्चात् मै स्वामीजी नथमलजी महाराज के पास चोले को बहराने की बात करूगी और यह भी कहूगी कि यह बालक आपके कल के प्रवचन से, जिसमे आपने अतिमुक्तक राजकुमार के प्रव्रजित होने का प्रसग

सुनाया, इतना प्रभावित हो गया है कि आपके चरणो मे ही दीक्षित होना चाहता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि स्वामी जी इस बात को सुनकर बडे प्रसन्न होगे। इस बालक को स्वीकार कर लेगे और दीक्षा की आज्ञा दे देगे। चोले के जीवन का उद्धार हो जायेगा और इससे इसके कुल का नाम भी रोशन होगा।

बिना आज्ञा अस्वीकृति

इस प्रकार की धारणा कुसुम्बा के मन मे आई। अगले दिन चोला को साथ लेकर कुसुम्बा स्वामीजी नथमलजी महाराज की सेवा मे पहुची और उनके सामने बालक के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली उसकी सारी कहानी सुनाई। चोले के पिता की प्रतिज्ञा, उसकी माता की अन्तिम अभिलाषा, और वैराग्य के सस्कार डालने के लिये उसे उसके हाथो मे सौपना और चोले की माता को उसके (कुसुम्वा) के वचन कि स्वामीजी नथमल जी महाराज जब यहा आयेगे तो उन्हे चोले को बहरा देगी—आदि-आदि सभी बातो का विवरण उसने स्वामीजी को सुनाया।

स्वामीजी नथमल जी महाराज तो बडे क्रियावान् और विवेकशील सन्त थे। वे इसप्रकार दीक्षा के लिये लाये गये किसी भी बालक को कैसे स्वीकार कर सकते थे। उन्होने कहा

"हमारी आचार-प्रणाली के अनुसार जब तक लडके के माता-पिता या सगे-सम्बन्धी उसे दीक्षित करने की आज्ञा नही दे देते तब तक हम उसे स्वीकार नही किया करते। इसलिये तुम बालक को वापिस ले जाओ और इसके माता-पिता यदि नही है तो इसके भाई को आज्ञा के लिये साथ लाओ, तभी हम इसे वैरागी के रूप मे स्वीकार कर सकते है।"

कुसुम्वा चोले को साथ लेकर चल दी और मार्ग मे चलते-चलते सोचने लगी

"धन्य है ऐसे सन्त जिनको चेले की तृष्णा नही किन्तु अपनी आचार-प्रणाली की अधिक चिन्ता है। ऐसे महान् आत्मा ही वास्तव मे अपना और दूसरो का कल्याण कर सकते है। मैंने तो ऐसे भी अनेक सन्त देखे है जो चेलो के लिये तरसते है और चेला बनाते समय यह भी नही सोचते कि जिसे वे वैरागी वना रहे हैं, वह वैराग्य का पात्र

भी है या नही। ये सन्त वास्तव मे सन्तात्मा है, तभी तो इनके आगमन की वात को सुनकर इनके दर्शनो के लिये इतनी जनता टूट पडती है।"

परिजन-आज्ञा-प्राप्ति

कुसुम्बा चोले को लेकर घर पहुची और हरदेवा से चोले के दीक्षित होने की आज्ञा मागी और यह बात भी वता दी कि विना सगे-सम्वन्धियो की आज्ञा के स्वामीजी नथमल जी महाराज किसी को भी अपने पास दीक्षित नही करते। यह तो उनकी आचार-प्रणाली है, वे इसके विपरीत कभी नही जा सकते।

हरदेवा को चोला के विषय मे मा की प्रतिज्ञा की सूचना का पता माता की मृत्यु के कुछ दिन पश्चात् ही चल गया था, इसलिये उसे तो स्वीकृति देने मे सकोच नही था किन्तु उसने कहा

"मुझे और भी अपने सगे-सम्वन्धियो तथा समीप के रिश्तेदारों से पूछ लेने दो, जिससे वाद मे किसी का उलाहना न आ सके, कोई यह न कहने लगे कि सारी सम्पत्ति को अकेले हडपने के लिये हरदेवा ने चोले को, जो अभी वेसमझ वालक ही था, वैरागी वना दिया।"

कुसुम्वा उसकी वात सुनकर अपने घर चली गई और चोला भी उसके पीछे-पीछे चल दिया। चोला की ममता कुसुम्वा के साथ इतनी वढ गई थी कि वह अपने घर की अपेक्षा उसके पास रहना अधिक पसन्द करता था।

इस अन्तराल मे स्वामीजी नथमल जी महाराज ने पीपलिया से विहार कर दिया और वे बासिया होते हुए चडावल पधार गये।

इधर जब कुसुम्बा हरदेवा के घर अगले दिन पहुची तो वह तव तक अपने सब सगे-सम्बन्धियो से चोला की स्वामीजी नथमल जी महाराज साहब के पास दीक्षा के विषय मे विचार विमर्श कर चुका था और सब की स्वीकृति पा चुका था। कतिपय लोगो ने इसका विरोध भी किया था किन्तु समझदार और विवेकवान पुरुषो ने उन्हे समझाकर शान्त कर दिया था कि शुभकामो मे विघ्न डालना कभी भी हितकर नही होता।

चोला से चान्द

कुसुम्बा चोला को, हरदेवा को और अन्य गण्यमान्य सम्वन्धियो

को साथ लेकर स्वामीजी की सेवा मे चडावल गाव मे पहुची । कुमुम्वा की प्रार्थना को और चोले की अभिलापा-पूर्ति को स्वामीजी की स्वीकृति मिल गई । चडावल गॉव की सारी पचायत की साक्षी मे चोला को स्वामीजी नथमल जी महाराज ने वैरागी के रूप मे स्वीकार कर लिया । स्वामीजी ने बडी ही सूक्ष्मता से चोले के शुभलक्षणो का निरीक्षण किया । उसकी चान्द जैसी आकृति देखकर, उसकी वाणी मे चान्द की शीतलता और शान्ति पाकर, उसके व्यक्तित्व मे चान्द की कौमुदी की झलक पाकर, उसके भावी जीवन मे चान्द की अमृतमयी किरणो की अमरता अनुमानित कर, कालुष्य-कलुषित कषायो के तमस्-विदारण के लिये चान्द जैसी किरणो के उद्भव का बाल वैरागी जीव मे अनुमान कर, मोक्ष रूपी चकवी और जीव रूपी चकवे की विरह-व्याकुलता की अभिवृद्धि के लिये नवदीक्षित वैरागी मे चान्द की चान्दनी को कल्पित करके, अपनी मन्द तपश्चर्या द्वारा मन्दगति से मोक्षमार्ग की ओर बढने वाले अन्य साधु रूप सितारो मे पूर्णिमा के चान्द के समान चमकने की सामर्थ्य की नवदीक्षित जीव मे सम्भावना करके, सूर्य से प्रकाश उधार लेकर चमकने वाले चान्द का अतिक्रमण करके अपने ही प्रकाश से प्रकाशित होने वाले नवोदित चन्द्र की इस जीव मे झलक पाकर, नव-नवघोर-कर्म-बन्ध-विपाकके कारण अज्ञानान्धकार मे मार्ग टटोलने वाले असख्य-जीव-निशाचरो के लिये निशाकर बनकर आने की भावना को भावित करके और शुभकर्मो के परिणाम के समान उत्तरोत्तर अधिकाधिक विकासशील शुक्लपक्ष के चान्द की कलाओ की कमनीयता को चोले के जीव मे सम्भावित करके, उसका चरितार्थ होने वाला नाम चान्दमल रखा । 'मल्ल' योद्धा और वीर को कहते है । योद्धा अपने सासारिक शत्रुओ से युद्ध करके उन्हे पराजित करता है और यह चान्द रूपी योद्धा अपने कर्मरूपी, कषायरूपी और पापरूपी शत्रुओ को जीवन के युद्ध-क्षेत्र मे तपश्चर्या द्वारा, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र द्वारा पराजित करता हुआ मोक्षरूपी राजधानी मे जय और विजय की मालाओ से अलकृत होगा ।

अध्यात्म-जगत् के चार चांद

अब स्वामीजी श्री नथमलजी महाराजके पास वैरागियो की सख्या चौथमल जी, वख्तावरमल जी, गभीरमल जी और चान्दमल के रूप

मे चार हो गई थी। चारो वैरागी चार कपायो पर चार कुठारो के प्रहार थे। चौथमल से तो चारो कपाय चौथ के चान्द की तरह भयभीत होते थे, वख्तावरमल ने सयम का ऐसा वखतर-कवच पहन रखा था कि उसे विदीर्ण करना कपायो की शक्ति के वाहर की वात थी, गभीरमल की गभीरता तो सागर की गभीरता के समान इतनी गभीर थी कि कपाय उन्हे न पाकर अधीर और अवीर ही रह जाते थे, चान्दमल की ज्ञानमयी चान्दनी की शीतलता के आगे कपायो की ऊष्मा स्वत शान्त हो जाती थी। स्वामीजी नथमलजी महाराज अपने परिवार के इन चार अलकारो के साथ जहा-जहा विहार करते थे वहा श्रावक इनके दर्शन करके स्वत पुकार उठते थे, 'ये चार तो ससार मे अपने ही प्रकार के जन्म, व्याधि, जरा और मरण के उपचार सिद्ध होगे और आध्यात्मिक जगत् को चार चान्द लगाने वाले वनेगे।' कुछ श्रावको को तो ऐसा कहते भी सुना गया था कि 'वास्तविक रूप मे अपने नाम को चरितार्थ और कृतार्थ करने वाला तो स्वामीजी नथमल जी महाराज का परिवार है। हमारा परिवार तो परित —सासारिक विपयो के आरम्भ से चारो ओर से घिरा हुआ, एक ही स्थान या घर को वरण करता हुआ—ग्रहण करता हुआ, सीमित परिधि मे जकडा हुआ वैठा रहता है। असली परिवार तो इनका है जो चारो दिशाओ का वरण करके—आश्रय लेकर यत्र-तत्र विखरे हुए पापास्रवसपृक्त प्राणियो के लिये अपने विहार-सचार द्वारा ज्ञान-वरदान का प्रदान किया करता है। धन्य है, मोक्ष मार्ग पर चलने वाली ये पावन आत्माए।"

ठाकुर श्री हरिसिंह जी का सुझाव

वीतरागतापथाग्रगामी ये चारो वैरागी अपने गुरू-चरणो मे बैठकर बडे ही विनम्र भाव से आवश्यक, स्तोक, स्तवन, सिद्धान्त और आगम आदि का अभ्यास किया करते थे। अनुक्रम से यथावसर और यथास्थान प्रथम तीन वैरागियो की दीक्षा सम्पन्न हुई और अवशिष्ट रह गये दीक्षित होने के लिये वैरागी चान्दमल जी। विहार करते-करते अपनी शिष्य-मण्डली सहित स्वामीजी नथमलजी महाराज का रायपुर (जिला—पाली, राजस्थान) मे पदार्पण हुआ। यह घटना चैत्र मास मे आरम्भ होने वाले नव सम्वत् १९६५ की है, जिस समय रायपुर का

शासन ठाकुर हरिसिह जी सचालित करते थे। वे हरि-विष्णु के समान श्रद्धा के पात्र और सिह के समान पराक्रमी थे। या फिर शेर से भी द्विगुणित वलशाली होने के कारण उनका नाम हरिसिह था। शारीरिक विक्रम मे ही नही किन्तु धार्मिक विक्रम मे भी वे अनुपम थे। नगरी मे प्रविष्ट होने वाले साधु सन्तो की अगवानी करना, उनका सम्मान करना उनके प्रवचन सुनना, सुनकर उनका मनन चिन्तन करना और फिर उनको अपने जीवन मे उतारने का प्रयत्न करना उनका सहज स्वभाव था। सज्जन व्यक्ति वास्तव मे ऐसे ही होते है जैसे ठाकुर हरिसिह थे। किसी विद्वान् ने ठीक ही तो कहा है

धर्मे तत्परता, मुखे मधुरता, दाने समुत्साहिता,
मित्रेऽवचकता, गुरौ विनयिता, चित्तेऽतिगभीरता।
आचारे शुचिता, गुणे रसिकता, शास्त्रेऽतिविज्ञानिता,
रूपे सुन्दरता, हरौ भजनिता, सत्स्वेव सदृश्यते॥

वृद्धचाणक्यशतकम्, १२, १५

अर्थात्—धर्म मार्ग मे प्रवृत्ति का होना, वाणी मे माधुर्य, दान देने मे उत्साह-सम्पन्नता, मित्र के प्रति विश्वासघात का अभाव, अपने गुरू के प्रति नम्रता की भावना, चित्त मे गभीरता, आचार की पवित्रता, गुणग्रहण मे अतिरुचि, शास्त्रो की विशेपज्ञता, आकृति मे लावण्य और भगवान् के प्रति भक्ति भावना—ये सब गुण सज्जन व्यक्तियो मे ही देखने को मिलते है।

जो व्यक्ति धर्म का प्रसग आने पर भी धर्म का आराधन नही करते उनके विषय मे शास्त्रकार कहते है —

धर्म प्रसगादपि नाचरन्ति, पाप प्रयत्नेन समाचरन्ति।
आश्चर्यमेतद्धि मनुष्यलोकेऽमृत परित्यज्य विष पिवन्ति॥

सु०र०भा०, ३७५, २४०

अर्थात्—ससार मे ऐसे भी प्राणी है जो कि धर्माचरण का प्रसग सौभाग्य से प्राप्त करके भी धर्म का आचरण नही करते है और पाप कर्मो के सग्रह मे वडा प्रयत्न करते है। इस जगतीतल मे यह कितने आश्चर्य की वात है कि लोग धर्मरूपी अमृत का पान करना त्याग कर पापरूपी विप का सेवन करते है।

ठाकुर हरिसिह जी प्रथम कोटि के जीवो मे से ही एक थे। वे निरन्तर अपनी रायपुर नगरी मे स्वामीजी नथमल जी महाराज के प्रवचनो को सुनने आते थे और धर्म की आराधना करते थे। एक दिन प्रवचन के पश्चात् उन्होने स्वामीजी को अपना सुझाव देते हुए कहा ·

"यह जो आपका चान्दमल नाम का छोटा वैरागी हे, इसको हमारी इस नगरी मे दीक्षा देकर यदि आप हमारा और नगरी का सौभाग्य वढाए तो कितना अच्छा हो। क्या आप यह कृपा हम पर नही कर सकते ? इसके पूर्व अन्य भी कई सन्तो ने यहा दीक्षित होकर इसकी भूमि को पावन किया है। यह मात्र मेरी इच्छा नही हे, सारी नगरी की अभिलापा हे, मैं तो केवल नगरी का प्रतिनिधि हू। आप तो अपने पुनीत आशीर्वाद से सवकी इच्छाओ को पूर्ण करने वाले महात्मा हो, हमे पूर्ण विश्वास हे कि आप हमे निराश नही करेंगे।"

दीक्षा की तैयारिया

ठाकुर साहव के सुझाव को स्वामीजी नथमल जी महाराज ने स्वीकृति प्रदान कर दी और अव वैरागी चान्दमल जी महाराज की दीक्षा की तैयारिया वडी धूमधाम से रायपुर नगरी मे आरम्भ हो गई। सवत् १९६५ की चैत्र सुदी पूनम का दिन दीक्षा के लिये निर्धारित किया गया। श्रमण-सन्त की दीक्षा का विधि-विधान कोई सामान्य कोटि का नही होता। जैसा कि ससार-पक्ष मे विवाह का महोत्सव मनाया जाता है, उसी प्रकार तथा कुछ क्रियाओ मे उससे भी बढ-चढ कर दीक्षा के महोत्सव को सम्पन्न किया जाता है। अन्तर विशेप यह होता है कि ससार का विवाह-महोत्सव ससार के विकास के लिये मनाया जाता है और दीक्षा का महोत्सव आत्म-विकास के लिये, परमधाम की प्राप्ति के लिये और जीव को स्वस्थिति मे पहुचाने के लिये होता है। पहले मे जन्म, जरा, मरण की शृ खला को उत्तरोत्तर जोडना होता है, चालू रखना होता है किन्तु दूसरे मे उस शृ खला को काटना होता है और पूर्ण क्षय करना होता है। विवाह-महोत्सव के आरम्भ से ही कर्मो का आस्रव आरभ होकर अधिकाधिक वढता ही जाता है और दीक्षा-महोत्सव के आरभ से ही कर्मों का सवर और निर्जरा आरभ हो जाते हैं। विवाह का परिणाम अनेक योनियो मे

गर्भवास और जन्म-मरण का दु ख होता है और दीक्षा का परिणाम सब प्रकार के दु खो से आत्यन्तिकी निवृत्ति होता है। प्रथम मार्ग अशुद्ध एव अप्रबुद्ध जीवो के लिये है, दूसरा शुद्ध तथा प्रबुद्ध जीवो के लिये। अशुद्धो मे शुद्धि और अप्रबुद्धो मे प्रबुद्धता जागृत करना सन्तो का काम है। जो वास्तव मे सन्त है वे इस उद्धार के मार्ग पर चलते हुए असख्य प्राणियो का कल्याण करते रहते है और जो स्वय ही अप्रबुद्धता के अधकार से आक्रान्त है उनसे दूसरो मे प्रबुद्धता लाने की भला क्या आशा की जा सकती है? सन्त नथमलजी महाराज वास्तव मे मरु-धरा के एक प्रबुद्ध सन्त थे। "उनके सान्निध्य मे रहकर निश्चय ही अन्य सन्तो के समान ही वैरागी चान्दमलजी प्रबुद्ध होगे" ऐसा निश्चय से कहा जा सकता था।

रायपुर का अद्भुत दृश्य

रायपुर नगरी फूलो से, फलो से, केलो की पत्तियो से, आमो के पत्तो से, झडियो से और गुब्बारो से सजाई गई। मार्जको ने मार्जनियो द्वारा सारे नगर की सफाई की। भिश्तियो ने सडको पर, गलियो मे और छोटी वीथिकाओ मे जल का छिडकाव किया। चतुष्पथो के प्रागण के आस-पास बने भवनो के चबूतरो पर जरी की पोशाके पहनकर धानक जाति के लोग शहनाइयो की मधुर गुजार से दश दिशाओ को गुजरित करने लगे। किले के राजप्रासाद (ठाकुर हरिसिह जी का महल) के सिहद्वार के ऊपरी भाग से शहनाइयो के अत्यन्त मधुर स्वर का सगम पाकर मेघ के समान गर्जन करने वाले नगाडो के स्वरो से आकाश-मण्डल प्रतिध्वनित होने लगा। यह ठीक वैसे ही प्रतीत हो रहा था जैसे कि कोई जर्जरितस्वर, बडा वूढा गायक किसी सुन्दरी के स्वर मे स्वर मिलाकर गाने मे आनन्दातिरेक का अनुभव कर रहा हो। कभी-कभी तुर्री की तीखी पचम स्वर की ध्वनि शहनाई और नगाडो के स्वरो को चीरती हुई अपने व्यक्तित्व के अस्तित्व को अलग ही सूचित कर रही थी, ठीक वैसे ही जैसे अपने को अत्युन्नत वताने का दावा भरने वाली, आधुनिक आग्ल सस्कृति के सस्कारो से कवलित, आदर्श भारतीय नारी के वेश का परित्याग कर, विदेशी नर-युवको के परिधान से अपने नारीत्व को, मातृत्व को आर्यत्व को अवगुण्ठित करने वाली वाला अपने व्यक्तित्व का व्यगुल

अलग ही बजाती रहती है। वनो मे, उपवनो मे, उद्यानो मे और गृहवाटिकाओ मे आराम कर रहे मयूर-युगल नगाडो की, ढोलो की और धौसो की गभीर गर्जना को सुनकर उसे मेघ को गर्जन समझ सहसा उठकर नृत्य करने लगे थे। मयूरो के पख जवानी पर थे, कितना मनोहारी लग रहा था उनका शराकृति और चन्द्राकृति वाला झूमता हुआ पख-मण्डल। मयूरो के पास मयूरिया भी मस्ती मे आकर और उल्लास मे जी भर कर नाच रही ऐसी अशोभनीय प्रतीत हो रही थी जैसे परम शुद्ध और प्रबुद्ध जीवन के पथ पर विचरने के अभिलाषी जीव की सीमा मे मण्डराने वाली दुर्भावनाए, कामनाए और वासनाए। चर्मभस्त्रिका के बने बीनबाजो से, डफलियो से, ढोलो से और नत्रावि्क्रान शहनाई के प्रधान स्वर के अवलम्बन से बजने वाले बाजो से सारी रायपुर नगरी और दिगदिगन्त प्रतिध्वनित हो रहे थे। आबाल-वृद्ध सभी के मुख-मण्डलो पर आनन्द की लहरे उमड रही थी। नवयुवक और नवयुवतिया, छैलछबीले और छैल-छबीलिया, बाके कवर और बाकी कवरिया—सभी मे अगडाइया ले रही थी उल्लास की लहरिया, सावरे की रगरलिया और रसिया को रसभरिया। सभी तैयार हो रहे थे, शृगार कर रहे थे, मनुहार कर रहे थे, वचन चातुरी से पारस्परिक किये गये व्यग्यो के प्रहार का परिहार कर रहे थे। यह सारा आचार सचार विहार के लिये नही किन्तु नवदीक्षित होने वाले चान्दमलजी वैरागी को शोभा यात्रा के नगर सचार के लिये था। खरबूजे को देखकर कहते है दूसरा खरबूजा भी रग पकडता है, नवयुवक और नवयुवतियो की जवानी से छलकती, उमगो से उमडती और तरगो से उछलती मण्डलियो को देखकर बूढो को भी अपनी जवानी की स्मृतिया स्मरण हो आई थी, यद्यपि उनके अग शिथिल पड गये थे परन्तु उनके मन अब भी पूर्ववत् दृढ थे, सशक्त थे, सतृष्ण थे और अतृप्त थे। कितने सुन्दर लग रहे थे वे अपनी सफेद मूछो को मरोडते और मील के सख्त सफेद धागो की सी अपनी दाढी मे कघी से माग निकालते हुए। मन की माया और मन की मौज अनुभूतिगम्य है, तर्कगम्य नही। ज्ञान भले ही इन वृद्ध रसिको का सम्मान न करे, जवान भले ही उनकी हसी उडाए, नवयौवन के नशे मे दीवानी नायिकाए भले ही उन्हे अपमानित

कर दे किन्तु विज्ञान उन्हे सदा सम्मान देगा क्योकि वे जीवन की परिमार्जित अमूल्य, बहुमुखी और बहुल अनुभूतियो के आधान है, निधान है। नवयुवक उनकी अनुभूतियो से लाभ उठाकर तूफानो से भरे जवानी के सागर के तूफानो से अपने प्राणो की रक्षा कर सकते है।

जन-समुदाय रायपुर की ओर

दीक्षा महोत्सव के कारण आस-पास के गावो से, नगरो से और उपनगरो से स्त्री-पुरुषो के झुण्ड के झुण्ड गीत गाते हुए नगरी मे प्रवेश कर रहे थे। दूर-दूर से साधु और साध्विया भी लम्बे-लम्बे विहार करके नगर मे प्रविष्ट हो रहे थे। स्थान-स्थान पर नगर के स्वामी ठाकुर साहिब की ओर से नगर के सम्पन्न सेठो की ओर से भोजन भण्डार चल रहे थे। आने वालो को पक्तियो मे बिठाकर जिमाया जा रहा था। नगर के नवयुवक और नवयुवतिया, समर्थ सभी नर-नारी आगन्तुक अतिथियो की सेवा करने मे बडे उत्साह का प्रदर्शन कर रहे थे। इतना उत्साह था कि अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी किसी प्रकार की थकान की झलक उनके मुख पर नही थी।

कई बाहर से आने वाली श्राविकाए सम्मिलित स्वरो मे चौबीसिया गा रही थी, कई रायपुर नगर की नारिया साथ मिलकर अपने मधुर कोकिल-कण्ठो से ऐसे गीत गा रही थी जिनका भाव था कि "बैरागी चान्दमल के दीक्षा-महोत्सव के कारण जो दूर-दूर से धर्म की निष्ठा वाले धार्मिक लोग एकत्रित हुए है और हो रहे है उससे नगर की भूमि धन्य-धन्य हो उठी है।" स्त्रियो की दूसरी टोली के गाने का भाव था कि "वैरागी चान्दमल की दीक्षा से नगरी की भूमि पावन ही नही बनेगी किन्तु धर्म की आराधना के इतिहास में इस नगरी के नाम को चार चाद लगेगे। तीसरी नारी-मण्डली के गाने का भाव था कि "वैरागी चान्दमल के भाग्य और पुण्य की परख तो इसी से हो रही है कि उसके दीक्षामहोत्सव की खुशी से आल्हादित होकर सहस्रो नर-नारियो के झुण्ड रायपुर की ओर खिचे चले आ रहे है यद्यपि उन्हे किसी ने निमन्त्रण-पत्र भेजकर नही बुलाया है।" चौथी महिला मण्डली के गीत का आशय था कि

अलग ही बजाती रहती है। वनो मे, उपवनो मे, उद्यानो मे और गृहवाटिकाओ मे आराम कर रहे मयूर-युगल नगाडो की, ढोलो की और धौसो की गभीर गर्जना को सुनकर उसे मेघ की गर्जन समझ सहसा उठकर नृत्य करने लगे थे। मयूरो के पख जवानी पर थे, कितना मनोहारी लग रहा था उनका शराकृति और चन्द्राकृति वाला झूमता हुआ पख-मण्डल। मयूरो के पास मयूरिया भी मस्ती मे आकर और उल्लास मे जी भर कर नाच रही ऐसी अशोभनीय प्रतीत हो रही थी जैसे परम शुद्ध और प्रबुद्ध जीवन के पथ पर विचरने के अभिलापी जीव की सीमा मे मण्डराने वाली दुर्भावनाए, कामनाए और वासनाए। चर्मभस्त्रिका के बने बीनबाजो से, डफलियो से, ढोलो से और नवाविष्कृत शहनाई के प्रधान स्वर के अवलम्बन से बजने वाले बाजो से सारी रायपुर नगरी और दिग्दिगन्त प्रतिध्वनित हो रहे थे। आबाल-वृद्ध सभी के मुख-मण्डलो पर आनन्द की लहरे उमड रही थी। नवयुवक और नवयुवतिया, छैलछबीले और छैल-छबीलिया, बाके कवर और बाको कवरिया—सभी मे अगडाइया ले रही थी उल्लास की लहरिया, सावरे की रगरलिया और रसिया की रसभरिया। सभी तैयार हो रहे थे, शृ गार कर रहे थे, मनुहार कर रहे थे, वचन चातुरी से पारस्परिक किये गये व्यग्यो के प्रहार का परिहार कर रहे थे। यह सारा आचार सचार विहार के लिये नही किन्तु नवदीक्षित होने वाले चान्दमलजी वैरागी की शोभा यात्रा के नगर सचार के लिये था। खरबूजे को देखकर कहते है दूसरा खरबूजा भी रग पकडता है, नवयुवक और नवयुवतियो की जवानी से छलकती, उमगो से उमडती और तरगो से उछलती मण्डलियो को देखकर बूढो को भी अपनी जवानी को स्मृतिया स्मरण हो आई थी, यद्यपि उनके अग शिथिल पड गये थे परन्तु उनके मन अब भी पूर्ववत् दृढ थे, सशक्त थे, सतृष्ण थे और अतृप्त थे। कितने सुन्दर लग रहे थे वे अपनी सफेद मूछो को मरोडते और मील के सख्त सफेद धागो की सी अपनी दाढी मे कघी से माग निकालते हुए। मन की माया और मन की मौज अनुभूतिगम्य है, तर्कगम्य नही। ज्ञान भले ही इन वृद्ध रसिको का सम्मान न करे, जवान भले ही उनकी हसी उडाए, नवयौवन के नशे मे दीवानी नायिकाए भले ही उन्हे अपमानित

कर दे किन्तु विज्ञान उन्हे सदा सम्मान देगा क्योकि वे जीवन की परिमार्जित अमूल्य, बहुमुखी और वहुल अनुभूतियो के आधान है, निधान है। नवयुवक उनकी अनुभूतियो से लाभ उठाकर तूफानो से भरे जवानी के सागर के तूफानो से अपने प्राणो की रक्षा कर सकते है।

जन-समुदाय रायपुर की ओर

दीक्षा महोत्सव के कारण आस-पास के गावो से, नगरो से और उपनगरो से स्त्री-पुरुषो के झुण्ड के झुण्ड गीत गाते हुए नगरी मे प्रवेश कर रहे थे। दूर-दूर से साधु और साध्विया भी लम्बे-लम्बे विहार करके नगर मे प्रविष्ट हो रहे थे। स्थान-स्थान पर नगर के स्वामी ठाकुर साहिब की ओर से नगर के सम्पन्न सेठो की ओर से भोजन भण्डार चल रहे थे। आने वालो को पक्तियो मे विठाकर जिमाया जा रहा था। नगर के नवयुवक और नवयुवतिया, समर्थ सभी नर-नारी आगन्तुक अतिथियो की सेवा करने मे बडे उत्साह का प्रदर्शन कर रहे थे। इतना उत्साह था कि अथक परिश्रम करने के पश्चात् भी किसी प्रकार की थकान की झलक उनके मुख पर नही थी।

कई बाहर से आने वाली श्राविकाए सम्मिलित स्वरो मे चौबीसिया गा रही थी, कई रायपुर नगर की नारिया साथ मिलकर अपने मधुर कोकिल-कण्ठो से ऐसे गीत गा रही थी जिनका भाव था कि "बैरागी चान्दमल के दीक्षा-महोत्सव के कारण जो दूर-दूर से धर्म की निष्ठा वाले धार्मिक लोग एकत्रित हुए है और हो रहे है उससे नगर की भूमि धन्य-धन्य हो उठी है।" स्त्रियो की दूसरी टोली के गाने का भाव था कि "वैरागी चान्दमल की दीक्षा से नगरी की भूमि पावन ही नही वनेगी किन्तु धर्म की आराधना के इतिहास में इस नगरी के नाम को चार चाद लगेगे। तीसरी नारी-मण्डली के गाने का भाव था कि "वैरागी चान्दमल के भाग्य और पुण्य की परख तो इसी से हो रही है कि उसके दीक्षामहोत्सव की खुशी से आल्हादित होकर सहस्रो नर-नारियो के झुण्ड रायपुर की ओर खिचे चले आ रहे है यद्यपि उन्हे किसी ने निमन्त्रण-पत्र भेजकर नही वुलाया है।" चौथी महिला मण्डली के गीत का आशय था कि

"सहस्रो नर-नारी रूपी सितारे वैरागी चान्दमल के चारो ओर मण्डराते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे है जैसे उनके द्वारा चान्दमल नाम को चरितार्थ बनाया जा रहा हो।

शोभा यात्रा

वैरागी चान्दमल को दूल्हे के समान कौशेयवस्त्रो से, अलकारो से, देदीप्यमान सितारो से, मुकुट-तट पर लटकती हुई, लहराती हुई, बलखाती हुई, अपनी चमक झनकाती हुई रेशम की और जरी की तारो से सजा कर शोभा यात्रा के लिये घोडी पर चढा दिया गया। ऐसी वन्दोली रायपुर नगर के इतिहास मे आज तक कभी नही देखी गई थी। वैरागी के नूर को नितरा निखरे निहार कर कुछ सुन्दरिया सहसा यह गीत गाने लगी जिसका भाव था

"अरे! यह तो ऐसा लग रहा है जैसे कोई राजकुमार राजगद्दी प्राप्त करने के लिये अभिषिक्त होने जा रहा हो। कितनी भूल की है इसकी धर्म-माता ने इसके माथे पर नजर-विरोधी काला टीका नही लगाया। अरे हा, अब आई है समझ मे बात, चान्द तो लाछन से और भी सुन्दर लगा करता है, शायद इसी कारण उसने काला टीका नही लगाया। यदि ऐसा था तो गले मे व्याघ्रनख ही तावीज मे गूथकर बान्ध देती—उससे भी नजर का बचाव हो जाता। मुझे डर है कि कोई काली करतूत वाली अपनी मतवाली आख की प्याली से जहर की लाली ऊडेल कर रूप-पीयूष-परिपूर्ण इस कनक-कलश को कलुषित न कर दे। अरि! आज तो पूनम का दिन है और पूनम की ही रात आने वाली है। 'पूनम का चान्द' तो केवल रात की ही शोभा बढाने वाला होता है, यह चाद तो दिन की भी शोभा बढा रहा है। कौन कहता है कि सूर्य के प्रकाश से चान्द का प्रकाश मध्यम पड जाता है, सूर्य की उपेक्षा करके सभी इसी चान्द को देख रहे है, फीका पड जाता तो इतना आकर्षक और मनोहारी कैसे होता। 'पूनम के चान्द' को पराजित करने के लिये सभवत इस नये चान्द का जन्म हुआ है। यह चान्द भी सोलह कलाओ से मण्डित है। आओ हम सब मिलकर इसके दर्शन से अपनी आखो को शीतल करले, तृप्त करले, और सफल करले।"

चान्दमलजी वैरागी की बन्दौली रायपुर नगर के प्रमुख बाजार मे से होती हुई निकल रही है। वैरागी सज-धज कर घोडी पर सवार है। हजारो नर-नारियो की भीड उसके पीछे चल रही है। आगे-आगे भिन्न-भिन्न प्रकार के बाजे विविध प्रकार की लयो मे अनेक प्रकार के गानो की धुने निकालते हुए बज रहे है। सारी नगरी उनकी ध्वनियो से प्रतिध्वनित हो रही है। बालक, युवा और वृद्ध सभी शोभायात्रा मे उल्लासपूर्ण, आनन्दपूर्ण, उत्साहपूर्ण, उमग परिपूर्ण, अगस्फूर्तिपूर्ण, अभिनय परिपूर्ण, और सुकथनीय कलापूर्ण राजस्थानी नृत्य करते हुए, झूमते हुए, घूमते हुए, नगरी की धरती पर धूम मचा रहे है। बालिकाए, किशोरिया, सुन्दरिया, युवतिया, प्रौढाए और वृद्धाए रग-बिरगी कौशेय की घाघरिया, उन पर लटकने वाली, झूमने वाली, अठखेलिया करने वाली किकणी क्वणित-सुवर्णतागडिया, काम-सम्राट् की पटकुटी से स्पर्धा करने वाली बहुरगी कचुकिया, इन्द्र धनुष के सौन्दर्य को सकुचित कर देने वाली चतुरगी, सप्तरगी और अतिचगी चूनरिया, सुवर्ण के, रजत के और गजदन्त के अलकारो को धारण करके, सम्मिलित स्वरो मे शृगार के, वैराग्य के, करुणा के और शान्तरसो के गीत गाती हुई, चचल चाल से चलती हुई, चमकती हुई दमकती हुई, गमकती हुई और ठुमकती हुई चान्दमल वैरागी की शोभायात्रा को चार चान्द नही किन्तु सहस्रो चान्द लगा रही है।

महोत्सव की सार्थकता

प्राचीन युगो मे जब कोई विक्रमशाली राजा जग मे विजय प्राप्त करके लौटता था तब उसके स्वागत के लिये उसकी राजधानी मे प्रजा ऐसी धूमधाम से महोत्व मनाया करती थी। जब वह शत्रु पर चढाई करता था, उस समय प्राय ऐसे महोत्सवो का आयोजन नही किया जाता था। राजा का सम्बन्ध सासारिक क्षेत्र से था। आध्यात्मिक क्षेत्र मे वैरागी चान्दमल भी एक प्रकार का राजा था और पराक्रमी योद्धा था। उसने तो अभी तक न कोई युद्ध लडा है और न ही किसी युद्ध मे विजय प्राप्त की है, उसने तो अभी युद्ध की योजना बनाई है, तैयारी की है और चढाई के लिये मात्र निकल पडा है ससार के सीमित प्रासाद से। ऐसी दशा मे उसके सम्मान के लिये इतना महान् महोत्सव और जनोत्सव—यह कोई आश्चर्य की बात नही है। ससारी राजा की

विजय नश्वर होती हे। वह एक युद्ध मे विजय प्राप्त करके दूसरे मे पराज्य का मुख भी देख मकता है। राजा की शत्रु पर चढाई, लडाई और दुहाई सव कर्म की कमाई हे। उस कमाई मे हिसा है, असत्य है और परिग्रह हे। वेरागी की चढाई और लडाई मे अहिसा, सत्य और अपरिग्रह के वीज हे। युद्ध-क्षेत्र मे ससारी राजा की जीत या हार अनिश्चयात्मक होती है किन्तु मच्चे वैरागी की आध्यात्मिक युद्ध-क्षेत्र मे विजय निश्चित होती है। समारी राजा युद्ध-क्षेत्र मे मरकर पुन जन्म-मरण की शृ खला मे वध जाता है किन्तु सच्चा वैरागी आध्यात्मिक युद्ध-क्षेत्र मे मर कर पुन भवगतियो से सर्वथा मुक्त हो जाता है और वह अमर विजय का वरण करता हे। इस प्रकार वैरागी के युद्ध का श्रीगणेश ससार के राजा की अपेक्षा शुभ, पावन और अधिक महत्वपूर्ण होता हे। सम्भवत इसी कारण उसकी कपायो के किले पर चढाई के अवसर पर ऐसी धूमधाम की योजना वनाई जाती है। चान्दमल वैरागी की वन्दोली के दृश्य को अपने मानसपटल पर कल्पना द्वारा उतार कर उन्ही की परम्परा मे से एक वर्तमान विद्वान् सन्त कवि ने वैरागी को शत्रु के किले पर चढाई करने वाले राजा के समान मानकर वडा सुन्दर रूपक वाधा है

किलो ह्वो जगी ही दृढतर भले ही मोहनृप को,
कषायां री खाई विषय-जल वाली भिल रही।
विकारा री ल्हेरा गहन भल होवो किम् नही,
नहीं धारेला यें विघन-घन माथे पवन है॥
उमगी लागी है चढन हित दीक्षा-शिखरिणी,
ढहा देला देखो गढ मढ मुनी व्हे करम को।
सहारो देवेला गुरू पुनि गुरूभाइय प्रते,
बखाणो सेवाओ सुजस बहु लेसी सब कहे॥

पंडित मुनि श्री लालचन्द जी महाराज, (अप्रकाशित रचना)

अर्थात्—कोई पराक्रमी अति वलवान् राजा जब शत्रु के किले पर चढाई करता है तो भले ही शत्रु-राजा का किला कितना ही पक्का क्यो न बना हो, वह तो उसे तोडकर ही छोडता है। ठीक इसी प्रकार यह चान्दमल नाम का पराक्रमशाली वैरागी राजा आज मोह रूपी

राजा के किले पर चढाई करने के लिये निकल पडा है, मोह का किला कितना ही दृढ क्यो न हो, यह तो निश्चय से उसे तोड कर ही छोडेगा। उस किले को तोड देना यद्यपि कोई सरल काम नही है क्योकि उसके चारो ओर कषायो की खाई खुदी हुई है जो ससार के विषय रूपी जल से परिपूर्ण है और झिलमिला रही है। वह खाई वडी गहरी है। और उस पर विकारो या वासनाओ की सदा लहरे उठा करती है जिस मार्ग पर यह चान्दमल नाम का वैरागी चल रहा है, उस पर भले ही कितने ही विघ्न-बाधाए रूपी बादल मण्डराने लगे, यह उन सबको पवन बनकर छिन्न-भिन्न कर देगा।

"किसी बडे से वडे और पक्के से पक्के किले के पास यदि कोई छोटी सी पहाडी हो तो उसको शत्रु सेनाए वडी सरलता से तोड सकती है। शत्रु सेनाए पहाडी का आश्रय पाकर किले पर आक्रमण करती है। पहाडी सैनिको के शरीर का बचाव भी करती है और उनको निशाना लगाने की सुविधा भी प्रदान करती है।" इस भाव को अभि-व्यक्ति देते हुए कवि कह रहे है कि वैरागी ने मोह के किले को तोडने के लिये दीक्षा को छोटी पहाडी बनाया है जिसका आश्रय लेकर वह किले को तोडने मे समर्थ होगा। मुनि बनने के पश्चात्, यह चान्दमल वैरागी अपने गुरु को और गुरुभाइयो को बडा सहारा देगा, अपनी विनम्र सेवा की भावना के कारण तथा प्रवचनो के कारण ससार मे प्रशसा, यश और कीर्ति का भाजन बनेगा।

शोभा यात्रा से पडाल पर

इस प्रकार बडी धूमधाम से निकली बन्दोली की समाप्ति वहा आकर हुई जहा स्वामीजी नथमल जी महाराज अपनी शिष्य-मण्डली के साथ विराजमान थे। नगर की गलियो, कूचो और सडको का लम्बा चक्कर काटने वाले शोभा यात्रा के यात्री दीक्षा के निमित्त बने विशाल पण्डाल के नीचे बिछी दरियो पर विश्रान्ति लेने के लिये टिक कर ऐसे बैठ गये जैसे कर्म-सचय के कारण अनेक योनियो मे चक्कर काटने वाला जीव कर्म-क्षय के पश्चात् स्वस्थिति मे पहुच कर टिक जाया करता है।

मुनिवेश धारण

वैरागी चान्दमल अश्ववारी से नीचे उतरा। वडी गम्भीर गति से स्वामीजी नथमल जी महाराज के चरणो मे आकर खडा हो गया। उसने वडी विनम्रता से और विवेक से अपने पाचो अगो को नमा करके गुरुदेव के चरणो मे वन्दना की। इसके पश्चात् वहा उपस्थित सभी सन्तो और सतियो को श्रामणी आचार-सहिता के अनुसार, यथा-क्रम और यथोचित प्रकार से सविधि वन्दना की। इसके अनन्तर वहा उपस्थित सब दर्शको का नम्रता पूर्वक हाथ जोडकर 'जय जिनेन्द्र' कह अभिवादन किया। सर्वप्रथम गुरुदेव स्वामीजी नथमल जी महाराज ने वैरागी को मागलिक सुनाया। तब सारे सघ की साक्षी मे गुरुदेव की आज्ञा पाकर वे ईशान कोण के एकान्त मे साधुवेश धारण करने के निमित्त गये। वैरागी के सारे भूषण उतार दिये गये, मात्र सामान्य वस्त्र उसके शरीर पर सुशोभित थे। नाई ने उसके सिर का मुण्डन किया केवल चोटी के थोडे मे बाल छोड दिये। तव उसे स्नान कराकर शरीर शुद्धि की गई। अब वैरागी मुनि के वेश मे परिवर्तित हो गये। श्रमणसन्त के वेश का वर्णन उक्त सन्त कवि श्री लालचन्दजी महाराज ने मारवाडी भाषा की कविता मे वडी ही सजीव, सरल एव समास शैली मे इस प्रकार किया है

कटीतट चोलपटो सुलपेट, दिवो पटलो सु सुशोभित पेट।
लई फिर चादर आदर-जुक्त, खवा दुहु छादित बाधि यथुक्त॥

फवी मुख पै मुखवत्थि अनूप, बधी जुत दोरक शुद्ध सरूप।
अलकृत ह्वी दुहु कान सु पाय, लियो उपयोग श्रुती सदुपाय॥

दिये मुख-पीयूष कुभ समान, लग्यो ढकणो तिण ऊपर तान।
कही उड जा न प्रमाद-पवन्न, बध्यो इन कारण जाय सुकन्न॥

सुनो मत कोई सुनाय अजोग, वसे जग में कई भातिय लोग।
रखो निजको श्रुतिबन्ध सदाय, करे हम शिक्षण दोर सवाय॥

बदो मत आप सुनो जितनो हि, कहो सु जरूरत ह्वै इतनो हि।
सके पड़ कान अनिच्छित बात, कढ़े मुख तें प विचारित ख्यात॥

वध्यो इन हेतु वदन्न सुनाम, बले मुखवत्थि कियो सुमुकाम।
बणी चवड़ी निज अंगुल सोल, बले इकवीस सुआयत ओल ।।

वणो सुभ सोलकलायुत चद, बधौ बिसवा इकवीस अमंद।
वदे व्रत आठ सुसीख सवाय, रहो निज आठ गुणां प्रकटाय।।

दिपै मुख चांद वैरागिय केर, लियो सु रजोहरणो कख फेर।
लसे कर झोलिय पात्र समेत, पधारत आप गुरु उपचेत।।

(अप्रकाशित रचना)

अर्थात्—वैरागी चान्दमल ने कटीतट—कमर पर चोलपट्टा सुन्दर ढग से लपेट लिया और पेट के ऊपर उसके अवशिष्ट भाग की पट्टी बनाकर कस डाली। दोनो कन्धो को आच्छादित करती हुई चद्दर को ओढ कर उसे यथास्थान गाठ लगादी। मुख पर उसने मुखवस्त्रिका बाध ली जो उस पर अनुपम रूप मे सजने लगी। उसमे एक डोरा डालकर कानो से बान्ध दिया गया। दोनो कान उस डोरे की लपेट को पाकर सुन्दर लगने लगे। यह कानो का सदुपयोग था।

मुख पर वन्धी मुखवस्त्रिका ऐसे सज रही थी जैसे किसी ने अमृत-घट को ढक्कण से ढक दिया हो। कही प्रमाद की वायु से मुखवस्त्रिका उड न जाये इस कारण उसे कानो से बान्ध दिया गया था। डोर का कानो से वान्धना बडा ही सारगर्भित था। डोरा कानो को नसीहत दे रहा था कि ससार मे भान्ति-भान्ति के लोग रहते है, उनमे कोई भी तुम्हे कोई अनुचित वात सुनाये तो उसे मत सुनो। जितना लोगो से सुनो, वह सारा का सारा सवके सामने व्यक्त मत करो, उतना ही प्रकट करो जितना प्रकट करना परमावश्यक हो। यदि कोई कान मे अवाछित वात पड भी जाये तो मुख से उसका प्रकटीकरण विवेकपूर्वक होना चाहिये। इसी मे मुखवस्त्रिका की भी शोभा है और बोलने वाले मुनि की भी।

इस मुखवस्त्रिका का निर्माण धारण करने वाले मुनि की सोलह अगुली चौडा और इक्कीस अगुली लम्वे माप का वस्त्र-खड होता है। वैरागी चान्दमल जी के मुख पर वन्धी मुखवस्त्रिका को देखकर लोग मुखवस्त्रिका के निर्माण के अर्थ को चरितार्थ करते हुए कह रहे थे, "हे वैरागी चाद! तुम्हारी सोलह अंगुल चौडी मुखवस्त्रिका का अर्थ

है कि तुम चन्द्रमा की सोलह कलाओ से सम्पन्न वनोगे, और इक्कीस अगुल लम्बी का अर्थ है कि तुम वीस नही इक्कीस विसवा-अर्थात्-पूर्णरूपेण आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रगति करोगे।" उक्त लम्बे-चौडे वस्त्र-खण्ड की वनी मुखवस्त्रिका की आठ परते या तहे होती है जिससे अनुमान लगाकर वैरागी चान्द को लोग कह रहे थे कि "तुम मुनि के रूप मे आगे जाकर सिद्धो के आठ गुणो को प्रकट करने वाले वनोगे।"

गुरु चरणो में

वैरागी चान्दमल ने रजोहरण वगल मे ले लिया और हाथ मे पात्रो से मण्डित झोली सम्हाल ली। इस वेश मे चान्दमल का व्यक्तित्व निखर उठा था। इस वेश मे वह गुरु के चरणो मे उपस्थित हुए। उसने गुरु के चरणो मे जाकर वन्दना की, 'तिखुत्तो' का पाठ पढा। उसका विवेक उससे कह रहा था 'हे मालि पुत्र! अव तेरा जीव जाग चुका है।' उसने गुरुदेव से विनम्र प्रार्थना की, "वापजी! अव आप मुझे दीक्षित कीजिये। मै आपके आगे सुचरित्र पालन की भिक्षा पाने के लिये झोली पसार कर प्रस्तुत हू। अव आप मुझ पर करुणा करके अपनी शिष्य-मण्डली मे प्रविष्ट होने की आज्ञा प्रदान करे। मुझे अपनी पुनीत सेवा के सुअवसर से अनुग्रहीत करे, मेरे जीवन को कृतार्थ करे, मेरे पुण्य को प्रगति दे और मेरे जीव को सुगति दे। अव तक पता नही कितना अतीत भवो का और वर्तमान भवका अमूल्य समय मैने विना सत्कर्म सम्पादन के व्यर्थ मे खोया है। आज मैं वहुत प्रसन्न हू और अपने आपको वडा भाग्यशाली एव पुण्यवान समझता हू। 'आज का सूर्य मेरे लिये सौभाग्य की किरणे लेकर उदित हुआ था' ऐसा मैं अनुभव कर रहा हू।"

भगवती सूत्र मे, शतक दशवे और उद्देशक पहले मे, वैरागी स्कन्दक द्वारा गुरु के चरणो मे दीक्षा से पूर्व प्रकटित भावो को उद्धृत करना अप्रासगिक न होगा। सूत्र के मूल पाठ का अनुवाद अपने सरल एव रोचक काव्य मे करते हुए सन्त कवि श्री लालचन्दजी महाराज कहते है

जनि आधि व्याधि उपाधियां, वार्द्धक्य पुनि मृत्यूमयी,
इस लोक में अग्नी लगी है, घास है जनता नयी।
हे नाथ ! मै क्या-क्या बताऊं, बुझाई बुझती नही,
गर बुझाद् इस तरफ तो, उधर नूतन लग रही॥

जिधर देखू उधर ही यह ज्वाल-माल कराल है,
धांय-धांय जला रही हा, लाय अति असराल है।
जलते हुए निज सदन से जिस तरह स्वामी गेह का,
बहुमूल्य कमभारीय वस्तु, जो उसी के स्नेह का॥

लेकर उसे अन्यत्र जा एकांत सद्रक्षित रखे,
तब सोचता निस्तार होगा, मै रहूगा अब अखे।
बाद मे होगा हितावह, और सुखकारी सदा,
सामर्थ्य यह देगा मुझे, कल्याणकर है सर्वदा॥

हे कृपालो ! आत्म मेरा एक सब सुख धाम है,
इष्ट-कान्त-मनोज्ञ-प्रिय सब ही तरह अभिराम है।
इसके सिवा संसार में कोई न है मेरा प्रभो !
यही केवल है टिकाऊ, पास में मेरे विभो ! ॥

मै चाहता हूं आप इसकी कर कृपा रक्षा करो,
लेकर चरण की शरण मुझको दया से अब आचरो।
पट प्रव्रज्या मुकुट मण्डन सीख (सु) वेश दिलाईये,
मै वेश अनल निरोध धारू कर कृपा दिलवाईये॥

शिष्यत्व से स्वीकारकर मम चित्त की चिन्ता हरो।
रिक्त मेरे हृदय-घट को, रत्नत्रय-गुण से भरो।
है न भगवन् ! आपसा, उद्धारकर्ता लोक मे,
ज्ञात मुझको हो गया है, ज्ञान के आलोक में॥

प० मुनि श्री लालचन्दजी महाराज
(अप्रकाशित रचना)

है कि तुम चन्द्रमा की सोलह कलाओ मे सम्पन्न बनोगे, और इक्कीस अगुल लम्बी का अर्थ है कि तुम बीस नही इक्कीस विसवा-अर्थात्-पूर्णरूपेण आध्यात्मिक क्षेत्र मे प्रगति करोगे।" उक्त लम्बे-चौडे वस्त्र-खण्ड की बनी मुखवस्त्रिका की आठ परते या तहे होती है जिससे अनुमान लगाकर वैरागी चान्द को लोग कह रहे थे कि "तुम मुनि के रूप मे आगे जाकर सिद्धो के आठ गुणो को प्रकट करने वाले बनोगे।"

गुरु चरणो में

वैरागी चान्दमल ने रजोहरण बगल मे ले लिया और हाथ मे पात्रो से मण्डित झोली सम्हाल ली। इस वेश मे चान्दमल का व्यक्तित्व निखर उठा था। इस वेश मे वह गुरु के चरणो मे उपस्थित हुए। उसने गुरु के चरणो मे जाकर वन्दना की, 'तिक्खुत्तो' का पाठ पढा। उसका विवेक उससे कह रहा था 'हे मालि पुत्र! अब तेरा जीव जाग चुका है।' उसने गुरुदेव से विनम्र प्रार्थना की, "बापजी! अब आप मुझे दीक्षित कीजिये। मै आपके आगे सुचरित्र पालन की भिक्षा पाने के लिये झोली पसार कर प्रस्तुत हू। अब आप मुझ पर करुणा करके अपनी शिष्य-मण्डली मे प्रविष्ट होने की आज्ञा प्रदान करे। मुझे अपनी पुनीत सेवा के सुअवसर से अनुग्रहीत करे, मेरे जीवन को कृतार्थ करे, मेरे पुण्य को प्रगति दे और मेरे जीव को सुगति दे। अब तक पता नही कितना अतीत भवो का और वर्तमान भवका अमूल्य समय मैने बिना सत्कर्म सम्पादन के व्यर्थ मे खोया है। आज मै बहुत प्रसन्न हू और अपने आपको बडा भाग्यशाली एव पुण्यवान समझता हू। 'आज का सूर्य मेरे लिये सौभाग्य की किरणे लेकर उदित हुआ था' ऐसा मै अनुभव कर रहा हू।"

भगवती सूत्र मे, शतक दशवे और उद्देशक पहले मे, वैरागी स्कन्दक द्वारा गुरु के चरणो मे दीक्षा से पूर्व प्रकटित भावो को उद्धृत करना अप्रासगिक न होगा। सूत्र के मूल पाठ का अनुवाद अपने सरल एव रोचक काव्य मे करते हुए सन्त कवि श्री लालचन्दजी महाराज कहते है

जनि आधि व्याधि उपाधिया, वार्द्धक्य पुनि मृत्यूमयी,
इस लोक में अग्नी लगी है, घास है जनता नयी।
हे नाथ! मै क्या-क्या बताऊ, वुझाई वुझती नही,
गर बुझाइ इस तरफ तो, उधर नूतन लग रही।।

जिधर देखू उधर ही यह ज्वाल-माल कराल है,
धांय-धांय जला रही हा, लाय अति असराल है।
जलते हुए निज सदन से जिस तरह स्वामी गेह का,
बहुमूल्य कमभारीय वस्तु, जो उसी के स्नेह का।।

लेकर उसे अन्यत्र जा एकात सद्रक्षित रखे,
तब सोचता निस्तार होगा, मै रहूगा अब अखे।
बाद में होगा हितावह, और सुखकारी सदा,
सामर्थ्य यह देगा मुझे, कल्याणकर है सर्वदा।।

हे कृपालो! आत्म मेरा एक सब सुख धाम है,
इष्ट-कान्त-मनोज्ञ-प्रिय सब ही तरह अभिराम है।
इसके सिवा संसार में कोई न है मेरा प्रभो!
यही केवल है टिकाऊ, पास में मेरे विभो! ।।

मै चाहता हूं आप इसकी कर कृपा रक्षा करो,
लेकर चरण की शरण मुझको दया से अब आवरो।
पट प्रव्रज्या मुकुट मण्डन सीख (सु) वेश दिलाईये,
मै वेश अनल निरोध धारू कर कृपा दिलवाईये।।

शिष्यत्व से स्वीकारकर मम चित्त की चिन्ता हरो।
रिक्त मेरे हृदय-घट को, रत्नत्रय-गुण से भरो।
है न भगवन्! आपसा, उद्धारकर्ता लोक में,
ज्ञात मुझको हो गया है, ज्ञान के आलोक में।।

प० मुनि श्री लालचन्दजी महाराज
(अप्रकाशित रचना)

प्रवृत्ति-प्रवृत्त-कुपुरुष-प्रदत्त-कटुकटुता का ग्रप्रतिशोध भी है, पदे-पदेप्रलोभनीय-कमनीय-इन्द्रिय-विषयो की दुर्दमनीय कान्त कामनाग्रो का सरोध भी है, कल्पशतयोनिपरिभ्रमणानन्तर दुर्लभ मानव योनि सप्राप्ति-साफल्य का ग्रववोध भी है। ग्रागम-निगम-सिद्धान्त दर्शन के रूप मे समस्त वाड्मय का सारभूत सवोध भी है, श्रद्धाविहीन, विवेक-विहीन एव कुतर्काश्रित वितण्डावादियो के लिये यह दुर्वोध भी है, श्रद्धावान्, विवेकवान्, ज्ञानगरिमा निधान विद्वान् के लिए यह सुवोध भी है, ग्रौर नि श्रेयस् सुपथ पर ग्रपने परम-पावन-पाद-पदम् प्रस्थापित करने वाले पथिको के लिये यह पाथेय के रूप मे ग्रपनी पराकाष्ठा को पहुचा हुग्रा प्रमोद भी है। सावद्यत्याग का यह मूल मन्त्र जो ग्रावश्यक सूत्र के प्रथमावश्यक मे ग्रकित है इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। यह पाठ समस्त जैन वाड्मय का सारभूत तत्व है।

गुरु की ग्राज्ञा से दीक्षार्थी शिष्य गुरु के तथा समस्त उपस्थित जनसमूह के समक्ष इसे इस प्रकार पढता है

"करेमि भते ! सामाइय सव्वं सावज्ज जोगं पच्चक्खामि। जावज्जीवाए तिविहं तिविहेण मणेणं, वायाए, काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि ग्रप्पाणं वोसिरामि।

—ग्रावश्यक सूत्र, प्रथमावश्यक

दीक्षा के समय दीक्षार्थी शिष्य वैरागी चान्दमलजी ग्रपने गुरु के समक्ष जीवन भर के लिये प्रतिज्ञा करते हुए कहते है

"हे भगवन् ! जितना भी ससार मे पापमय या हिसापूर्ण काम है उन सवका मै मन से, वाणी से ग्रौर कर्म से परित्याग करता हू। जितने भी ससार मे प्राणी है या प्राण धारण करने वाले जीव है उनमे से किसी का भी हनन मैं मन से, वाणी से ग्रौर कर्म से न तो कभी करूगा, न किसी के द्वारा करवाऊगा, न किसी ग्रन्य का, जो कर रहा होगा, ग्रनुमोदन करूगा। जो इस प्रकार के पाप मैंने ग्राज तक किये है, उनसे मै दूर हट रहा हू। उनके लिये मेरी ग्रात्मा मे वडी ग्रात्मग्लानि है। उसकी मै गर्हा कर रहा हू। ग्राज से गुरु के समक्ष मै वाह्यात्मा का भी परित्याग कर रहा हू ग्रौर ग्रन्तरात्मा के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करता हू।"

इस कविता का साराश है, कि दीक्षार्थी शिष्य गुरु-चरणो मे खडा होकर गुरु से प्रार्थना करता हुआ कहता है कि "हे गुरुदेव ! यह सारा ससार आधि-व्याधि, जन्म जरा और मृत्यु से आक्रान्त है। सर्वत्र पापो की, अभिशापो की, परितापो की और सन्तापो की अग्नि जल रही है। जब किसी घर को आग लग जाती है तो घर का स्वामी अपनी जान को खतरे मे डालकर भी अपनी कीमती वस्तुओ की रक्षा इसलिये करना चाहता है कि उनसे उसका भविष्य का जीवन सुखमय बनेगा। इस अनलाकुल ससार से भाग कर आये हुए मेरे पास तो मात्र मेरी आत्मा ही मूल्यवान वस्तु है जिसकी मैं रक्षा करना चाहता हू। इसकी रक्षा करने का एकमात्र स्थान आपके चरणो मे है। मुझ पर करुणा करके आप मुझे अपने शिष्य के रूप मे स्वीकार करे। मुझे दीक्षित करे जिससे मै अपने चित्त की चिन्ता से मुक्त हो जाऊ। मुझे भलीभाति ज्ञात है कि आप जैसा जीवो का उद्धार करने वाला ससार मे कोई नही है।"

गुरु के चरणो मे उपस्थित, दीक्षा से पूर्व दीक्षार्थी शिष्य के भाव प्राय उक्त भाव से मिलते-जुलते ही होते है। वैरागी चान्दमल के भाव भी वैसे ही थे जैसा कि ऊपर निर्देश दिया जा चुका है।

दीक्षा-विधान

दीक्षा के लिये करबद्ध खडे हुए वैरागी चान्दमल को स्वामीजी नथमलजी महाराज ने दीक्षानिमित्त शास्त्र-विहित कर्मकाड की प्रक्रिया का पालन करने की आज्ञा दी। सर्व प्रथम इरियावहिय पाठ, फिर कायोत्सर्ग, तत्पश्चात् आत्मशक्तिवर्धक नवकारमन्त्र का पाठ, शिष्य द्वारा उच्चरित कराया गया। शिष्य के मुख से गुरु द्वारा कहलवाया गया सावद्य त्याग का शास्त्रीय भाग अत्यन्त सारगर्भित भी है, दीक्षा का मूलभूत बीज भी है, श्रमण सस्कृति का आधार भूत तत्व भी है, जन्म-जरा मृत्यु के जर्जरण का यन्त्र भी है, कर्मास्रव के निरोध का विरोध भी है, पाप-सताप-लिप्तात्मा का परिशोध भी है, ज्ञानलवदुर्विदग्ध जीवो का प्रतिरोध भी है, सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्र के पालन द्वारा ससार के कारणभूत कलुषित कषायो का गतिरोध भी है, वासनाओ की वायु के सचार का निरोध भी है, पाप-

प्रवृत्ति-प्रवृत्त-कुपुरुष-प्रदत्त-कटुकटुता का अप्रतिरोध भी है, पदे-पदेप्रलोभनीय-कमनीय-इन्द्रिय-विषयो की दुर्दमनीय कान्त कामनाओ का सरोध भी है, कल्पशतयोनिपरिभ्रमणानन्तर दुर्लभ मानव योनि सप्राप्ति-साफल्य का अवबोध भी है। आगम-निगम-सिद्धान्त दर्शन के रूप मे समस्त वाड्मय का सारभूत सबोध भी है, श्रद्धाविहीन, विवेक-विहीन एव कुतर्काश्रित वितण्डावादियो के लिये यह दुर्बोध भी है, श्रद्धावान्, विवेकवान्, ज्ञानगरिमा निधान विद्वान् के लिए यह सुबोध भी है, और नि श्रेयस् सुपथ पर अपने परम-पावन-पाद-पद्म् प्रस्थापित करने वाले पथिको के लिये यह पाथेय के रूप मे अपनी पराकाष्ठा को पहुचा हुआ प्रमोद भी है। सावद्यत्याग का यह मूल मन्त्र जो आवश्यक सूत्र के प्रथमावश्यक मे अकित है इस प्रसग मे उल्लेखनीय है। यह पाठ समस्त जैन वाड्मय का सारभूत तत्व है।

गुरु की आज्ञा से दीक्षार्थी शिष्य गुरु के तथा समस्त उपस्थित जनसमूह के समक्ष इसे इस प्रकार पढता है

"करेमि भंते ! सामाइय सव्व सावज्जं जोगं पच्चक्खामि। जावज्जीवाए तिविह तिविहेण मणेणं, वायाए, काएणं न करेमि, न कारवेमि, करंतंपि अन्नं न समणुजाणामि, तस्स भंते ! पडिक्कमामि, निंदामि, गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

—आवश्यक सूत्र, प्रथमावश्यक

दीक्षा के समय दीक्षार्थी शिष्य वैरागी चान्दमलजी अपने गुरु के समक्ष जीवन भर के लिये प्रतिज्ञा करते हुए कहते है

"हे भगवन् ! जितना भी ससार मे पापमय या हिसापूर्ण काम है उन सबका मै मन से, वाणी से और कर्म से परित्याग करता हू। जितने भी ससार मे प्राणी है या प्राण धारण करने वाले जीव है उनमे से किसी का भी हनन मै मन से, वाणी से और कर्म से न तो कभी करूगा, न किसी के द्वारा करवाऊगा, न किसी अन्य का, जो कर रहा होगा, अनुमोदन करूगा। जो इस प्रकार के पाप मैंने आज तक किये है, उनसे मैं दूर हट रहा हू। उनके लिये मेरी आत्मा मे बडी आत्मग्लानि है। उसकी मैं गर्हा कर रहा हू। आज से गुरु के समक्ष मै बाह्यात्मा का भी परित्याग कर रहा हू और अन्तरात्मा के शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करता हू।"

वैरागी चान्दमलजी ने इसके उपरान्त सिद्धो और अर्हंतो को नमस्कार किया, तत्पश्चात् स्वामी नथमलजी महाराज के चरणो मे सविधि वन्दना की । स्वामीजी ने उनको अपने पास पाट पर बैठा लिया और उनके सिर पर चोटी के जो अवशिष्ट केश थे उनका स्वय लोच किया । यह केश लोच ऐसा था जैसे नि सार ससार-पारावार के अविचारित-विस्तार-परिहार-पराभूत-विकार-तृण-परिवार को समूल उखाड कर सहार दिया हो । दीक्षा सम्पन्न हुई । सन्त श्रावको को मागलिक सुनाते हुए दृष्टिगोचर होने लगे ।

२

गुरु-शरण से समाधि-संसरण

योग्य गुरु के योग्य शिष्य

महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः ।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मताः ।।

योग शास्त्र, २।८

अर्थात्—अहिंसा-आदि पाच महाव्रतो को धारण करने वाले, धैर्यशाली, शुद्ध शास्त्र-विहित भिक्षा के आहार से जीवन यापन करने वाले, सयम मे स्थिर रहने वाले एव धर्म का उपदेश देने वाले महात्मा गुरु माने जाते है।

जं देई दिक्खसिक्खा, कम्मक्खयकारणे सुद्धा ।

बोध पाहुड़, १६

अर्थात्—सच्चा आचार्य या गुरु वही है जो कर्म को क्षय करने वाली शुद्ध दीक्षा और शुद्ध शिक्षा देता है ।

न बिना यानपात्रेण तरितुं शक्यतेऽर्णवः
नर्ते गुरूपदेशाच्च सुतरोऽय भवार्णवः ।।

आदिपुराण, ९।१७५

अर्थात्—जिस प्रकार विना जहाज के सागर को पार करना सभव नही होता, ठीक वैसे ही सद्गुरु के उपदेश के बिना इस ससार-रूपी समुद्र को पार नही किया जा सकता ।

स्वामीजी नथमल जी महाराज वास्तव मे उक्त सभी गुणो के धनी थे। वे सदा से शुद्ध दीक्षा और शुद्ध शिक्षा देते आ रहे थे। ससार-सागर से पार उतारने वाले वे यथार्थ मे जहाज थे। अपने आध्यात्मिक एव धार्मिक उपदेशो द्वारा उन्होने कितने ही भटकने वाले एव भ्रान्त जीवो को ससार-समुद्र मे से तैर कर पार जाने का सन्मार्ग बताया था। ऐसे अनुपम गुरु को पाकर चान्दमल शिष्य धन्य-धन्य हो गया था। महामनीषी श्री हर्ष के शब्दो मे

"चकास्ति योग्येन हि योग्य सगम ।"

अर्थात्—योग्य व्यक्ति के साथ योग्य व्यक्ति का सग ही शोभायमान होता है।

स्वामीजी नथमल जी महाराज को चान्दमल जैसा शिष्य भी यथानुरूप ही मिला। वह भी सुयोग्य शिष्य के सभी गुणो से सम्पन्न था। सुयोग्य शिष्य के गुणो का निर्देश करते हुए शास्त्रकार कहते है

गुर्वाज्ञा करण हि सर्वगुणेभ्योऽतिरिच्यते ।

त्रिषष्टिशलाका पुरुष०, १।८

अर्थात्—गुरु की आज्ञा मानने का गुण शिष्य मे सब गुणो से बढकर होता है।

निद्देस नाई वट्टेज्जा मेहावी ।

आचाराग, ५।६

अर्थात्—प्रतिभाशाली शिष्य अपने गुरु की आज्ञा का कभी भी उल्लघन न करे।

अणाबाहसुहाभिकखी, गुरुप्पसायाभिमुहो रमिज्जा ।

दशवैकालिक, ६।१।१०

अर्थात्—मोक्ष के सुख की अभिलाषा रखने वाले शिष्य को, गुरु को प्रसन्न रखने के लिये सदा प्रयत्नशील रहना चाहिये।

मुनि चान्दमल जी महाराज मे गुरु की आज्ञा का पालन करने का गुण पूर्णरूपेण विद्यमान था। उन्होने अपने गुरु की आज्ञा का अतिक्रमण कभी भूल कर भी नही किया। उनकी सभी क्रियाओ मे गुरु को

प्रसन्न करने की भावना अधिक से अधिक रहती थी। परिणामस्वरूप स्वामीजी नथमल जी महाराज भी यह प्रयत्न करने लगे कि उनका शिष्य उत्तरोत्तर विद्वान्, चरित्रवान्, ज्ञानवान्, दर्शनवान्, श्रद्धावान्, आगमज्ञानवान्, सम्मानवान्, सयम-सौन्दर्यवान्, समतावान्, मन्न-गुणगरिमावान्, विविध-विश्व-विपय-विप-विकार-सचार-परिहारवान और नि श्रेयस् पथ के पथ पर द्रुततम गतिमान् वने।

विद्याध्ययन

उक्त गुणो के आधान का निधान-बनाने के लिये विधि-विधान से स्वामीजी नथमल जी महाराज ने मुनि चान्दमल जी को विद्याध्ययन का श्रीगणेश कराया क्योकि

सम्यगाराधिता विद्यादेवता कामदायिनी।

आदिपुराण, १६।९९

अर्थात्—यदि विद्या-देवता की सम्यक् विधि-विधान से आराधना की जाये तो उससे समस्त वाछित फलो की प्राप्ति हो जाती है।

और भी

श्रिय प्रदुग्धे विपदो रुणद्धि, यशांसि सूते मलिनं प्रमार्ष्टि।
संस्कार शौचेन पर पुनीते, शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनु ॥

विद्धशालभंजिका नाटिका, १।८

अर्थात्—पुण्यमयी सम्पत्तियो की जननी, आपत्तियो का निवारण करने वाली, लोक-मानस मे यश उत्पन्न करने वाली, मन की मैल का प्रमार्जन करने वाली, मानव-मन के सस्कारो को पावन बनाने वाली और परम पवित्र प्रजा के रूप मे प्रकट होने वाली विद्या कामधेनु के समान होती है।

परन्तु उक्त प्रकार के फलो की, गुणो की और उपलब्धियो की जननी विद्या की प्राप्ति के लिये भी विद्यार्थी मे अपेक्षित गुणो का होना परमावश्यक है। उन अनेक गुणो मे प्रमुख है—प्रिय करना, प्रिय बोलना और विनयशील होना।

शास्त्र का कथन है

पियं करे, पियं वाई, से सिक्ख लद्धुमरिहई।

उत्तराध्ययन सूत्र, ११।१४

अर्थात्—जो शिष्य अच्छे कार्य करने वाला हो और प्रिय वचन बोलने वाला हो, वही मनोवाछित शिक्षा प्राप्त करने मे सफल हो सकता है। इसी प्रकार

विणयाहीया विज्जा देंति फल इह परे य लोगम्मि।
न फलति विणयहीणा, सस्साणिव तोयहीणाई।।

बृहत्कल्पभाष्य, ५२०३

अर्थात्—विनय की भावना से पढी हुई विद्या, इस लोक और पर-लोक मे सर्वत्र फलवती होती है। विनय के विना ग्रहण की गई विद्या उसी प्रकार निष्फल हो जाया करती है जैसे जल न मिलने के कारण धान्य की खेती नष्ट हो जाती है।

मुनि चान्दमल जी मे 'सवका प्रिय सपादन,, 'वचन माधुर्य' और 'विनय की भावना' ये तीनो गुण प्रचुर मात्रा मे विद्यमान थे। इन तीनो गुणो के अतिरिक्त अन्य जो शास्त्रविहित जिज्ञासा वृत्ति के गुण हैं वे भी इस विद्यार्थी मे पर्याप्त थे। शास्त्र के अनुसार

सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणइ गिण्हाई ईहए वावि।
ततो अपोहए वा, धारेइ करेइ वा कम्म।।

नन्दीसूत्र, गाथा, ९५

अर्थात्—विद्याग्रहण करने वाला छात्र, सर्व प्रथम।

(१) सुनने की इच्छा करता है, (२) पूछता है, (३) उत्तर को सुनता है, (४) ग्रहण करता है, (५) तर्क-वितर्क से ग्रहण किये हुए अर्थ को अपनी बुद्धि पर तोलता है, (६) तोलकर निश्चय करता है, (७) निश्चित अर्थ को धारण करता है और फिर (८) उसके अनुसार आचरण करता है।

मुनि चान्दमल जी गुरु-चरणो मे बैठकर जव विद्याभ्यास करते थे तो उक्त सभी जिज्ञासा-वृत्ति की क्रियाए उनकी वाणी मे अभिव्यक्त होती थी। कभी-कभी तो गुरु को आश्चर्य होता था उनकी प्रतिभा पर, उनकी तर्क-शक्ति पर और उनकी पदार्थ-धारण करने की तत्परता एव बौद्धिक सामर्थ्य पर। जिसे वे एक बार सुन लेते थे उसे दूसरी बार सुनने की आवश्यकता नही रहती, ऐसी थी उनकी तीक्ष्ण बुद्धि। गुरु-चरणो मे वैठकर मुनि चान्दमल जी महाराज ने व्याकरण सिद्धान्त

चन्द्रिका, अमरकोश, हेम व्याकरण, षड्दर्शन समुच्चय, सूयगडागसूत्र, आचारागसूत्र, भगवती सूत्र, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि-आदि अनेक व्याकरण तथा कोश के ग्रन्थो का और आगम तथा सिद्धान्त के ग्रन्थो का दत्तचित होकर अध्ययन किया। सस्कृत एव प्राकृत साहित्य दोनो का पठन साथ-साथ चलता था। पठित पाठ की आवृत्ति करना, मौखिक स्मरण करने वाले पाठो को रट डालना और उन्हे गुरु को प्रतिदिन सुना देना, उनकी दैनिक आवश्यक क्रिया थी। पठन के साथ-साथ उनकी दैनिक धार्मिक क्रियाए भी चल रही थी, उन्होने कभी भी किसी भी क्रिया मे प्रमाद नही किया। निरन्तर विद्याभ्यास से उनकी वुद्धि उत्तरोत्तर विकसित एव तीव्र होती जा रही थी।

स्वाध्याय: तपश्चर्या का प्रथम चरण

मुनि-मार्ग पर कदम रखने का अर्थ ही तपश्चर्या है और शास्त्र के वचनानुसार

न वि अत्थि न वि अ होही, सज्झायसम तवोकम्म।

बृहत्कल्पभाष्य, ११६९

अर्थात्—स्वाध्याय से बढकर 'तप' न तो ससार मे अब तक हुआ है, न वर्तमान मे कही है और न ही भविष्य मे कभी होने की सभावना है।

इसका भी कारण है। प्राय सभी जैनेतर दर्शनो के आचार्यो ने ·

'दु.खात्यन्तनिवृत्तिर्मोक्षः।'

अर्थात्—सभी प्रकार के—आत्मिक, आधिभौतिक और आधि-दैविक दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति—पूर्ण रूपेण अभाव को मोक्ष कहा है। जैन शास्त्र स्वाध्याय को भी दु खो से मुक्ति दिलाने का एक साधन मानता है

सज्झाए वा निउत्तेण, सव्वदुक्ख विमोक्खणे।

उत्तराध्ययन, २६।१०

अर्थात्—स्वाध्याय भी एक ऐसा उपाय है जिसमे मन की एका-ग्रता के कारण सब दु खो से मुक्ति मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त जैन दर्शन का यह प्रमुख सिद्धान्त है कि कर्मा के

अर्थात्—जो शिष्य अच्छे कार्य करने वाला हो और प्रिय वचन बोलने वाला हो, वही मनोवाछित शिक्षा प्राप्त करने मे सफल हो सकता हे । इसी प्रकार

विणयाहीया विज्जा देंति फल इह परे य लोगम्मि ।
न फलति विणयहीणा, सस्साणिव तोयहीणाई ।।

वृहत्कल्पभाष्य, ५२०३

अर्थात्—विनय की भावना से पढी हुई विद्या, इस लोक और पर-लोक मे सर्वत्र फलवती होती हे । विनय के विना ग्रहण की गई विद्या उसी प्रकार निष्फल हो जाया करती है जैसे जल न मिलने के कारण धान्य की खेती नष्ट हो जाती हे ।

मुनि चान्दमल जी मे 'सबका प्रिय सपादन,, 'वचन माधुर्य' और 'विनय की भावना' ये तीनो गुण प्रचुर मात्रा मे विद्यमान थे। इन तीनो गुणो के अतिरिक्त अन्य जो शास्त्रविहित जिज्ञासा वृत्ति के गुण है वे भी इस विद्यार्थी मे पर्याप्त थे । शास्त्र के अनुसार

सुस्सूसइ पडिपुच्छइ, सुणइ गिण्हाई ईहए वावि ।
ततो अपोहए वा, धारेइ करेइ वा कम्म ।।

नन्दीसूत्र, गाथा, ६५

अर्थात्—विद्याग्रहण करने वाला छात्र, सर्व प्रथम ।

(१) सुनने की इच्छा करता है, (२) पूछता है, (३) उत्तर को सुनता है, (४) ग्रहण करता है, (५) तर्क-वितर्क से ग्रहण किये हुए अर्थ को अपनी बुद्धि पर तोलता है, (६) तोलकर निश्चय करता है, (७) निश्चित अर्थ को धारण करता है और फिर (८) उसके अनुसार आचरण करता है ।

मुनि चान्दमल जी गुरु-चरणो मे बैठकर जब विद्याभ्यास करते थे तो उक्त सभी जिज्ञासा-वृत्ति की क्रियाए उनकी वाणी मे अभिव्यक्त होती थी। कभी-कभी तो गुरु को आश्चर्य होता था उनकी प्रतिभा पर, उनकी तर्क-शक्ति पर और उनकी पदार्थ-धारण करने की तत्परता एव बौद्धिक सामर्थ्य पर । जिसे वे एक बार सुन लेते थे उसे दूसरी बार सुनने की आवश्यकता नही रहती, ऐसी थी उनकी तीक्ष्ण बुद्धि । गुरु-चरणो मे बैठकर मुनि चान्दमल जी महाराज ने व्याकरण सिद्धान्त

चन्द्रिका, अमरकोश, हेम व्याकरण, षड्दर्शन समुच्चय, सूयगडागसूत्र, आचारागसूत्र, भगवती सूत्र, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आदि-आदि अनेक व्याकरण तथा कोश के ग्रन्थो का और आगम तथा सिद्धान्त के ग्रन्थो का दत्तचित होकर अध्ययन किया। सस्कृत एव प्राकृत साहित्य दोनो का पठन साथ-साथ चलता था। पठित पाठ की आवृत्ति करना, मौखिक स्मरण करने वाले पाठो को रट डालना और उन्हे गुरु को प्रतिदिन सुना देना, उनकी दैनिक आवश्यक क्रिया थी। पठन के साथ-साथ उनकी दैनिक धार्मिक क्रियाए भी चल रही थी, उन्होने कभी भी किसी भी क्रिया मे प्रमाद नही किया। निरन्तर विद्याभ्यास से उनकी बुद्धि उत्तरोत्तर विकसित एव तीव्र होती जा रही थी।

स्वाध्याय. तपश्चर्या का प्रथम चरण

मुनि-मार्ग पर कदम रखने का अर्थ ही तपश्चर्या है और शास्त्र के वचनानुसार

न वि अत्थि न वि अ होही, सज्झायसम तवोकम्म।

बृहत्कल्पभाष्य, ११६९

अर्थात्—स्वाध्याय से बढकर 'तप' न तो ससार मे अब तक हुआ है, न वर्तमान मे कही है और न ही भविष्य मे कभी होने की सभावना है।

इसका भी कारण है। प्राय सभी जैनेतर दर्शनो के आचार्यो ने ·

'दु.खात्यन्तनिवृत्तिर्मोक्षः।'

अर्थात्—सभी प्रकार के—आत्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति—पूर्ण रूपेण अभाव को मोक्ष कहा है। जैन शास्त्र स्वाध्याय को भी दु खो से मुक्ति दिलाने का एक साधन मानता है

सज्झाए वा निउत्तेण, सव्वदुक्ख विमोक्खणे।

उत्तराध्ययन, २६।१०

अर्थात्—स्वाध्याय भी एक ऐसा उपाय है जिसमे मन की एकाग्रता के कारण सब दु खो से मुक्ति मिल जाती है।

इसके अतिरिक्त जैन दर्शन का यह प्रमुख सिद्धान्त है कि कर्मा के

क्षय से ही जीव को मुक्ति प्राप्त होती है । उसका पोषण भी स्वाध्याय से सम्पन्न होता है । शास्त्रकार कहते हे

सज्झाएण णाणावरणिज्ज कम्म खवेई ।

वही, २९।१८

अर्थात्—स्वाध्याय करने से ज्ञानावरण—ज्ञान को आच्छादन करने वाले कर्म का क्षय होता हे ।

'मुनि चान्दमल जी की तपश्चर्या का 'स्वाध्याय' प्रथम चरण था' ऐसा हम नि सकोच कह सकते हैं । वे जिस शास्त्र का स्वाध्याय करते थे वह मात्र स्वाध्याय के निमित्त नही होता था किन्तु उस पर मनन और चिन्तन भी करते थे । मनन और चिन्तन का परिणाम अनुभूति है । अपने गुरुमुख से पढा हुआ निम्नलिखित शास्त्र वचन उन्हे भली-भाति स्मरण था

जो वि पगासो बहुसो, गुणिओ पच्चक्खओ न उवलद्धो ।
जच्चधस्स व चन्दो, फुडो वि सतो तहा स खलु ॥

वृहत्कल्पभाष्य, १२२४

अर्थात्—किसी शास्त्र का अनेक वार अध्ययन करने के पश्चात् भी यदि उसके वास्तविक अर्थ की साक्षात् स्पष्ट अनुभूति न हुई हो, तो वह अध्ययन वैसा ही अप्रत्यक्ष रहता है, जैसा कि जन्मान्ध के समक्ष चन्द्रमा प्रकाशमान होते हुए भी अप्रत्यक्ष ही रहता है ।

इस शास्त्र वचन के अनुगमन-स्वरूप वे जो कुछ गुरुमुख से पढते थे उसे अनुभूतिगम्य भी बनाते थे । चिन्तन और मनन की परिणति है—अनुभूति और अनुभूति की परिणति है—क्रिया । 'ज्ञान हीन क्रिया बिना' की उक्ति के अनुसार उस ज्ञान का कोई भी लाभ नही है जो जीवन मे अपने अन्तरग और बहिरग क्रिया-कलाप मे उतारा न गया हो । मुनि चान्दमल जी ने अव यह निश्चय कर लिया था कि उन्होने जो कुछ पढा है, सीखा है, अनुभव किया है और जाना है उसे वे क्रिया के रूप मे परिणत करेगे—साध्वाचार के रूप मे, धर्म प्रचार के रूप मे, शास्त्रो की व्याख्याकार के रूप मे, परोपकार के रूप मे, ससार के प्राणियो के ऊद्धार के रूप मे, समता के प्रचार के रूप मे और कषाय-जनित विकारो के सहार के रूप मे ।

साधना के पथ पर

वैदिक सस्कृति मे आत्म-कल्याण की सोपान पर आरूढ होने के लिये आयु की निश्चित सीमा का विधान है। उसमे ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रमो को पार करके वानप्रस्थ और सन्यास के आश्रमो की प्रतीक्षा करनी पडती है, परन्तु श्रमण सस्कृति मे इस प्रकार आत्म-कल्याण चाहने वाले जीव के लिये किसी प्रकार का वन्धन नही है। इसका कारण है कि मृत्यु का तो कोई भी समय निश्चित नही है। वह बाल्यावस्था मे भी आ सकती है और युवावस्था मे भी, वह किसी भी आश्रम की प्रतीक्षा नही करती। ऐसी स्थिति मे आत्म-कल्याण के लिये लम्बे समय की प्रतीक्षा करने की गुजायश नही रह जाती है। अतएव श्रमण सस्कृति का विधान है कि आयु भले ही कितनी हो किन्तु यदि जीव अपने कल्याण के लिये और उद्धार के लिये जागरूक है तो उसे अपनी आयु के किसी भी वर्ष मे ससार का त्याग करके वीतरागता का आश्रय ले लेना चाहिये। चोले से मुनि चान्दमल तक पहुचे चान्दमल के जीव ने श्रमण सस्कृति की इसी परम्परा का पालन करते हुए आत्म-कल्याण के मार्ग पर कदम वढाया था। श्रमण सस्कृति की सोपान के पहले डडे पर पैर रखने के लिये साधक को अपना परि-वार, माता, पिता, पत्नी, सगे-सम्बन्धी, एव चल-अचल सम्पति सभी का पूर्ण रूप से परित्याग करना पडता है। इन सबका ममत्व वह ठीक उसी प्रकार छोड देता है जैसे साप अपनी कचुली को त्याग कर पुन उसकी ओर नही देखता। ससार की सव ऋद्धि और सिद्धियो को वह ऐसे झाडकर चल देता है सासारिक जीवन से, जैसे लोग वस्त्र की धूल को झाडकर पीछे हट जाते है। परन्तु यह सब तो वाह्य त्याग है। श्रमण मुनि के लिये इतना ही पर्याप्त नही है। यह वाह्य वस्तुओ पर उसने विजय प्राप्त की है। उसके लिये अपने अन्तर्जगत् पर विजय प्राप्त करना और भी अत्यावश्यक है। उसे तो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार

निम्ममो निरहकारो, निस्सगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु च॥
लाभालाभे सुहेदुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापससासु, तहा माणावमाणओ॥

क्षय से ही जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। उसका पोषण भी स्वाध्याय से सम्पन्न होता है। शास्त्रकार कहते है

सज्झाएण णाणावरणिज्ज कम्मं खवेई।

वही, २६।१८

अर्थात्—स्वाध्याय करने से ज्ञानावरण—ज्ञान को आच्छादन करने वाले कर्म का क्षय होता है।

'मुनि चान्दमल जी की तपश्चर्या का 'स्वाध्याय' प्रथम चरण था' ऐसा हम नि सकोच कह सकते है। वे जिस शास्त्र का स्वाध्याय करते थे वह मात्र स्वाध्याय के निमित्त नही होता था किन्तु उस पर मनन और चिन्तन भी करते थे। मनन और चिन्तन का परिणाम अनुभूति है। अपने गुरुमुख से पढा हुआ निम्नलिखित शास्त्र वचन उन्हे भली-भाति स्मरण था

जो वि पगासो बहुसो, गुणिओ पच्चक्खओ न उवलद्धो।
जच्चंधस्स व चन्दो, फुडो वि सतो तहा स खलु॥

बृहत्कल्पभाष्य, १२२४

अर्थात्—किसी शास्त्र का अनेक बार अध्ययन करने के पश्चात् भी यदि उसके वास्तविक अर्थ की साक्षात् स्पष्ट अनुभूति न हुई हो, तो वह अध्ययन वैसा ही अप्रत्यक्ष रहता है, जैसा कि जन्मान्ध के समक्ष चन्द्रमा प्रकाशमान होते हुए भी अप्रत्यक्ष ही रहता है।

इस शास्त्र वचन के अनुगमन-स्वरूप वे जो कुछ गुरुमुख से पढते थे उसे अनुभूतिगम्य भी बनाते थे। चिन्तन और मनन की परिणति है—अनुभूति और अनुभूति की परिणति है—क्रिया। 'ज्ञान हीन क्रिया विना' की उक्ति के अनुसार उस ज्ञान का कोई भी लाभ नही है जो जीवन मे अपने अन्तरग और बहिरग क्रिया-कलाप मे उतारा न गया हो। मुनि चान्दमल जी ने अब यह निश्चय कर लिया था कि उन्होने जो कुछ पढा है, सीखा है, अनुभव किया है और जाना है उसे वे क्रिया के रूप मे परिणत करेगे—साध्वाचार के रूप मे, धर्म प्रचार के रूप मे, शास्त्रो की व्याख्याकार के रूप मे, परोपकार के रूप मे, ससार के प्राणियो के उद्धार के रूप मे, समता के प्रचार के रूप मे और कषाय-जनित विकारो के सहार के रूप मे।

साधना के पथ पर

वैदिक सस्कृति मे आत्म-कल्याण की सोपान पर आरूढ होने के लिये आयु की निश्चित सीमा का विधान है। उसमे ब्रह्मचर्य और गृहस्थाश्रमो को पार करके वानप्रस्थ और सन्यास के आश्रमो की प्रतीक्षा करनी पडती है, परन्तु श्रमण सस्कृति मे इस प्रकार आत्म-कल्याण चाहने वाले जीव के लिये किसी प्रकार का बन्धन नही है। इसका कारण है कि मृत्यु का तो कोई भी समय निश्चित नही है। वह बाल्यावस्था मे भी आ सकती है और युवावस्था मे भी, वह किसी भी आश्रम की प्रतीक्षा नही करती। ऐसी स्थिति मे आत्म-कल्याण के लिये लम्बे समय की प्रतीक्षा करने की गुजायश नही रह जाती है। अतएव श्रमण सस्कृति का विधान है कि आयु भले ही कितनी हो किन्तु यदि जीव अपने कल्याण के लिये और उद्धार के लिये जागरूक है तो उसे अपनी आयु के किसी भी वर्ष मे ससार का त्याग करके वीतरागता का आश्रय ले लेना चाहिये। चोले से मुनि चान्दमल तक पहुचे चान्दमल के जीव ने श्रमण सस्कृति की इसी परम्परा का पालन करते हुए आत्म-कल्याण के मार्ग पर कदम बढाया था। श्रमण सस्कृति की सोपान के पहले डडे पर पैर रखने के लिये साधक को अपना परिवार, माता, पिता, पत्नी, सगे-सम्बन्धी, एव चल-अचल सम्पति सभी का पूर्ण रूप से परित्याग करना पडता है। इन सबका ममत्व वह ठीक उसी प्रकार छोड देता है जैसे साप अपनी कचुली को त्याग कर पुन उसकी ओर नही देखता। ससार की सब ऋद्धि और सिद्धियो को वह ऐसे झाडकर चल देता है सासारिक जीवन से, जैसे लोग वस्त्र की धूल को झाडकर पीछे हट जाते है। परन्तु यह सब तो बाह्य त्याग है। श्रमण मुनि के लिये इतना ही पर्याप्त नही है। यह बाह्य वस्तुओ पर उसने विजय प्राप्त की है। उसके लिये अपने अन्तर्जगत् पर विजय प्राप्त करना और भी अत्यावश्यक है। उसे तो शास्त्र की आज्ञा के अनुसार

निम्ममो निरहंकारो, निस्सगो चत्तगारवो।
समो य सव्वभूएसु तसेसु थावरेसु च॥
लाभालाभे सुहेदुक्खे, जीविए मरणे तहा।
समो निन्दापससासु, तहा माणावमाणओ॥

गारवेसु कसाएसु, दण्डसल्लभएसु य।
नियत्तो हाससोगाओ, अनियाणो अबन्धवो ॥

उत्तराध्ययन अ० १९, गा० ८९-९१

अप्पसत्थेहिं दारेहिं, सव्वओ पिहियासवे।
अज्झप्पज्झाणजोगेहिं, पसत्थदमसासणे ॥

एवं नाणेण चरणेण, दंसणेण तवेण य।
भावणाहि य सुद्धाहि, सम्म भावेत्तु अप्पय ॥

वही० गा०, ९३-९४

अर्थात्—प्राणिमात्र को अपना समझ कर भी श्रमण-सन्त ममताहीन होता है, अहकारी ससार के अन्दर रहते हुये भी अहकार उसका स्पर्श नही करता, ससारी प्राणियो के साथ विचर कर भी उसका किसी के प्रति लगाव नही होता, ससार के अज्ञानी प्राणियो से तिरस्कृत होता हुआ भी वह अपने गौरव को महत्व नही देता, विषमतापूर्ण ससार मे रहता हुआ वह समस्त त्रस और स्थावर प्राणियो के प्रति समता का भाव रखता है। साधना के इस चरण मे श्रमण के लिये लाभ-हानि, सुख-दु ख, जीवन-मरण, निन्दा-प्रशसा, मान और अपमान सब एकाकार बन जाते है। वह अपमान को भी अमृत समझ कर पी जाता है परन्तु अपमानकर्ता के प्रति कटु वचन बोलकर उसका कभी निरादर नही करता। गौरवो से, क्रोधादि कषायो से, दण्ड, शल्य के भय से, प्रसन्नता और शोक से वह निवृत्त हो जाता है। कोई उसकी ईप्सित कर्म-फल-इच्छा नही होती। कोई उसका बान्धव नही होता, यद्यपि वह प्राणिमात्र के शुभ चिन्तन मे सदा तत्पर रहता है और प्राणिमात्र को अपना बन्धु मानता है।

आध्यात्मिक ध्यान-योग के द्वारा और अपने ऊपर पूर्ण शासन के द्वारा वह निन्दनीय पाप कर्मो के आगमन को रोक देता है और इस प्रकार ज्ञान, चारित्र, दर्शन और तप के द्वारा अपनी भावनाओ को शुद्ध बनाकर अपनी आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है।

जैन सन्त ससार के प्राणिमात्र का उपकार करने को तो सर्वदा उद्यत रहता है किन्तु उसका प्रतिफल प्राप्त करने की कभी कामना नही करता। अपनी वेदना को तो वह मानकर सरलता से

सहन कर लेता है किन्तु दूसरो की पीडा उसके लिये असह्य हो उठती है। इसमे तनिक भी सन्देह नही कि जैन सन्तो की साधना का केन्द्र-बिन्दु निजात्म-कल्याण या उत्थान होता है परन्तु इसमे भी जरा भी सन्देह नही कि लोक-कल्याण की भावना को जैन शास्त्रो मे आत्मोद्धार का साधन माना गया है। दूसरो के कल्याण को अपना ही कल्याण माना है

समाहिकारए णं तमेव समांहि पड़िलब्भई।

भगवती सूत्र, ७।१

अर्थात्—जो दूसरो के सुख एव कल्याण का प्रयत्न करता है, वह स्वय भी सुख एव कल्याण को प्राप्त करता है।

जैनागमो मे और धर्म ग्रन्थो मे जैन साधु की आचार सहिता इतने विस्तार से वर्णित है कि उस पर स्वतन्त्र विशाल ग्रन्थो का निर्माण हो सकता है किन्तु यहा तो उसका सक्षेप से निर्देश इसलिए किया जा रहा है कि पाठको को उसकी रूपरेखा से यह ज्ञात हो जाये कि जैन सन्त को आत्म-कल्याण के लिये और लोक-कल्याण के लिये किन-किन और कैसे-कैसे लोमहर्षक परीषहो मे से गुजरना पडता है, सहते हुये आगे बढना होता है और सब प्रकार के दु खो पर, रुकावटो पर और विरोधी-तत्वो पर विजय प्राप्त करनी होती है। मुनि चान्दमल जी महाराज सबमे खरे उतरे, कही भी डगमगाये नही, घबराये नही, शर्माये नही, उकताये नही, किसी प्रलोभन मे आये नही, दुर्दमनीय इन्द्रियो के विषयो ने सताये नही, कुपथगामियो के, विधर्मियो के कुतर्को से भरमाये नही, साधना की आराधना के 'अह' से किसी पर छाये नही, मिथ्याज्ञान के कदापि गीत गाये नही और सत्य वचन कभी किसी से कहते शर्माये नही।

जिस साधना के पथ पर चलता हुआ जैन सन्त जन्म-मरण के वन्धन को काटने मे समर्थ बनता है, कर्मो का क्षय करके परमात्म-पद को प्राप्त करने मे समर्थ होता है, उस साधना के कुछ निश्चित तत्व है, कुछ निर्धारित धार्मिक नियम है, कुछ शास्त्रीय विधि-विधान हैं और कुछ सतुलित आचार विचार है, जिनके पालन करने से या जीवन मे वास्तविक रूप से उतारने से ही मुनि प्रशस्त नि श्रेयस् के मार्ग पर अग्रसर हो सकता है। जैन मुनि के लिये विहित उन नियमो की

यहा मात्र रूप रेखा ही प्रस्तुत की जा सकती है। मुनि चान्दमल जी उन सभी, मुनि के लिये अपेक्षित, धार्मिक नियमो का वडी कर्मठता से सम्पादन करने मे सफल हुए, इस कारण उन तत्वो का या नियमो का यहा निर्देश करना परमावश्यक है।

साधना के मूल मन्त्र · पाच महाव्रत

किसी भी जैन साधु के साधुत्व की आधारशिला पच महाव्रत पालन है। जो पच महाव्रतो का पालन नही करता उसे श्रमण सस्कृति की आचारसहिता के अनुसार साधु नही कहा जा सकता। सक्षेप मे पच महाव्रत जैन साधु की साधना की नीव हे, जिस पर वह अपने आचार का, विचार का, आत्मोद्धार का और मोक्ष-मार्ग-विहार का प्रासाद खडा किया करता है। वे पाच महाव्रत है

१ **अहिसा महाव्रत** · जैन साधु को जीवन भर के लिये यह व्रत लेना होता हे कि वह मन से, वचन से और कर्म से न तो किसी भी प्राणी की हिसा करेगा, न करवायेगा और न ही करने वाले का अनुमोदन करेगा। वह प्राणिमात्र के प्रति अखड करुणा की भावना रखेगा। यही कारण है कि वह जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और पृथ्वीकाय सभी प्रकार के जीवो की हिंसा से दूर रहता है, यद्यपि उसे इसके लिये अनेक प्रकार की असुविधाओ का, कष्टो का और कठिन परीषहो का सामना करना पडता है। वह शास्त्र की आज्ञा का कभी उल्लघन नही करता। शास्त्र का कथन है

सव्वे पाणा पिआउआ, सुहसाया दुक्खपडिकूला।
जीविउकामा, सव्वेसिं जीविय पियं,
नाइवाएज्ज कचण॥

आचारांग, १।२।३

अर्थात्—सब प्राणियो को अपना जीवन प्यारा है। सुख सब को प्रिय है और दु ख सबको अप्रिय। मृत्यु किसी को अच्छी नही लगती किन्तु जीना सबको अच्छा लगता है। सभी प्राणी जीना चाहते हैं। क्योकि सबको जीवन प्रिय है। इसलिये हे साधक, तुम किसी भी प्राणी की हिसा मत करो।

आयस्रो बहिया पास ।

वही० १।३।३

अर्थात्—तुम अपने समान ही बाह्य जगत् के प्राणियो को देखो ।

जं इच्छसि अप्पणतो, जं च न इच्छसि अप्पणतो ।
तं इच्छ परस्स वि, एत्तियगं जिणसासणय ।।

बृहत्कल्पभाष्य, ४५८४

अर्थात्—जैसा व्यवहार तुम अपने लिये दूसरो से चाहते हो, वैसा ही व्यवहार तुम दूसरो के साथ करो । जैसा व्यवहार तुम अपने लिये नही चाहते हो, वैसा दूसरो के साथ भी नही चाहना चाहिये । बस यही जैन धर्म का सार है और यही तीर्थकरो का उपदेश है ।

इस प्रकार किसी भी प्रकार के त्रस और स्थावर जीव की हिसा न करता हुआ जैन मुनि प्रथम अहिसा महाव्रत का पालन करता है ।

२. सत्य महाव्रत : मन से सत्य का चिन्तन, वाणी द्वारा सत्य की अभिव्यक्ति, कर्म से सत्याचरण और सूक्ष्म असत्य के भी परित्याग को (दूसरा) सत्य महाव्रत कहते है । शास्त्र की वाणी मे

कायवाङ् मनसामृजुत्वमविसंवादित्व च सत्यम् ।

मनोनुशासनम्, ६।३

अर्थात्—शरीर, वचन एव मनकी सरलता तथा अविसवादिता—कथनी और करनी की एकता को सत्य कहा जाता है ।

शास्त्रकारो ने तो सत्य को साक्षात् भगवान् कहा है और यह भी कहा है कि इस ससार मे कोई सारभूत तत्व है तो वह सत्य ही है जिसकी गभीरता महासागर से भी बढकर है । इस भाव की अभिव्यक्ति निम्नलिखित शास्त्र वचनो मे की गई है

त सच्च भगव ।

प्रश्न व्याकरण, २।२

सच्चं लोगम्मि सारभूयं,
गंभीरतरं महासमुद्दाओ ।।

वही, २।२

ज्ञानार्णव मे तो यहा तक कहा गया है सत्य के विषय मे कि ·

एकत· सकल पापमसत्योत्थ ततोऽन्यतः।
साम्यमेव वदन्त्यार्यास्तुलाया धृतयोस्तयो ।

ज्ञानार्णव, पृष्ठ, १२६

अर्थात्—तराजू के एक पलडे मे यदि ससार के समस्त पापो को रख दिया जाये और दूसरे पलडे मे असत्य से उत्पन्न होने वाले पाप को रख दिया जाये तो दोनो का सतुलन समान होगा—ऐसा आर्य श्रेष्ठ पुरुषो का कथन है।

इसी सत्य की भिन्न प्रकार से मनु महाराज ने भी पुष्टि की है। उनका कथन है

अश्वमेध सहस्र च सत्य च तुलया धृतम् ।
अश्वमेध सहस्रादि सत्यमेव विशिष्यते ॥

मनु० उद्धृत०, सु०र०भा०, पृष्ठ, ८३

अर्थात्—हजारो अश्वमेध यज्ञो के फल को यदि तराजू के एक पलडे मे रख दिया जाये और दूसरे पलडे मे सत्य को रख दिया जाये तो सहस्रो अश्वमेध यज्ञो के फल की तुलना मे सत्य का पलडा ही भारी रहेगा।

जैन सन्त मन, वचन और काया से कभी असत्य भाषण नही करता। असत्य बोलने की अपेक्षा वह मौन धारण करना अधिक प्रियतर समझता है। वह जब बोलता है तो उसकी भाषा नितान्त मधुर, निर्दोष एव विवेकपूर्ण होती है।

शास्त्र-विधान के अनुसार वह तो हास्य-विनोद की बातो मे भी इसलिये भाग नही लेता कि कही प्रमादवश उसके मुख से असत्य-वचन न निकल जाये।

३ **अचौर्य महाव्रत** विना स्वामी की इच्छा से किसी भी वस्तु का ग्रहण न करना 'अचौर्य महाव्रत' कहलाता है। जैन मुनि के लिये शास्त्र का विधान है

दन्तसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जण ।

उत्तराध्ययन सूत्र, १९।२८

अर्थात्—अचौर्य—अस्तेय महाव्रत का पालन करने वाला जैन मुनि और वस्तु तो दर किनार, यदि दान्त साफ करने के लिये तिनके की भी आवश्यकता पडे तो उसे भी विना स्वामी की अनुमति के ग्रहण न करे।

इसका कारण बताते हुए शास्त्रकार कहते है

लोभाविले आययई अदत्तं ।

वही०, ३२।२९

अर्थात्—चौर्य कर्म मे वही व्यक्ति प्रवृत्त होता है जो लोभ से अभिभूत है। इस प्रकार लोभ नाम का कषाय चौर्य कर्म का जनक भी है और प्रेरक भी। लोभ कषाय से जीव मे कालुष्य उत्पन्न होता है, जो जीव के ऊर्ध्वमुखी होने मे बाधक है। इसलिये जैन मुनि चौर्य कर्म मे कभी प्रवृत्त नही होता।

इसके अतिरिक्त चौर्य कर्म मे हिसा की भावना भी स्पष्ट परिलक्षित होती है।

योगशास्त्र के अनुसार

एकस्यैकक्षणं दु ख मार्यमाणस्य जायते ।
सपुत्र-पौत्रस्य पुनर्यावज्जीवं हृते धने ।।

योग शास्त्र, २।६८

अर्थात्—यदि किसी को जान से मार दिया जाये तो मरने वाले को प्राणो के वियोग के समय एक क्षण का ही दु ख उठाना पडता है परन्तु जिस व्यक्ति के धनको चोरी द्वारा हरण कर लिया जाता है उसके पुत्र, पौत्र तथा अन्य अनेक परिवार के सदस्यो को आजीवन दु ख भोगना पडता है। इससे अनेक जीवो की हिसा का पाप चोरी करने वाले को लगता है।

४. ब्रह्मचर्य मह.व्रत मन से, वाणी से और कर्म से स्त्री की कामना न करना, सेवन न करना और उससे स्पर्श का सम्पर्क न करना 'ब्रह्मचर्य महाव्रत' कहलाता है। श्रमण सस्कृति मे भिक्षु माना ही उसको है जो शुद्ध भाव से ब्रह्मचर्य महाव्रत का पालन करता है। इस भाव को शास्त्र मे इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है

स एव भिक्खू, जो सुद्धं चरति बंभचेरं ।

प्रश्नव्याकरण, २।४

ब्रह्मचर्य की निरुक्ति करते हुए आचार्य कहते है

जीवो बंभा जीवम्मि चेव चरिया, हविज्ज जा जदिणो ।
तं जाण बंभचेरं, विमुक्कपरदेहतित्तिस्स ।।

भगवती आराधना, ८७८

अर्थात्—ब्रह्म का अर्थ है 'आत्मा'। आत्मा मे चर्या—रमण करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। ब्रह्मचारी परदेह मे प्रवृत्ति द्वारा तृप्ति प्राप्त नही करता। वह तो आत्मा की स्वस्थिति से ही तृप्त होता है।

शास्त्रकारो ने ब्रह्मचर्य महाव्रत को जैन साधु के लिये सर्वोत्तम माना है

तवेसु वा उत्तम वभचेर।

सूत्रकृताग, १।६।२३

अर्थात्—ससार मे जितने भी तप हैं, उन सब मे उत्तम तप ब्रह्मचर्य का पालन है। इस वास्तविकता का कारण वताते हुए शास्त्रकार कहते हैं—

जमि य भग्गमि होइ सहसा सव्व भग्ग।
ज मि आराहियमि आराहिय वयमिण सव्व ॥

प्रश्न व्याकरण, २।४

अर्थात्—ब्रह्मचर्य इस कारण उत्तम तप है कि केवल एक ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर, सहसा अन्य सव गुण नष्ट होने लगते है। एक ब्रह्मचर्य की आराधना कर लेने से अन्य सब शील, तप, विनय आदि व्रत स्वय आराधित हो जाते है।

यह महाव्रत जितना उत्तम है, उतना दुष्कर भी है। जो इसका पालन करता है उसको तो

देव-दाणव-गधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बंभयारि नमसति, दुक्कर जे करेति त ॥

उत्तराध्ययन, १६।१६

अर्थात्—देवता, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर, सभी ब्रह्मचर्य के साधक को प्रणाम करते है। वह इस योग्य इसलिये होता है क्योकि वह वडा ही दुष्कर-कठिन काम करता है।

५ अपरिग्रह महाव्रत परिगृह, मूर्च्छा, आसक्ति, ममत्व और इच्छा—ये शब्द सामान्य रूप से एकार्थक वाची है, अन्तर है तो अति-सूक्ष्म। श्रामणी दीक्षा लेते ही जैन साधु मन से, वाणी से और कर्म से समस्त परिग्रह का त्याग कर देता है। परिग्रह के अन्दर तो ससार की सभी वस्तुओ का समावेश हो जाता है। घर, सम्पति, सोना, चादी, हीरे, जवाहरात, पशुधन आदि आदि सब परिग्रह ही है। जैन

मुनि इन सबके प्रति अनासक्त होकर और अममत्वी बनकर विचरता है। साधु जीवन यापन करने के लिये भी उनको जिन अत्यावश्यक उपकरणो की आवश्यकता होती है उन्हे रखकर भी वह उनके प्रति मूर्च्छा भाव नही रखता।

पांच समिति : महाव्रतो की संरक्षिका

पाप कर्म से बचाव के लिये जो मनकी प्रशस्त एकाग्रता है, इसी को समिति कहा जाता है। प्रत्येक जैन मुनि के लिये यह वैधानिक आदेश है कि वह पाच महाव्रतो के पालन की रक्षा के लिये पाच प्रकार की समितियो का पूर्ण रूपेण ध्यान रखे। वे पाच समितिया है

१—**ईर्या समिति** मुनि चलते समय कम से कम चार हाथ आगे की भूमि को देखकर चले। इस प्रकार की सावधानी से आगे आने वाले जीवो की रक्षा की जा सकती है।

२. **भाषा समिति** साधक को अपनी भाषा पर पूर्ण सयम होना चाहिये। उसे तो

सच्च च हिय च मिय गाहण च।

प्रश्न व्याकरण २।२

अर्थात्—साधु को ऐसा सत्य बोलना चाहिए जो हितकारी हो, परिमित हो और ग्रहण करने योग्य हो। अन्यत्र भी

निच्चकालाप्पमत्तेण, मुसावायविवज्जण।
भासियव्व हिय सच्च, निच्चाउत्तेण दुक्कर॥

उत्तराध्ययन, १९।२६

साराश यह है कि साधु को अप्रमत्त होकर विचरना चाहिये, उसकी वाणी मे कभी असत्य का अश न आने पाये, उसकी भाषा सत्य से, हित से और माधुर्य से अनुप्राणित हो।

३ **एषणा समिति** साधु द्वारा सर्वथा निर्दोष एव पूर्ण रूपेण पवित्र आहार ग्रहण करने को एषणा समिति कहते है। जैन साधु सदा ऐसा आहार ग्रहण करते है जो असावद्य—पापविहीन हो। उनका आहार, आहार के लिये नही होता किन्तु मात्र शरीर धारण करने के लिये होता है। गोचरी मे मिला हुआ आहार तिक्त, कडुवा, कषायमय, अम्ल, मीठा, नमकीन, नीरस, व्यजनयुक्त अथवा

अर्थात्—ब्रह्म का अर्थ है 'आत्मा'। आत्मा मे चर्या—रमण करना ही ब्रह्मचर्य कहलाना है। ब्रह्मचारी परदेह मे प्रवृत्ति द्वारा तृप्ति प्राप्त नही करता। वह तो आत्मा की स्वस्थिति से ही तृप्त होता है।

शास्त्रकारो ने ब्रह्मचर्य महाव्रत को जैन साधु के लिये सर्वोत्तम माना है

तवेसु वा उत्तम बभचेरं।

सूत्रकृताग, १।६।२३

अर्थात्—समार मे जितने भी तप है, उन सव मे उत्तम तप ब्रह्मचर्य का पालन हे। इम वास्तविकता का कारण वताते हुए शास्त्रकार कहते है—

जमि य भग्गमि होइ सहसा सव्व भग्ग।
ज मि आराहियमि आराहिय वयमिण सव्व॥

प्रश्न व्याकरण, २।४

अर्थात्—ब्रह्मचर्य इम कारण उत्तम तप है कि केवल एक ब्रह्मचर्य के नाट होने पर, सहमा अन्य सव गुण नष्ट होने लगते है। एक ब्रह्मचर्य की आराधना कर लेने से अन्य सव शील, तप, विनय आदि व्रत स्वय आराधित हो जाते है।

यह महाव्रत जितना उत्तम है, उतना दुष्कर भी है। जो इसका पालन करता है उसको तो

देव-दाणव-गंधव्वा, जक्ख-रक्खस-किन्नरा।
बभयारिं नमंसति, दुक्करं जे करेति तं॥

उत्तराध्ययन, १६।१६

अर्थात्—देवता, दानव, गधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर, सभी ब्रह्मचर्य के साधक को प्रणाम करते है। वह इस योग्य इसलिये होता हे क्योकि वह वडा ही दुष्कर-कठिन काम करता है।

५ अपरिग्रह महाव्रत परिगृह, मूर्च्छा, आसक्ति, ममत्व और इच्छा—ये शब्द सामान्य रूप से एकार्थक वाची है, अन्तर है तो अति-सूक्ष्म। श्रामणी दीक्षा लेते ही जैन साधु मन से, वाणी से और कर्म से समस्त परिग्रह का त्याग कर देता है। परिग्रह के अन्दर तो समार की सभी वस्तुओ का समावेश हो जाता है। घर, सम्पति, सोना, चादी, हीरे, जवाहरात, पशुधन आदि आदि सब परिग्रह ही है। जैन

मुनि इन सबके प्रति अनासक्त होकर और अममत्वी बनकर विचरता है। साधु जीवन यापन करने के लिये भी उनको जिन अत्यावश्यक उपकरणो की आवश्यकता होती है उन्हे रखकर भी वह उनके प्रति मूर्च्छा भाव नही रखता।

पांच समिति : महाव्रतो की संरक्षिका

पाप कर्म से बचाव के लिये जो मनकी प्रशस्त एकाग्रता है, इसी को समिति कहा जाता है। प्रत्येक जैन मुनि के लिये यह वैधानिक आदेश है कि वह पाच महाव्रतो के पालन की रक्षा के लिये पाच प्रकार की समितियो का पूर्ण रूपेण ध्यान रखे। वे पाच समितिया है·

१—**ईर्या समिति** मुनि चलते समय कम से कम चार हाथ आगे की भूमि को देखकर चले। इस प्रकार की सावधानी से आगे आने वाले जीवो की रक्षा की जा सकती है।

२. **भाषा समिति** साधक को अपनी भाषा पर पूर्ण सयम होना चाहिये। उसे तो

सच्च च हिय च मिय गाहण च।

प्रश्न व्याकरण २।२

अर्थात्—साधु को ऐसा सत्य बोलना चाहिए जो हितकारी हो, परिमित हो और ग्रहण करने योग्य हो। अन्यत्र भी

निच्चकालाप्पमत्तेण, मुसावायविवज्जण।
भासियव्व हिय सच्च, निच्चाउत्तेण दुक्कर॥

उत्तराध्ययन, १६।२६

साराश यह है कि साधु को अप्रमत्त होकर विचरना चाहिये, उसकी वाणी मे कभी असत्य का अश न आने पाये, उसकी भाषा सत्य से, हित से और माधुर्य से अनुप्राणित हो।

३ **एषणा समिति** साधु द्वारा सर्वथा निर्दोष एव पूर्ण रूपेण पवित्र आहार ग्रहण करने को एषणा समिति कहते है। जैन साधु सदा ऐसा आहार ग्रहण करते है जो असावद्य—पापविहीन हो। उनका आहार, आहार के लिये नही होता किन्तु मात्र शरीर धारण करने के लिये होता है। गोचरी मे मिला हुआ आहार तिक्त, कडुवा, कषायमय, अम्ल, मीठा, नमकीन, नीरस, व्यजनयुक्त अथवा

व्यजनहीन, तरल अथवा शुष्क जैसा भी उसे मिल जाये, वह अपने ऊपर पूर्ण सयम रखता हुआ उसे मधु और घी की तरह स्वादिष्ट समझ कर खा जाता है।

४ **आदाननिक्षेपण समिति** 'किसी जीव-जन्तु का घात न हो जाए' इस भावना को ध्यान मे रखते हुए जैन मुनि अपने उपकरणो को या अन्य प्रकार की वस्तुओ को अपने स्थान से उठाते समय या उनको रखते समय जो सावधानी वरतता है—उसीका नाम आदान-निक्षेपण समिति है। अहिसा के धर्म का कितने सूक्ष्म एव सतर्क रूप मे साधु को पालन करना होता हे, इसकी स्पष्ट झलक इस चौथी समिति मे मिलती है।

५ **परिष्ठापनिका समिति** साधु को ऐसे स्थान पर मल मूत्र विसर्जित करना जहा जीवो की उत्पत्ति सभव न हो और देखने वालो के मन मे घृणा की भावना भी उत्पन्न न हो। इसी क्रिया को परि-ष्ठापनिका समिति कहते है।

तीनगुप्ति आत्म-नियत्रण की गुटिका

अपनी इन्द्रियो पर तथा मन पर पूर्ण नियत्रण रखते हुए उन्हे असत्य की प्रवृत्ति से रोककर अन्तर्मुखी करना या आत्माभिमुख करना गुप्ति कहलाता है। इसके तीन प्रकार है

१. **मनोगुप्ति** अशुभ, कुत्सित, निन्दनीय एव अप्रशस्त विकारो की ओर आकर्षित होते हुए मन को वहा से रोकने का नाम मनोगुप्ति है।

२ **वचनगुप्ति** · किसी के प्रति मिथ्या, कर्कश चुभने वाली और खलने वाली भापा के प्रयोग के रोकने को वचन गुप्ति कहा जाता है।

३ **कायगुप्ति** यह सामान्य अनुभव की बात है कि मनुष्य की प्रवृत्ति अशुभ की ओर अधिक किन्तु शुभ की ओर बहुत कम होती है। जैन मुनि अपने शरीर के व्यापारो को अशुभ से रोकता हे और शुभ की ओर उनकी प्रवृत्ति कराता है। अपनी सभी दैनिक क्रियाओ मे—खाने मे, पीने मे, सोने मे, जागने मे, उठने मे, बैठने मे, चलने मे, ठहरने मे, विहार मे और धर्म प्रचार मे, सर्वत्र सावधानी से काम लेता है।

जैन सन्त की साधना की व्यवस्था सुचारु रूप से चलती रहे और उसमे किसी प्रकार की रुकावट न आने पाये, इसलिये साधु की आचार-सहिता मे शास्त्रकारो ने अनाचीर्णो का व्याख्यान किया है। इन अनाचीर्णो की सख्या बावन है। अनाचीर्ण का अर्थ है अनाचरणीय—अर्थात्—साधु के द्वारा इनका आचरण वर्जित है। औद्देशिक, नित्य-पिण्ड, क्रीतकृत आदि बावन अनाचीर्णो का विवरण यहा विस्तार भय से देना सभव नही है। जिज्ञासु पाठक जैन धर्म ग्रन्थो मे यत्र-तत्र उनका विवरण पढ सकते है।

भवनाशिनी बारह भावनाए

'अन्तर्जगत् का प्रतिबिम्ब ही बाह्य जगत् है', यह उक्ति अक्षरश सत्य है। विचार आचार का बीज है। जैसा बीज होगा वैसा ही उसका प्रतिफलन होगा। बीज आक का है तो फल कडवे और विपाक्त ही होगे। बीज अगूर का है अगूर के मधुर फल ही खाने को मिलेगे। हमारी विचारधारा यदि विकृत है तो हमारा आचरण निश्चय से विकृत होगा। हमारी चिन्तन-धारा यदि पावन है तो हमारा आचरण भी अवश्यमेव पावन होगा। अतएव मानव जीवन को शुद्ध, बुद्ध, एव प्रबुद्ध बनाने के लिये अर्न्तजगत् का नियत्रण परमावश्यक है। अन्त-र्जगत् का सचालन मन के ऊपर आश्रित है, इसलिये मन पर नियत्रण होने से सारी मानवीय क्रियाए सुधर सकती है, सन्मार्ग की ओर अग्रसर हो सकती है, परमसुख की ओर बढ सकती है और मोक्ष-मार्ग के परम-पद को प्राप्त कर सकती है। यही कारण है कि जैनाचार्य चिरकाल से मनकी साधना पर भी उतना ही बल देते आये है, जितना आत्म-साधना पर। मन की साधना के लिये, मन को सन्मुख रखने के लिये, श्रद्धा की स्थिरता के लिये और वीतरागता की भावना की अभिवृद्धि के लिये जैनागमो ने 'अनुप्रेक्षाओ-भावनाओ' का विधान किया है। वार-वार चिन्तन मे प्रवृत्त होने को 'अनुप्रेक्षा' कहते है। उसी का दूसरा नाम भावना है। इस अनुप्रेक्षा या भावना के बारह प्रकार है

१ **अनित्य भावना** ससार के सभी पदार्थ अनित्य है, नश्वर है और कदापि स्थिर रहने वाले नही है। धन, ऐश्वर्य, अधिकार, परि-वार, माता-पिता, पत्नी, सगे-सम्बन्धी और मित्र—आदि सब नश्वर

है। लक्ष्मी सायकालीन लालिमा के समान शीघ्र ही पलायमान होने वाली है, जल-बुद्बुद् के समान है, जीव का जीवन आकस्मिक गमन-शील है, युवावस्था जिस पर मानव को बडा अहकार और गर्व होता है, देखते-देखते बादल की छाया के समान आखो से ओझल हो जाती है, ससार के सगे-सम्बन्धी असमय मे ही छोडकर चले जाते है। किसी विद्वान् ने ठीक ही तो कहा

एकेऽद्य प्रातरपरे पश्चादन्ये पुन परे।
सर्वे नि सीम्नि ससारे यान्ति क' केन शोच्यते ॥
शार्ङ्गधर पद्धति, ४१३७

अर्थात्—कतिपय ससार के प्राणी आज चले जा रहे है, कुछ कल चले जायेगे, कुछ उसके पश्चात्, और बाकी के उनके बाद। सीमा-रहित इस ससार मे सभी जाने वाले है। कौन किसकी चिन्ता करे। और भी

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचचला,
आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीनीलाम्बुवद्भगुरम्।
लोलायौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्य द्रुत,
योगे धैर्यसमाधिसिद्धसुलभे बुद्धि विदध्व बुधा ॥
भर्तृहरि, ३।३६

अर्थात्—अय ससार के विषयो मे खोए बुद्धिमान प्राणियो! ससार के भोग, मेघमण्डल के मध्य मे चमकती हुई बिजली की चमक के समान अस्थिर है, मनुष्य की आयु, वायु के वेग से आहत बदली की टुकडी मे टिके हुए जल के समान क्षणभगुर है, युवावस्था मे जागृत होने वाली मानव-मानस की लालसाए भी अस्थिर है, अनित्य है। इसलिये सबका परित्याग करके धैर्ययुक्त समाधि द्वारा, जहा सफलता सुलभ है, योग का अर्थात् आत्मोद्धार का आश्रय लो।

श्रमण-सस्कृति की अनित्य भावना से भी उक्त भाव ही अभिप्रेत है। इसका कथन है कि ससार के अनित्य पदार्थों के आकर्षण मे पडकर जीव को नित्यानन्द—स्वस्थिति के वैभव से वचित नही होना चाहिये।

अशरण भावना :

जीव को मृत्यु के पजे से छुडा कर शरण देने वाला ससार मे कोई

नही है। चाहे कोई चक्रवर्ती राजा भी क्यो न हो, उसकी वहुत वडो सैन्य शक्ति, उसका विशाल खजाना और उसके प्यारे पराक्रमी मित्र तथा बन्धु, कोई भी उसे मृत्यु से शरण नही दे सकते। मृत्यु से वचाव के लिये किसी पर भी भरोसा करना बेसमझी है। किसी विद्वान् का कथन है

भगीरथाद्या. सगरः ककुत्स्थो, दशाननो राघवलक्ष्मणौ च।
युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते, सत्य क्व याता वत ते नरेन्द्राः॥
शार्ङ्गधर पद्धति, ४००३

अर्थात्—भगीरथ जैसे महान् तपस्वी राजा, राजा सगर, रावण जैसा बलशाली योद्धा, राम-लक्ष्मण जैसे वीर, युद्धिष्ठिर जैसे धर्मपुत्र, पता नही कहा चले गये। सव कालकवलित हो गये, कोई भी उनको शरण नही दे सका।

और भी :

भ्रातः कष्टमहो महान् स नृपतिः सामन्तचक्र च तत्,
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः,
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथ कालाय तस्मै नमः।
वही० ४१६४

अर्थात्—हे भाई! कितने दुःख की बात है कि वह राजा इतना महान् था कि सदा माण्डलिक राजाओ के मण्डल से घिरा रहता था! उसकी सभा मे कितने उच्च कोटि के विद्वान् और चतुर सभासद् थे! चन्द्रमुखी रानियो का, जो उसके रणवास को अलकृत करती थी, सौन्दर्य तो अनुपम ही था! कितने गर्वीले राजपुत्रो का समूह उसके आस-पास बैठा रहता था! उसके स्तुति करने वाले भाट-चारण भी कितने प्रतिभाशाली थे! किन्तु आज जिसकी शक्ति के कारण उस राजा की केवल मात्र स्मृति ही वाकी वच गई है, मै उस काल-देवता को नमस्कार करता हू।

जैन शास्त्रो मे काल की इस अवश्यभावी परवशता को ही अशरण भावना कहा है।

३. ससार भावना ससार की वास्तविकता क्या है? इसमे

हैं। लक्ष्मी सायकालीन लालिमा के समान शीघ्र ही पलायमान होने वाली है, जल-बुद्बुद् के समान है, जीव का जीवन आकस्मिक गमन-शील है, युवावस्था जिस पर मानव को बडा अहकार और गर्व होता है, देखते-देखते बादल की छाया के समान आखो से ओझल हो जाती है, ससार के सगे-सम्बन्धी असमय मे ही छोडकर चले जाते हैं। किसी विद्वान् ने ठीक ही तो कहा

> एकेऽद्य प्रातरपरे पश्चादन्ये पुन. परे।
> सर्वे नि सीम्नि ससारे यान्ति क' केन शोच्यते ॥
>
> शार्ङ्गधर पद्धति, ४१३७

अर्थात्—कतिपय ससार के प्राणी आज चले जा रहे है, कुछ कल चले जायेंगे, कुछ उसके पश्चात्, और बाकी के उनके बाद। सीमा-रहित इस ससार मे सभी जाने वाले है। कौन किसकी चिन्ता करे। और भी ·

> भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनीचचला,
> आयुर्वायुविघट्टिताभ्रपटलीनीलाम्बुवद्भगुरम् ।
> लोलायौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्य द्रुत,
> योगे धैर्यसमाधिसिद्धसुलभे बुद्धि विदध्व बुधा ॥
>
> भर्तृहरि, ३।३६

अर्थात्—अय ससार के विषयो मे खोए बुद्धिमान प्राणियो! ससार के भोग, मेघमण्डल के मध्य मे चमकती हुई बिजली की चमक के समान अस्थिर हैं, मनुष्य की आयु, वायु के वेग से आहत बदली की टुकडी मे टिके हुए जल के समान क्षणभगुर है, युवावस्था मे जागृत होने वाली मानव-मानस की लालसाए भी अस्थिर है, अनित्य हैं। इसलिये सबका परित्याग करके धैर्ययुक्त समाधि द्वारा, जहा सफलता सुलभ है, योग का अर्थात् आत्मोद्धार का आश्रय लो।

श्रमण-सस्कृति की अनित्य भावना से भी उक्त भाव ही अभिप्रेत है। इसका कथन है कि ससार के अनित्य पदार्थो के आकर्षण मे पडकर जीव को नित्यानन्द—स्वस्थिति के वैभव से वचित नही होना चाहिये।

अशरण भावना :

जीव को मृत्यु के पजे से छुडा कर शरण देने वाला ससार मे कोई

नही है। चाहे कोई चक्रवर्ती राजा भी क्यो न हो, उसकी वहुत वडी सैन्य शक्ति, उसका विशाल खजाना और उसके प्यारे पराक्रमी मित्र तथा बन्धु, कोई भी उसे मृत्यु से शरण नही दे सकते। मृत्यु से वचाव के लिये किसी पर भी भरोसा करना बेसमझी है। किसी विद्वान् का कथन है

भगीरथाद्याः सगरः ककुत्स्थो, दशाननो राघवलक्ष्मणौ च।
युधिष्ठिराद्याश्च बभूवुरेते, सत्य क्व याता वत ते नरेन्द्राः॥
शार्ङ्गधर पद्धति, ४००३

अर्थात्—भगीरथ जैसे महान् तपस्वी राजा, राजा सगर, रावण जैसा बलशाली योद्धा, राम-लक्ष्मण जैसे वीर, युद्धिष्ठिर जैसे धर्मपुत्र, पता नही कहा चले गये। सब कालकवलित हो गये, कोई भी उनको शरण नही दे सका।

और भी :

भ्रातः कष्टमहो महान् स नृपतिः सामन्तचक्र च तत्,
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत्ताश्चन्द्रबिम्बाननाः।
उद्रिक्त स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः,
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथ कालाय तस्मै नमः।
वही० ४१६४

अर्थात्—हे भाई! कितने दु.ख की बात है कि वह राजा इतना महान् था कि सदा माण्डलिक राजाओ के मण्डल से घिरा रहता था! उसकी सभा मे कितने उच्च कोटि के विद्वान् और चतुर सभासद् थे! चन्द्रमुखी रानियो का, जो उसके रणवास को अलकृत करती थी, सौन्दर्य तो अनुपम ही था! कितने गर्वीले राजपुत्रो का समूह उसके आस-पास बैठा रहता था! उसके स्तुति करने वाले भाट-चारण भी कितने प्रतिभाशाली थे! किन्तु आज जिसकी शक्ति के कारण उस राजा की केवल मात्र स्मृति ही बाकी वच गई है, मै उस काल-देवता को नमस्कार करता हू।

जैन शास्त्रो मे काल की इस अवश्यभावी परवशता को ही अशरण भावना कहा है।

३. ससार भावना ससार की वास्तविकता क्या है? इसमे

अवास्तविकता क्या हे ? इस प्रकार की चिन्तनधारा 'ससार-भावना' के अन्तर्गत आती हे। ससार मे वडे से वडे सम्पत्तिशाली, राज्याधिकारी और राज्य कर्मचारियो से लेकर राजा और अकिचन तक सव दुखी है, कारण चाहे कुछ भी हो। किसी के मन मे शान्ति नही है, यह वास्तविकता हे। सव जन्म मरण के जाल मे फसे हुए है, यह भी सत्य है। इस भव मे जो अपना हे, वह पर भव मे पराया वन जाता है। इससे स्पष्ट हे कि अपने-पराये की वुद्धि मात्र कल्पना है, वास्तविकता नही है। वास्तविकता यह है कि इस ससार मे न कोई अपना है और न कोई पराया है।

४ एकत्व भावना मोह-जाल मे फसा हुआ जीव अपने सगे सम्वन्धियो के लिये, मित्रो के लिये और अन्य अनेक प्रिय परिजनो के लिये अनेक प्रकार के कष्टो को सहनकर धनार्जन करता है, अनेक पाप कर्म करके तरह-तरह के कर्म-वन्ध करता है। वह यह कभी नही सोचता कि जव इनके विपाक का समय आयेगा, उस समय इनके फल को तुम्हे अकेले ही भोगना पडेगा। उस समय उनमे से कोई भी, जिनके लिये तू परेशान हो रहा है, तुम्हारे पास कर्म फल वाटने के लिये आने वाला नही है। जीव ने जव जन्म लिया था तो वह अकेला ही ससार मे आया था और जव उसकी मृत्यु होगी तो वह अकेला ही ससार से चला जायेगा। उसका प्यारा से प्यारा भी कोई प्राणी उसके साथ नही जायेगा। केवलमात्र उसके कर्म ही उसके साथ जायेगे। भर्तृहरि ने ठीक ही तो कहा है

धनानि भूमौ, पशवश्च गोष्ठे, भार्या गृहद्वारि, जनः श्मशाने।
देहश्चितायां, परलोकमार्गे—कर्मानुगो गच्छति जीव एक॰ ॥
भर्तृहरि, ३।३५

अर्थात्—मनुष्य के पास जितनी भी धन दौलत है सब पृथ्वी पर ही रह जाती है, पशुधन गौशाला मे खडा रह जाता है, पत्नी घर के दरवाजे पर खडी देखती रह जाती है, जन-समूह श्मशान घाट पर खडा देखता रहता है और मृतक शरीर को चिता पर रख दिया जाता है। परलोक के मार्ग पर कोई साथ नही जाता है। उस समय तो जीव को अकेले ही जाना पडता है। केवलमात्र जो कर्म उसने पूर्व भव मे और इस भव मे किये होते हैं, वे ही उसके साथ जाते हे। इसप्रकार

की चिन्तन-धारा को श्रामणी भापा मे 'एकत्व भावना' के नाम से पुकारा जाता है।

५. अन्यत्व भ.वना : अज्ञानान्धकार से घिरा हुआ जीव यह समझने लगता है कि जो ससार है वही वह है। यह अज्ञानवश ससार से अपनी एकरूपता स्थापित कर लेता है और स्वय की वास्तविकता को भूल जाता है। वास्तविकता यह है कि ससार के पदार्थ कुछ और है और वह उनसे सर्वथा भिन्न कुछ और है, और वह जिस वाहन को चला रहा है वह उससे सर्वथा भिन्न पदार्थ है। यदि चालक यह समझने लगे कि वह वाहन ही है या दूसरे शब्दो मे उससे एकरूपता स्थापित कर ले और अपने अस्तित्व की वास्तविकता को भूल जाये तो वह चेतन होता हुआ जड मे प्रवृत्ति के कारण जडता की ओर वढेगा, उसकी बुद्धि जड हो जायेगी और जिसका परिणाम होगा वाहन की दुर्घटना। इस दुर्घटना मे वाहन तो चकनाचूर होगा ही साथ-साथ वह भी मृत्यु का शिकार बन जायेगा। इसी प्रकार चेतन-जीव, जो शरीर रूपी गाडी को चलाता है, यदि भ्रान्तिवश या अज्ञानवश यह समझने लगेगा कि वह शरीर ही है, शरीर से भिन्न उसकी कोई सत्ता नही है तो वह अपने शरीर को तो दुर्घटनाग्रस्त करेगा ही और साथ-साथ स्वय भी अनन्तकाल तक जन्म-मरण के चक्कर मे पडा हुआ अनेक प्रकार के नारकीय क्लेश भोगता रहेगा। क्लेश भोगना कभी भी जीव को रुचिकर नही है और यही कारण है कि कोई भी ससार का प्राणी दु ख नही चाहता, सुख का अभिलाषी है। दु ख दुष्कर्मो का परिणाम है और दुष्कर्म अज्ञान और मिथ्याज्ञान का परिणाम है। अज्ञान और मिथ्याज्ञान की निवृत्ति तभी हो सकती है जब जीव अपने चेतनत्व को ससार के सब पदार्थो से भिन्न समझे। इस भिन्नता का या अन्यत्व का पुन पुन जीव द्वारा चिन्तन करना ही अन्यत्व की भावना है।

६. अशुचि भावना : मानव मन मे स्वाभाविकी काम-प्रवृत्ति को रोकने के लिये इन्द्रियो पर विजय पाने के लिये, ज्ञान-विपयक एकाग्रता को स्थिर रखने के लिये, ससार के मनोहर एव प्रलोभनीय विषयो से मन को मोडने के लिये, कुमार्ग के कुत्सित गर्त मे गिरने से जीव को वचाने के लिये, आत्म-कल्याण निमित्त वीतरागता की अभिवृद्धि के लिये, परमार्थ ज्ञान के सचय की समृद्धि के लिये, नि श्रेयस्-प्रशस्त-

पथ पर विना किसी रुकावट के अवाध गति से चलने के लिये, जीव की अज्ञानजन्य भावना को अभिभूत करने के लिये, जीव की प्रच्छन्न मानसिक दुर्वलता को शक्ति प्रदान करने के लिये और जीव को आध्यात्मिकता के उच्च धरातल पर पहुचाने के लिये ससार के प्राय. सभी धर्म-गुरुओ ने और धर्म विधि-विधान के विशेपज्ञ आचार्यो ने अज्ञान-वश पापाचरण के आधारभूत इस मानव कलेवर की निन्दा की है। किसी विद्वान् ने उक्त सत्य की पुष्टि करते हुए कहा है

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिन ।
शरीरकस्यापि कृते मूढा पापानि कुर्वते ॥

नागानन्दम्, ४।७

अर्थात्—सव प्रकार की अपवित्रता के घर, किये उपकार को न जानने वाले, नाशवान् इस शरीर के लिये ससार के मूर्ख लोग वडे-वडे पाप किया करते है।

इस प्रकार की भावना से मानव-मन मे जो शरीर के प्रति मोह है वह नष्ट हो जाता है एव जिसके परिणामस्वरूप वैराग्य की ओर प्रवृत्ति वढती है। इसी का नाम अशुचि-भावना है।

७ **आस्रव भावना** 'आस्रव' शब्द जैन धर्म ग्रन्थो का पारिभाषिक शब्द है। समवायाग सूत्र के पाचवे समवाय के अनुसार आत्मा मे कर्मों के अनुसार और उनके आने के कारण को आस्रव नाम से पुकारा जाता है। मन, वचन और काय की सभी प्रवृत्तिया, जिनके द्वारा कर्म आत्मा की ओर आकर्षित होते रहते है, आस्रव है। जब तक उनका भलीभाति ज्ञान न हो जाये तब तक उनका निरोध सभव नही है। आस्रव ही वास्तव मे जीव के कर्मबन्धन का कारण होता है। दूसरे शब्दो मे आस्रव को आत्मा की नगरी मे प्रविष्ट होने के लिये प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। साधना के पथ पर अग्रसर होने वाले मुमुक्षु जीव के लिये यह परमावश्यक है कि उसे उन सभी प्रवृत्तियो का ज्ञान हो जिनके कारण से कर्म आत्मा मे प्रवेश पाते है। आस्रव को जन्म देने वाली जीव की वृत्तिया और प्रवृत्तिया इतनी अधिक है कि उनकी गणना करना सभव नही है। तो भी साधको की और जिज्ञासुओ की सुविधा के लिये जैनाचार्यो ने मूलरूप मे उनकी सख्या पाच बताई है -

१—मिथ्यात्व—विपरीत श्रद्धा रखना।

२—अविरति—अहिसा, सत्य आदि से।

३—प्रमाद—उपादेय अनुष्ठान मे अनादर की भावना।

४—कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ।

५—योग—मन, वचन और काया का व्यापार।

उक्त वृत्तिया और प्रवृत्तिया दु ख को जन्म देने वाली है। राग द्वेष, अज्ञान, मोह, हिसा, असत्य, असन्तोप, प्रमाद, कपाय—आदि किस प्रकार आत्मा को कर्मों से लिप्त, कलुषित और दूपित कर देते है—इस प्रकार के चिन्तन को 'आस्रव भावना' कहते है।

८. सवर भावना साधक मुनि जब कर्मों के आस्रव के कारणों को भलीभान्ति पहचान लेता है तो वह उनसे छुटकारा पाने के लिये उनसे विपरीत वृत्तियो का सहारा लेता है। ऐमा करने से आस्रव का निरोध हो जाता है। इस आस्रव के निरोध को ही सवर कहते है। आगम के शब्दो मे

पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे
असबलचरित्ते ।

उत्तराध्ययन, २९।११

विपरीत वृत्तियो का अवलम्बन साधक की इस प्रकार सहायता करता है कि जब साधक यथार्थ मे श्रद्धानिष्ठ बन जाता है तो मिथ्यात्वजन्य आस्रव का निरोध हो जाता है। जब वह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाचो महाव्रतो का आचरण करने लगता है तो अविरतिजन्य आस्रव रुक जाता है। शास्त्रविहित अप्रमत्त अवस्था की व्यवस्था स्वीकार करने से प्रमाद-जन्य आस्रव निरुद्ध हो जाता है। वीतरागता की उच्च भूमि पर आरूढ होने से कषायो—क्रोध, मान, माया, और लोभ से उत्पन्न होने वाला आस्रव रुक जाता है और जब पूर्ण आत्मनिष्ठा की उपलब्धि हो जाती है तो योगजन्य आस्रव का निरोध स्वत हो जाता है।

इसके अतिरिक्त मन, वचन और काय की सभी प्रकार की अप्रशस्त क्रियाओ को रोकने से, विवेकपूर्ण प्रवृत्ति के पालन से, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि धर्म के दशलक्षणो को जीवन मे उतारने से, अन्त करण मे सच्ची वीतरागता की भावना के जागृत करने से और

पथ पर बिना किसी रुकावट के अवाध गति से चलने के लिये, जीव की अज्ञानजन्य भावना को अभिभूत करने के लिये, जीव की प्रच्छन्न मानसिक दुर्बलता को शक्ति प्रदान करने के लिये और जीव को आध्यात्मिकता के उच्च धरातल पर पहुचाने के लिये ससार के प्राय. सभी धर्म-गुरुओ ने और धर्म विधि-विधान के विशेषज्ञ आचार्यो ने अज्ञान-वश पापाचरण के आधारभूत इस मानव कलेवर की निन्दा की है। किसी विद्वान् ने उक्त सत्य की पुष्टि करते हुए कहा है

सर्वाशुचिनिधानस्य कृतघ्नस्य विनाशिन ।
शरीरकस्यापि कृते मूढा पापानि कुर्वते ॥

नागानन्दम्, ४।७

अर्थात्—सब प्रकार की अपवित्रता के घर, किये उपकार को न जानने वाले, नाशवान् इस शरीर के लिये ससार के मूर्ख लोग बडे-बडे पाप किया करते है।

इस प्रकार की भावना से मानव-मन मे जो शरीर के प्रति मोह है वह नष्ट हो जाता है एव जिसके परिणामस्वरूप वैराग्य की ओर प्रवृत्ति बढती है। इसी का नाम अशुचि-भावना है।

७. आस्रव भावना 'आस्रव' शब्द जैन धर्म ग्रन्थो का पारिभाषिक शब्द है। समवायाग सूत्र के पाचवे समवाय के अनुसार आत्मा मे कर्मों के अनुसार और उनके आने के कारण को आस्रव नाम से पुकारा जाता है। मन, वचन और काय की सभी प्रवृत्तिया, जिनके द्वारा कर्म आत्मा की ओर आकर्षित होते रहते है, आस्रव है। जब तक उनका भलीभाति ज्ञान न हो जाये तब तक उनका निरोध सभव नही है। आस्रव ही वास्तव मे जीव के कर्मबन्धन का कारण होता है। दूसरे शब्दो मे आस्रव को आत्मा की नगरी मे प्रविष्ट होने के लिये प्रवेश द्वार कहा जा सकता है। साधना के पथ पर अग्रसर होने वाले मुमुक्षु जीव के लिये यह परमावश्यक है कि उसे उन सभी प्रवृत्तियो का ज्ञान हो जिनके कारण से कर्म आत्मा मे प्रवेश पाते है। आस्रव को जन्म देने वाली जीव की वृत्तिया और प्रवृत्तिया इतनी अधिक है कि उनकी गणना करना सभव नही है। तो भी साधको की और जिज्ञासुओ की सुविधा के लिये जैनाचार्यो ने मूलरूप मे उनकी सख्या पाच बताई है

१—मिथ्यात्व—विपरीत श्रद्धा रखना ।
२—अविरति—अहिसा, सत्य आदि से ।
३—प्रमाद—उपादेय अनुष्ठान मे अनादर की भावना ।
४—कषाय—क्रोध, मान, माया, लोभ ।
५—योग—मन, वचन और काया का व्यापार ।

उक्त वृत्तिया और प्रवृत्तिया दु ख को जन्म देने वाली है। राग द्वेष, अज्ञान, मोह, हिसा, असत्य, असन्तोष, प्रमाद, कषाय—आदि किस प्रकार आत्मा को कर्मो से लिप्त, कलुषित और दूषित कर देते है—इस प्रकार के चिन्तन को 'आस्रव भावना' कहते है ।

८. सवर भावना साधक मुनि जब कर्मो के आस्रव के कारणों को भलीभान्ति पहचान लेता है तो वह उनसे छुटकारा पाने के लिये उनसे विपरीत वृत्तियो का सहारा लेता है। ऐसा करने से आस्रव का निरोध हो जाता है । इस आस्रव के निरोध को ही सवर कहते है । आगम के शब्दो मे

पिहियवयछिद्दे पुण जीवे निरुद्धासवे
असबलचरिते ।
उत्तराध्ययन, २९।११

विपरीत वृत्तियो का अवलम्बन साधक की इस प्रकार सहायता करता है कि जब साधक यथार्थ मे श्रद्धानिष्ठ बन जाता है तो मिथ्या-त्वजन्य आस्रव का निरोध हो जाता है। जब वह अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाचो महाव्रतो का आचरण करने लगता है तो अविरतिजन्य आस्रव रुक जाता है । शास्त्रविहित अप्रमत्त अवस्था की व्यवस्था स्वीकार करने से प्रमाद-जन्य आस्रव निरुद्ध हो जाता है। वीतरागता की उच्च भूमि पर आरूढ होने से कषायो—क्रोध, मान, माया, और लोभ से उत्पन्न होने वाला आस्रव रुक जाता है और जब पूर्ण आत्मनिष्ठा की उपलब्धि हो जाती है तो योगजन्य आस्रव का निरोध स्वत हो जाता है ।

इसके अतिरिक्त मन, वचन और काय की सभी प्रकार की अप्रशस्त क्रियाओ को रोकने से, विवेकपूर्ण प्रवृत्ति के पालन से, क्षमा, मार्दव, आर्जव आदि धर्म के दशलक्षणो को जीवन मे उतारने से, अन्त करण मे सच्ची वीतरागता की भावना के जागृत करने से और

सम्यक् चरित्र का आचरण करने से भी कर्मास्रव का निरोध हो जाता है।

चाहे कोई कितना ही उच्च कोटि का साधक क्यो न हो, योग क्रिया का पूर्ण रूपेण निरोध करना उसके लिये भी सभव नही है। चलना-फिरना, उठना-बैठना, खाना-पीना, वार्तालाप करना, पढना-पढाना, प्रवचन देना आदि-आदि सभी क्रियाए साधक के लिये भी अनिवार्य है। जैन धर्म इन सब क्रियाओ का निषेध नही करता किन्तु उसका केवल यह कहना है कि इन क्रियाओ के पीछे यदि अविवेक काम करता है तो ये सब क्रियाए आस्रव है किन्तु यदि इनके पीछे विवेक हो तो ये सब क्रियाए सवर है।

कर्मबन्ध के कारणो के निरोध के इस चिन्तन को 'सवर भावना' कहते है।

६ निर्जरा भावना नवीन आने वाले कर्मों का रुक जाना 'सवर' है किन्तु मात्र सवर से साधक मोक्ष प्राप्त करने मे सफल नही हो सकता। एक नौका का उदाहरण इस भाव को और स्पष्ट कर देगा। किसी नदी मे कोई नौका तैर रही है। उसमे अचानक ही कारणवश छिद्र हो जाए तो उन छिद्रो द्वारा नौका मे पानी का आ जाना आस्रव है, छिद्रो को बन्द करके यदि पानी के आगमन को रोक दिया जाये तो वह सवर है, परन्तु जो पानी नौका मे प्रविष्ट हो चुका है उसे भी तो उलीच कर बाहर फेकना होगा, नौका की एव उसमे बैठे प्राणियो की रक्षा के लिये। यह पानी को वाहर निकाल कर फेक देना ही 'निर्जरा' है। आगमकार इस सत्य की पुष्टि करते हुए कहते है—

जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे।
उस्सिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे॥
उत्तराध्ययन, ३०।५

अर्थात्—वडे जलाशय मे रुके हुए जल का तो उलीचने से या सूर्य की गर्मी से ही शोषण हो सकता है। ठीक इसी प्रकार जो सचित कर्म अवशिष्ट है उनका भी साधक के लिये तपश्चर्या द्वारा क्षय करना होता है। निर्जरा का अर्थ है जर्जरित कर देना अर्थात् पूर्वबद्ध कर्मों को ऐसे ही झाड देना जैसे हम वस्त्र की धूल को झाड देते है।

इस कर्म निर्जरा के आचार्यों ने दो भेद किये है

१—औपक्रमिक निर्जरा।

२—अनौपक्रमिक निर्जरा।

किसी कर्म के परिपाक होने से पहले ही यदि साधक अपनी तपश्चर्या द्वारा उस कर्म को उदय मे लाकर क्षय कर देता है तो वह औपक्रमिक निर्जरा कहलाती है किन्तु यदि नियत अवधि मे कर्म उदय होकर मिट जाते है तो वह अनौपक्रमिक निर्जरा कहलाती है।

साधक सवर द्वारा नवीन कर्मों के आस्रव को रोक देता है और तपश्चर्या द्वारा अर्जित कर्मो का क्षय करके पूर्ण-रूपेण निष्कर्म होकर मोक्षपथ की ओर बढता है। परन्तु यह तपश्चर्या या साधना कोई सरल काम नही है। इसके लिये साधक को ससार के सभी पदार्थों के प्रति, यहा तक कि अपनी देह के प्रति भी पूर्ण अनासक्ति रखनी पडती है। इस अनासक्ति योग के परिणामस्वरूप साधक अविपाक निर्जरा के अमूल्य तत्व की उपलब्धि मे सफल होता है। इस तत्व की शक्ति से वह कोटि-कोटि कर्मो के फल भोगे बिना ही एक क्षण मे नष्ट कर देता है। इस प्रकार से साधक का जीव ससार मे और देह मे रहते हुए ऐसे अलिप्त रहता है—दोनो से—जैसे आग, पानी और कर्दम मे पडा हुआ सोना अपने स्वरूप मे शुद्ध बना रहता है।

इस प्रकार बन्धे हुए कर्मो को किस साधना द्वारा या प्रक्रिया द्वारा नष्ट कर देना—इस प्रकार की चिन्तन धारा को निर्जरा भावना कहा जाता है।

१०. लोक भावना जैन शास्त्रो मे लोक को पुरुपाकार माना गया है। यह लोक धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय एव जीवास्तिकाय—इन छह द्रव्यो का भाजन है। इसका विस्तार चतुर्दश रज्ज्वात्मक है। ऊर्ध्व, मध्य और अध — ये तीन विभाग है इसके। यह आत्मा इस लोक मे अनादिकाल से जन्म-मरण करता आ रहा है। लोक का एक आकाश-प्रदेश जितना भी ऐसा स्थान नही है, जिसमे जीव ने अनतबार जन्म-मरण ग्रहण नहीं किये हो। पुरुपाकार लोक के इस स्वरूप का चिंतन करना लोक भावना है।

११. बोधि दुर्लभ भावना जिसके द्वारा आत्मा ऊर्ध्वगामी बनता

है, समार मे सार क्या है और असार क्या है—इसके विवेक की उपलब्धि जिससे प्राप्त होती है, जिसके प्रभाव से जीवन मोक्ष की प्राप्ति की सामर्थ्य प्राप्त करता है, वह ज्ञान 'बोधिज्ञान' के नाम से अभिव्यक्त किया जाता है। वह बडा ही दुर्लभ माना जाता है। उसकी दुर्लभता का चिन्तन करना 'बोधि-दुर्लभ' भावना है।

१२. धर्म भावना धर्म के स्वरूप का, धर्म की महानता का, धर्म की उत्तमता का, धर्म के प्रशस्त प्रभाव का, धर्म की उपादेयता का, धर्म के शुभ परिणाम का, आत्म कल्याण के लिये धर्म की आराधना का और धर्माचरण से मानव जीवन की सफलता का चिन्तन करना धर्म भावना कहलाती है।

चार भावनाए

जैन मुनि के जीवन को आध्यात्मिकता के उच्च धरातल पर पहुचाने के लिये, इन बारह भावनाओ के अतिरिक्त चार भावनाए और भी है, जिनका विवरण निम्नलिखित है

१—मैत्री भावना,

२—प्रमोद भावना,

३—करुणा भावना, और

४—मध्यस्थ भावना।

१. मैत्री भावना अहिंसा महाव्रत के पालन के लिये यह परमावश्यक है कि साधक के मन मे प्राणी मात्र के प्रति मैत्री की भावना हो। दूसरे प्राणियो के प्रति आत्मीयता की भावना, उनके सुख मे सुखी और दु ख मे दुखी होने की भावना को मैत्री भावना कहते है। इस प्रकार की भावना की अन्त करण मे स्थापना होने के पश्चात् मानव, दूसरे किसी प्राणी को दु ख पहुचाना तो दूर किनार, दूसरे के दु ख को अपना दु ख समझकर व्याकुल हो उठता है और उसको उस कष्ट से मुक्त कराने के लिये कोई प्रयत्न बाकी नही रहता। जीव का भाव जब मैत्री भावना से पावन हो उठता है तो सहसा उसके मन के उद्गार इन शब्दो मे अभिव्यक्त होने लगते है—

मित्ती मे सव्वभूएसु,
वैर मज्झ ण केणई।

अर्थात्—ससार के सभी प्राणियो के प्रति मेरी मित्रता है, मेरा शत्रु तो कोई है ही नही।

इस प्रकार की मैत्री भावना का साधक के अन्त करण मे विकास होने से उसकी आत्मा मे विश्व के प्राणि मात्र के प्रति समता के भाव उत्पन्न हो जाते है। जैसे-जैसे समता का विकास होता जाता है, वैसे-वैसे जीव मे राग-द्वेष के भाव नष्ट होते जाते है। ऐसी स्थिति मे वह आध्यात्मिक ज्ञान की उस उच्च भूमिका पर पहुच जाता है जहा पहुच कर उसे प्राणिमात्र मे आत्मदर्शन होने लगता है। इस स्थिति मे पहुचे हुए साधक या जैनमुनि के अन्त करण मे हिसा की भावना की कल्पना भी नही की जा सकती है। अहिंसा के सिद्धान्त को प्रमुख मानने वाले श्रमण धर्म की और श्रमण कर्म की मैत्री भावना रीढ की हड्डी है।

२. प्रमोद भावना गुणवान् व्यक्तियो को देखकर मन मे प्रसन्नता का अनुभव करना 'प्रमोद भावना' कहलाती है। प्राय लोक मे ऐसा देखा जाता है कि गुणवान् को देखकर गुणवान् ही प्रसन्न होते है। ईर्ष्यालु गुणवानो को देखकर दुखी हो जाते है। किसी विद्वान् का कथन है

मान्या एव हि मान्यानां मान कुर्वन्ति नेतरे।
शम्भुर्बिभर्ति मूर्धेन्दु स्वर्भानुस्तं जिघृक्षति ॥

सु०र०भा०, पृष्ठ ४५, श्लो० १७

अर्थात्—जो स्वय गण्यमान्य है वे ही सम्मानयोग्य गुणिजनो का सम्मान करते है दूसरे नही। भगवान् शिव तो चन्द्रमा को अपने मस्तक पर धारण करते है और राहु उसको पकड कर खा जाना चाहता है।

ससार मे शिव और चन्द्र कम है, राहुओ की सख्या अधिक है। राहु के समान ससार के ईर्ष्यालु जीव दूसरो के यश को, समृद्धि को, और सम्मान को सहन नही कर सकते। किसी कवि के शब्दो मे

परवृद्धिभिराहितव्यथ स्फुटनिर्भिन्नदुराशयोऽधम ।

शिशुपालवधम्, १६।२३

अर्थात्—दूसरो को समृद्ध होते देखकर दुष्टो का हृदय फटने लगता है।

शार्ङ्गधर पद्धति मे पुरुषो की चार प्रकार की विधाओ का निर्देश है

एके सत्पुरुषा परार्थघटका स्वार्थं परित्यज्य ये,
सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृत स्वार्थाविरोधेन ये ।
तेऽमी मानुषराक्षसा परहित स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,
ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे ।।

शाङ्‌र्गधर पद्धति, ४६५

अर्थात्—एक प्रकार के तो वे सत्पुरुष होते है जो अपने स्वार्थ का परित्याग करके दूसरो का भला करते है। दूसरी कोटि के वे सामान्य पुरुष होते है जो दूसरो का भला अपने स्वार्थ की हानि न होने पर ही करते है। तीसरे प्रकार के वे मनुष्य रूपी राक्षस होते है जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरो के हित को हानि पहुचाते है। अपना कोई स्वार्थ सिद्ध न होने पर भी जो दूसरो के हित को हानि पहुचाते है, ऐसे चौथी कोटि के पुरुषो का क्या नाम दिया जाये, यह समझ मे नही आता।

तीसरी और चौथी कोटि के लोगो की ससार मे कोई कमी नही जो दूसरो की सम्पन्नता को देखकर जला करते है और उनको हानि पहुचाना चाहते है। इस प्रकार की ईर्ष्या का सद्भाव साधक के लिये घातक है। उसे इससे मुक्त रखने मे लिये ही प्रमोद की भावना का विधान है। दूसरो को समुन्नत अवस्था मे देखकर साधक को उल्लास से भर जाना चाहिये। जब तक जीव मे ईर्ष्या की भावना का नाश नही हो जाता तब तक उसमे अहिसा आदि महाव्रत टिक नही सकते, इसलिये प्रमोद की भावना का साधक मे होना परमावश्यक है।

३. कारुण्य भावना किसी वेदनाग्रस्त प्राणी को देखकर उसके प्रति अनुकम्पा जागृत होना और उसके दु ख का निवारण करने के लिये भरसक प्रयत्न करना 'करुणा भावना' है। जीव मे इस प्रकार की भावना के सजीव होने के परिणामस्वरूप वह ससार मे किसी भी प्राणी को कष्ट पहुचाना नही चाहेगा। किसी और ने भी यदि किसी को कष्ट पहुचाया हो तो वह उसका निवारण करने का प्रयत्न करेगा। कारुण्य की भावना के प्रभाव से भी अहिसादि महाव्रतो का साधक सरलता से पालन कर सकता है।

४. मध्यस्थ भावना ऐसा व्यक्ति जिससे अपने विचार मेल न खाते हो, जो सत् शिक्षा देने पर भी न समझता हो, जिसको सन्मार्ग पर लाने का प्रयत्न फलीभूत होता दिखाई न दे रहा हो, उसके प्रति

मध्यस्थ भाव रखना—मध्यस्थ भावना है। किसी आचार्य ने इन चारो भावनाओ को बडे ही सुन्दर ढग से एक सूत्र मे इस प्रकार ग्रथित किया है

सत्वेषु मैत्री, गुणिषु प्रमोद,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
मध्यस्थ भाव विपरीत वृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव॥
—आचार्य अमित गति, परमात्म षट्त्रिंशिका,

अर्थात्—हे प्रभो! मैं सदा विश्व के प्राणिमात्र के प्रति मैत्री की भावना, गुणवान् प्राणियो के प्रति मन मे उल्लास, दुःख से पीडित जीवो के प्रति अनुकम्पा की भावना, अपने से विपरीत आचरण करने वाले के प्रति मध्यस्थ भावना, रखता रहूं।

दशविधधर्म विवरण

अपने ही विविध कर्मो के आवरण के कारण आत्मा जन्म-मृत्यु के चक्र मे पडकर अनेक प्रकार के दुःख भोगता रहता है। यह चक्र तब तक चलता रहता है जब तक वह अपने शुद्ध स्वरूप को जान नही लेता, पहचान नही लेता। वास्तव मे जन्म लेना और मरना आत्मा का स्वभाव नही है। वह तो अमर-तत्व है। मरना उसकी प्रकृति और प्रवृत्ति से सर्वथा विपरीत है। यही कारण है कि वह मरना नही चाहता, मृत्यु से भयभीत हो जाता है। वह तो सदा जीना चाहता है, जो इस शरीर द्वारा सभव नही है। जो शरीर स्वय नाशवान् है वह आत्मा को अमरता कैसे प्रदान कर सकता है? मानवात्मा विश्व के अन्य योनियो मे उत्पन्न होने वाले जीव-जन्तुओ के समान अप्रबुद्ध नही है। वह विवेकशील प्राणी है, उसका विवेक समय-समय पर जागृत होता रहता है। उस विवेक के कारण वह वर्तमान की परिस्थितियो की चिन्ता तो करता ही है किन्तु साथ-साथ भविष्य के जीवन की चिन्ता भी उसके मानस पटल पर अकित होती रहती है। वह भलीभाति जानता है कि उसका शरीर नाशवान् है, वह उसमे रहता हुआ अमर नही बन सकता। यह जानते हुए भी वह अमरत्व की भावना को छोड नही सकता। छोडे कैसे, अमरता उसका वास्तविक स्वरूप जो ठहरा। अज्ञान के आवरण के कारण वह अमरता का सही मार्ग न पाकर अमर होने के सासारिक मार्ग अपनाता है।

कभी वह असख्य धनराशि खर्च करके अपने नाम से स्मारक खडे करके अमर होने का प्रयत्न करता है, कभी वह तीर्थो पर विशाल धर्मशालाए बनवाकर अपने नाम पर अमरता की छाप लगाने का प्रयास करता है, कभी वह विशाल मन्दिरो का निर्माण करके अपने नाम को रोशन करता हुआ अमर बनना चाहता है, कभी भिखारियो मे अन्न वस्त्र बाटकर अपने नाम के पूर्व दानवीर की उपाधि लगाकर अमर बनने की भावना व्यक्त करता है। कभी नई-नई शिक्षण सस्थाए और चिकित्सालय खोलकर अमर बनने की तृष्णा की पूर्ति करना चाहता है और कभी अनेक तीर्थो मे गोते लगाकर और यह कल्पना कर कि उसके सारे पाप धुल गये है, अमर लोक पहुचने का प्रमाण-पत्र पाकर अमरता की इच्छा रखता है। यद्यपि उक्त सासारिक साधनो द्वारा वह अमरता प्राप्त नही कर सकता किन्तु जीव मे जो अमरत्व का बीज है उसकी अभिव्यक्ति उसके प्रयत्न मे स्पष्ट परिलक्षित होती है। अज्ञानवश जीव देख नही पाता कि वास्तव मे उसे अमरत्व प्रदान करने की शक्ति कही बाह्य जगत मे नही है, वह तो उसके अन्दर ही विद्यमान है। अमरत्व प्रदान करने की शक्ति तो कर्म मे है जिसका करने वाला वह स्वय है। जैन शास्त्रो मे दश प्रकार के धर्मो का विधान किया है जिनके निष्पादन से आत्मा अमरता की सोपान पर आरूढ हो सकता है। जैन मुनि के लिये इन धर्मो का पालन नितातावश्यक माना गया है।

१. क्षमाधर्म : अहिसा महाव्रत का 'क्षमा' को एक अग ही मानना चाहिये। अपराधी के अपराध को क्षमा करने से और अपने अपराध के लिये क्षमा याचना करने से आत्मा विकारहीन एव पावन बनता है। जैन मुनि को तो क्षमा धर्म का पालन बडी दृढता से करना पडता है। उसके लिए तो आगम का विधान है कि यदि उससे कोई अपराध हो जाये तो वह अपने सब काम छोडकर उस व्यक्ति से क्षमा याचना करे जिसका उसने अपराध किया हो। आहार, शौच, स्वाध्याय सभी छोडकर उसे सर्वप्रथम क्षमा मागनी चाहिये। तीर्थंकरो और आचार्यो के इस कठिन विधान के परिणामस्वरूप ही केवल साधुओ मे नही किन्तु श्रावको मे भी क्षमा मागने की परिपाटी चिरकाल से अबाध-गति से चली आ रही है। श्रमण धर्म का सबसे बडा पर्व 'पर्यूषण'

के नाम से प्रसिद्ध है। इसमे साधु और श्रावक दोनो विश्व के प्राणि-मात्र से ज्ञात और अज्ञात रूप मे किये गये अपराध के लिये क्षमा-याचना करते है। जो व्यक्ति किये गये अपराध के लिये क्षमा प्रार्थना करता है, उसका अर्थ है कि वह अपराधजन्य पाप या दोप के कालुष्य को भलीभाति जानता है। उसका यह कालुष्य ज्ञान उसको निश्चित रूप से आगे के लिए अपराध करने को रोकेगा। जिसके फलस्वरूप वह जीवन की उस उच्च अवस्था मे पहुच जायेगा, जहा पहुच कर वह सर्वथा अपराध करने की प्रवृत्ति से मुक्ति प्राप्त कर लेगा। अपराध की निवृत्ति से मोक्ष का मार्ग सुगम हो जायेगा।

२. मार्दव धर्म : हृदय के कोमल एव नम्रतापूर्ण व्यवहार को मार्दव धर्म कहते है। विनय मार्दव की आधार शिला हे। जैन धर्म को विनय मूलक ही माना गया हें

धम्मस्स विणओ मूलं।

अर्थात्—धर्म का मूल विनय की भावना है। इस मार्दव धर्म की साधना के लिये जैन साधु के लिये यह शास्त्र मे विधान है कि वह जाति, कुल, धन, ऐश्वर्य, बुद्धि, बल,अधिकार आदि सभी प्रकार के मदो का त्याग करे। इनका मद अपने से छोटो के प्रति हीनता की भावना को जन्म देता है। हीनता की दृष्टि से समता की भावना नष्ट होने लगती है, जो साधु की साधना के लिये बडी घातक है। अतएव जैन मुनि को चाहिये कि वह सब प्रकार के मदो का त्याग करके मार्दव धर्म का आचरण करे।

३. आर्जव धर्म आर्जव का अर्थ है 'ऋजुता—सरलता की भावना।' आर्जव का विपरीतार्थक शब्द है कुटिलता। जहा कुटिलता रहेगी वहा आर्जव धर्म नही रह सकता। छल, कपट, प्रपच और पाखण्ड—ये सब कुटिलता की सन्तान है। आर्जव धर्म की साधना के लिये कुटिलता तथा उसके सारे परिवार का जैन साधक को त्याग करना होता है। ससार के दैनिक जीवन के लिये तो आर्जव धर्म उपा-देय है ही किन्तु धार्मिक जीवन के लिये तो इसका महत्व और भी अधिक है। आर्जव धर्म को अन्त करण मे उतारने से मानव की बुद्धि निर्मल होती है। बुद्धि की यह निर्मलता ही सत्य को ग्रहण करने मे समर्थ होती है। साधक सत्य का उपासक है, इसलिये आर्जव धर्म का

पालन करना उसके लिये नितान्तावश्यक है ।

४. शौच धर्म : जैन मुनि के लिये लोभ का त्याग करना भी परमावश्यक है । इस लोभ के त्याग का ही दूसरा नाम शौच धर्म है । तुच्छ से तुच्छ वस्तु का लोभ भी उसे त्याग देना चाहिये । लोभ करने से सद्‌गुणो की हानि होती है, इस कारण मुनि के लिये यह आवश्यक है कि वह शौच धर्म का पालन करे ।

५. सत्य धर्म सत्य की गणना तो पाच महाव्रतो मे की जा चुकी है फिर भी दशविध धर्मो मे सत्य की गणना सत्य की महानता को और विशिष्टता को प्रकट करती है । सत्य वास्तव मे महान् है और यही कारण है कि जैन शास्त्रो मे सत्य की महिमा का बडा बखान है । यहा तक कि सत्य को साक्षात् भगवान् कहा है—

त सच्च भगवं ।

प्रश्न व्याकरण, २।२

सत्य को ससार का सारभूत तत्व माना है ।

वही०

सत्य को महासागर से भी गभीर कहा है, मेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर रहने वाला वताया है, चन्द्र मण्डल से भी अधिक सौम्य कहा है, सूर्य मण्डल से भी अधिक तेजस्वी माना है, शरत् कालीन आकाश से भी अधिक निर्मल कहा है और गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सौरभमय बताया है ।

६ सयम धर्म मानसिक दुष्प्रवृत्तियो पर, अशुभ कामनाओ पर और प्रलोभनीय ससार के विपयो की ओर आकर्षित होने वाली इन्द्रियो पर अकुश रखने को सयम धर्म कहते है । सयम की महानता का भी शास्त्रो मे बडा वर्णन मिलता है ।

सूयगड़ांग सूत्र के अनुसार ·
जहा कुम्मे सअंगाइ , सए देहे समाहरे ।
एव पावाइं मेहावी, अज्झप्पेण समाहरे ।।

सूत्रकृताग, १।८।१६

अर्थात्—कछुआ जिस प्रकार अपने अगो को अन्दर मे समेट कर खतरे से वाहर हो जाता है, वैसे ही साधक भी अध्यात्मयोग के द्वारा

अन्तर्मुख होकर अपने को पापवृत्तियो से सुरक्षित रखे ।

और भी .

जाउ अस्साविणी नावा, न सा पारस्स गामिणी ।
जा निरस्साविणी नावा, सा उ पारस्स गामिणी ।।

उत्तराध्ययन, २३।७१

अर्थात्—जिस नौका मे छिद्र है वह नदी के पार नही पहुच सकती किन्तु जो नौका छिद्रो से रहित है वही पार पहुच सकती है । असयम छिद्र है, उन छिद्रो को रोक देना सयम है । साराश यह है कि सयमी आत्मा ही ससार रूपी नदी को पार कर सकता है ।

इस सयम को चार प्रकार का माना है

चउव्विहे संजमे—
मणसंजमे, वइसंजमे, कायसंजमे,
उवगरणसंजमे ।

स्थानांगसूत्र, ४।२

अर्थात्—मन का सयम, वाणी का सयम, शरीर का सयम और उपकरण-सामग्री का सयम, ये चार प्रकार के सयम होते है ।

इन चारो प्रकार के सयमो का पालन करना सयमधर्म कहलाता है, जिसका पालन करना प्रत्येक जैन साधु का परम कर्तव्य है । जैन धर्म के अनुसार कामनाए आकाश के समान अनन्त है, जिसने भी इन पर नियन्त्रण कर लिया, उसने समझो अपने सब दुखो का अन्त कर दिया ।

७ तप धर्म तप धर्म की गणना अहिसा और सयम के साथ की गई है और इसे भी अहिंसा और सयम के समान उत्कृष्ट धर्म कहा है और यह भी कहा गया है कि तप धर्म का पालन करने वाले को तो देवता भी नमस्कार करते है । तप के द्वारा ही साधक अपने कर्मो का क्षय करके मोक्षपथगामी बनता है । तप को जैनागमो मे उस अग्नि का रूप दिया है जिसमे जलकर कर्म भस्म हो जाते है

तवो जोई जीवो जोई ठाण, जोगा सुया सरीर कारिसग ।
कम्मेहा सजमजोगसती, होमं हुणामि इसिण पसत्थ ।।

उत्तराध्ययन, १२।४४

अर्थात्—तप ज्योति-अग्नि है। जीव ज्योति-स्थान है। मन, वचन और काया के योग सुवा—आहुति देने की कडछी है। शरीर कारीपाग-अग्नि प्रज्वलित करने का साधन है। धर्म जलाया जाने वाला ईधन है। सयमयोग शान्तिपाठ है। मै इस प्रकार का यज्ञ-होम करता हू, जिसे ऋषियो ने श्रेष्ठ बताया है।

और शास्त्र मे यह भी कहा है

भवकोड़ी—संचयं कम्मं तवसा निज्जरिज्झई।

वही, ३०।६

अर्थात्—करोडो भवो के किये हुए कर्म भी तप की अग्नि से नष्ट हो जाते है।

तप का मूल धैर्य है

तवस्स मूलं धिती।

निशीथचूर्णि, ८४

मुनि को चाहिये कि वह अपने कर्मो की निर्जरा के लिये तपश्चर्या के समय अनेक विघ्नबाधाओ के आने पर भी अपने मन की धैर्य शक्ति को न खोए और अपनी दृढता और स्थिरता बनाये रखे।

भारत की कतिपय सस्कृतियो मे आत्म-कल्याण के लिये बाह्य तपश्चर्या के प्रकारो पर अधिक बल दिया जाता है। ग्रीष्म ऋतु मे चारो ओर अग्नि जलाकर बीच के रिक्त स्थान मे बैठ जाना, हेमन्त ऋतु मे जल मे खडे हो जाना, काटो पर लेट जाना, धूनी तपना, एक पैर के बल पर खडा होजाना आदि आदि अनेक प्रकार से काया को क्लेश देकर आत्मोद्धार की साधना की जाती है। इन तपश्चर्या की बाह्य क्रियाओ मे आत्मा के गुण-दोषो से विशेष सम्बन्ध नही है। जैन सस्कृति मे तो उसी तो तप माना है जिससे आत्मा के गुणो का पोषण होता हो। जैन ग्रन्थो मे तप को दो भागो मे बाटा है बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। एकाशना, बेला, तेला आदि उपवास करना और अधिक प्रिय रसो का या कुछ वस्तुओ के प्रयोग का सदा के लिये त्याग कर देना आदि बाह्य तप है और स्वीकृत अपराधो के लिये क्षमा-याचना और पश्चात्ताप, गुरुजनो के प्रति विनय और सेवा की भावना, स्वाध्याय और व्युत्सर्ग आभ्यन्तर तप कहलाते है।

८ त्याग धर्म सुख सुविधा की या ऐश्वर्य की जो सामग्री पास नही है उसके लिये लालायित न होना और जो उपलब्ध है उसके प्रति कूटस्थवृत्ति या आसक्ति की भावना न रखना 'त्याग धर्म' कहलाता है।

कर्मक्षय के लिये जैसे तप धर्म की आवश्यकता है वैसे ही त्याग धर्म की भी। शास्त्र का कथन है

णहि णिरवेक्खो चागो,
ण हवदि भिक्खुस्स आसय विसुद्धी।
अविसुद्धस्स हि चित्ते,
कहं णु कम्मक्खओ होदि॥

प्रवचनसार ३।२०

अर्थात्—जब तक निरपेक्ष—आशाप्रत्याशारहित त्याग की भावना उत्पन्न नही हो जाती, तब तक साधक की चित्तशुद्धि कैसे हो सकती है और जब तक चित्त-शुद्धि नही होती तब तक कर्मो का क्षय कैसे सभव हो सकता है ?

जीव के अधिकतर दुखो का कारण आशा है, तृष्णा है और नये-नये विषयो की कामना है। कामनाओ का कोई अन्त नही है। जैसे सागर मे उठने वाली एक लहर सहस्रो लहरो को जन्म देती है, ठीक वैसे ही एक कामना से अनेको कामनाए उत्पन्न होती रहती है। अधिकाधिक पाकर भी जीव सन्तुष्ट नही होता। शास्त्रकार कहते है.

तणकट्ठेहिं व अग्गी, लवणजलो व नईस हस्सेहिं।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं कामभोगेउ॥

आतुरप्रत्याख्यान, ५०

अर्थात्—जिस प्रकार घास से और लकडी से आग कभी तृप्त नही हो सकती और हजारो नदियो के जल से समुद्र तृप्त नही हो सकता, ठीक इसी प्रकार राग मे आसक्त आत्मा सासारिक कामनाओ से और भोगो से कभी तृप्ति नही प्राप्त कर सकता।

जब जीवन मे त्याग की भावना आ जाती है तो मानव अल्प सामग्री से ही सुखी रहता है और सन्तोषमय जीवन व्यतीत कर लेता है परन्तु जब लालसा, लोभ और तृष्णा से अभिभूत होता है तो प्रचुर मात्रा मे भोग सामग्री पाकर भी सन्तुष्ट नही होता, अशान्त रहता है,

अर्थात्—तप ज्योति-अग्नि है। जीव ज्योति-स्थान है। मन, वचन और काया के योग सुवा—आहुति देने की कडछी है। शरीर कारीपाग-अग्नि प्रज्वलित करने का साधन है। धर्म जलाया जाने वाला ईंधन है। सयमयोग शान्तिपाठ है। मै इस प्रकार का यज्ञ-होम करता हू, जिसे ऋषियो ने श्रेष्ठ बताया है।

और शास्त्र मे यह भी कहा है

भवकोड़ी—संचयं कम्म तवसा निज्जरिज्भई।
वही, ३०।६

अर्थात्—करोडो भवो के किये हुए कर्म भी तप की अग्नि से नष्ट हो जाते है।

तप का मूल धैर्य है

तवस्स मूल धिती।
निशीथचूर्णि, ८४

मुनि को चाहिये कि वह अपने कर्मो की निर्जरा के लिये तपश्चर्या के समय अनेक विघ्नबाधाओ के आने पर भी अपने मन की धैर्य शक्ति को न खोए और अपनी दृढता और स्थिरता बनाये रखे।

भारत की कतिपय सस्कृतियो मे आत्म-कल्याण के लिये बाह्य तपश्चर्या के प्रकारो पर अधिक बल दिया जाता है। ग्रीष्म ऋतु मे चारो ओर अग्नि जलाकर बीच के रिक्त स्थान मे बैठ जाना, हेमन्त ऋतु मे जल मे खडे हो जाना, काटो पर लेट जाना, धूनी तपना, एक पैर के बल पर खडा होजाना आदि आदि अनेक प्रकार से काया को क्लेश देकर आत्मोद्धार की साधना की जाती है। इन तपश्चर्या की बाह्य क्रियाओ मे आत्मा के गुण-दोषो से विशेष सम्बन्ध नही है। जैन सस्कृति मे तो उसी तो तप माना है जिससे आत्मा के गुणो का पोषण होता हो। जैन ग्रन्थो मे तप को दो भागो मे बाटा है बाह्य तप और आभ्यन्तर तप। एकाशना, वेला, तेला आदि उपवास करना और अधिक प्रिय रसो का या कुछ वस्तुओ के प्रयोग का सदा के लिये त्याग कर देना आदि बाह्य तप है और स्वीकृत अपराधो के लिये क्षमा-याचना और पश्चात्ताप, गुरुजनो के प्रति विनय और सेवा की भावना, स्वाध्याय और व्युत्सर्ग आभ्यन्तर तप कहलाते है।

८. त्याग धर्म सुख सुविधा की या ऐश्वर्य की जो सामग्री प्राप्त नही है उसके लिये लालायित न होना और जो उपलब्ध है उसके प्रति कूटस्थवृत्ति या आसक्ति की भावना न रखना 'त्याग धर्म' कहलाता है।

कर्मक्षय के लिये जैसे तप धर्म की आवश्यकता है वैसे ही त्याग धर्म की भी। शास्त्र का कथन है

णहि णिरवेक्खो चागो,
ण हवदि भिक्खुस्स आसय विसुद्धी।
अविसुद्धस्स हि चित्ते,
कहं णु कम्मक्खओ होदि ॥

प्रवचनसार ३।२०

अर्थात्—जब तक निरपेक्ष—आशाप्रत्याशारहित त्याग की भावना उत्पन्न नही हो जाती, तब तक साधक की चित्तशुद्धि कैसे हो सकती है और जब तक चित्त-शुद्धि नही होती तब तक कर्मो का क्षय कैसे सभव हो सकता है ?

जीव के अधिकतर दु खो का कारण आशा है, तृष्णा है और नये-नये विषयो की कामना है। कामनाओ का कोई अन्त नही है। जैसे सागर मे उठने वाली एक लहर सहस्रो लहरो को जन्म देती है, ठीक वैसे ही एक कामना से अनेको कामनाए उत्पन्न होती रहती है। अधिकाधिक पाकर भी जीव सन्तुष्ट नही होता। शास्त्रकार कहते है -

तणकट्ठेहिं व अग्गी, लवणजलो व नईस हस्सेहि।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं कामभोगेउ ॥

आतुरप्रत्याख्यान, ५०

अर्थात्—जिस प्रकार घास से और लकडी से आग कभी तृप्त नही हो सकती और हजारो नदियो के जल से समुद्र तृप्त नही हो सकता, ठीक इसी प्रकार राग मे आसक्त आत्मा सासारिक कामनाओ से और भोगो से कभी तृप्ति नही प्राप्त कर सकता।

जब जीवन मे त्याग की भावना आ जाती है तो मानव अल्प सामग्री से ही सुखी रहता है और सन्तोषमय जीवन व्यतीत कर लेता है परन्तु जब लालसा, लोभ और तृष्णा से अभिभूत होता है तो प्रचुर मात्रा मे भोग सामग्री पाकर भी सन्तुष्ट नही होता, अशान्त रहता है,

व्याकुल रहता है और दुखी होता रहता है और अधिक पाने के लिये। वर्तमान युग मे आसक्ति के कारण ही वस्तु-वितरण का सतुलन नही है। सतुलन की विषमता के कारण ही अनेक प्रकार की आर्थिक एव सामाजिक जटिल समस्याए राज्य सरकार एव प्रजा को परेशान कर रही है। यदि त्याग धर्म के महत्व को लोगो ने समझा होता तो इन समस्याओ का बडी सरलता से समाधान हो सकता था।

९. अकिचनता धर्म : अकिचनता को यदि त्याग धर्म का परिणाम कह दे तो अत्युक्ति न होगी। न एक पैसा भी अपने पास रखना, न किसी वस्तु को अपना समझना और न ही किसी पदार्थ पर ममत्व रखना अकिचनता धर्म है। ममत्व दुख का मूल कारण है और निर्ममत्व सुख का। जिस वस्तु के प्रति हमारी ममता है, वह जब खो जायेगी या नष्ट हो जायेगी तो जीव दुख पायेगा और वेदना ग्रस्त हो जायेगा। जिस पर ममता नही है वह बेशक कभी भी नष्ट हो जाये, उसकी चिन्ता कभी नही सताती। इसलिये दुख के मूल कारण ममत्व का साधक को त्याग करना चाहिये। शास्त्र का विधान है

ममत्तबध च महब्भयावह।
उत्तराध्ययन, १९।९८

अर्थात्—ममत्व का वन्धन जीव को महान् भय देने वाला है।

१०. ब्रह्मचर्य धर्म सब प्रकार के काम विकारो से मुक्त होकर अपनी आत्मा मे विचरण करने का नाम ब्रह्मचर्य धर्म है। जैन मुनि के तो मुनित्व का आधार ही ब्रह्मचर्य को माना गया है

स एव भिक्खू जो सुद्ध चरति बभचेरं।
प्रश्न व्याकरण, २।४

अर्थात्—जो शुद्धभाव से ब्रह्मचर्य का पालन करता है, वास्तव मे वही मुनि कहलाने के योग्य है।

साधना पथ के पथिक मुनि चान्दमल जी

ऊपर जो हमने श्रामणी साधना का सक्षेप से विवेचन किया है, उसका उद्देश्य पाठको को सामान्य रूप से जैन सन्त की दैनिक एव सार्वकालिक, धार्मिक एव आध्यात्मिक क्रियाओ का परिचय कराना तो

है ही, साथ-साथ इस बात का ज्ञान कराना भी है कि जैन मुनियों को मोक्ष-मार्ग के प्रशस्त-पथ पर आगे बढने के लिये किन-किन ऊँची-नीची टेढी-मेढी आकस्मिक विघ्नाक्रान्त विषम घाटियो को पार करना होता है। जो अडिग रहते हैं, वे आध्यात्मिकता की उच्च भूमिका पर पहुचने मे समर्थ हो जाते हैं और जो ज्ञान के शस्त्र डाल देते है वे कषाय रूपी शत्रुओ से पराजित होते है। कबीर ने ठीक ही तो कहा है

यह तो घर है प्रेमका, खाला का घर नाहि।
शीश उतारे भुई धरे, तो पैठे घर माहि॥

अर्थात्—यह आध्यात्मिक मार्ग तो प्रेम का घर है (जीव मात्र के प्रति प्रेम अपने प्रति प्रेम)। इसमे तो वही प्रवेश पा सकता है जो अपनी जान की बाजी लगाकर इस पर चलता है। यह कोई मौसी का घर नही है। मौसी के घर जैसे स्वागत सत्कार का आनन्द मिलता है, वैसा यहा मिलने वाला नही है। साराश कि यह सरल मार्ग नही है। यह तो त्याग, तपस्या और तपश्चर्या का मार्ग है।

महाव्रत-पालन

मुनि चान्दमल जी महाराज, कर्मक्षय की आधार शिला पर आधारित, श्रमण सस्कृति के परम पावन सिद्धान्त द्वारा प्रतिपादित और प्राणिमात्र के कल्याण हित निर्धारित मोक्ष पथ पर उतर कर कभी डगमगाये नही, घबराये नही और ससार के बाह्य प्रलोभनो मे आये नही। उन्होने जिस प्रशस्त आध्यात्मिक मार्ग को दीक्षा के समय अगीकार किया था उसका अन्त तक मन से, वाणी से और कर्म से निर्वाह किया। आजीवन त्रस और स्थावर सभी प्रकार के जीवो की हिंसा तन से, मन से और काय से न करने का, न कराने का और न अनुमोदन करने का जो प्रथम अहिसा महाव्रत अगीकार किया था उसका उन्होने शास्त्रो के सूक्ष्म अहिंसा के नियमो के अनुसार पालन किया।

सत्य महाव्रत के पालन मे भी उन्होने कोई प्रयत्न बाकी नही रखा। मन, वाणी और कर्म से वे सदा सत्य का आचरण करते रहे। वे सत्य को भगवान् मानकर ही उस पर आचरण करते थे। मधुर भाषी तो वे स्वभाव से ही थे। वे सदा परिमित, हितकर और निर्दोष

भाषा का प्रयोग करते थे। उन्होने भूलकर भी कभी ऐसे असत्य शब्दो का प्रयोग नही किया जिनसे हिसा को किसी भी प्रकार से प्रोत्साहन मिलता हो। इस प्रकार सत्य महाव्रत के पालन मे भी उनके जीवन मे कोई त्रुटि नही आई।

साधु के लिये विहित आचार सहिता के अनुसार ही वे किसी वस्तु की आवश्यकता होने पर उसके स्वामी की आज्ञा लेकर ग्रहण करते थे। यहा तक कि अपने साधु के भी किसी उपकरण की आवश्यकता उनको होती थी तो उससे पूछकर लेते थे। कही तीसरे महाव्रत का गफलत मे भी भग न हो जाये इसके लिये सर्वदा सचेत रहते थे। इस प्रकार अचौर्य महाव्रत का पालन भी मुनि चान्दमल जी ने बडी लग्न से किया था।

ब्रह्मचर्य महाव्रत की तो वे साक्षात् प्रतिमा थे। आत्मा मे आचरण करना ध्यान योग द्वारा, चिन्तन-मनन द्वारा और माला द्वारा उनकी दैनिक अनुल्लघनीय चर्या थी। ब्रह्मचर्य के जिन अतिकठोर नियमो का शास्त्र मे विधान है, उन सवका उन्होने तन, मन और काय से पालन किया। ब्रह्मचर्य का तेज, झलक और प्रकाश उनके चेहरे पर दमकता था, चमकता था और झलकता था। यह तेज उत्तेजक नही था किन्तु परम शान्ति की कान्ति लिये हुए था। 'सब तपो मे ब्रह्मचर्य उत्तम तप है।' उन्होने इस शास्त्र वचन के रहस्य को भलीभान्ति समझ कर उसे जीवन मे उतारा था। शास्त्र का यह कथन कि ब्रह्मचर्य वडा ही दुष्कर व्रत है' इस पर ध्यान न देते हुए उन्होने इसे सुकर बनाकर दिखा दिया था। ब्रह्मचर्य की आराधना करने से उनमे शील, तप और विनय आदि सभी गुण आ गये थे। ब्रह्मचर्य का पालन करके उन्होने मुनि के वास्तविक स्वरूप का उदाहरण प्रस्तुत कर दिया था। ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिये जिस विवेकशक्ति की आवश्यकता है, वह उनमे कूटकूट कर भरी हुई थी। इस प्रकार चौथे महाव्रत का पालन करने वाले अग्रगण्य जैन मुनियो मे उनकी गणना होती थी।

अपरिग्रह महाव्रत के पालन का आरभ तो उन्होने उसी समय कर दिया था जव सव प्रकार के धनधान्य से, सम्पत्ति से और पशुधन से परिपूर्ण अपने पीपलिया गाव के घर का परित्याग करके स्वामी जी श्री नथमल जी महाराज के चरणो मे आत्म-कल्याण के निमित्त शरण

ली थी। वे चाहते तो सम्पन्न घर मे रहकर गृहस्थ जीवन के सभी भोगो को भोग सकते थे किन्तु वे तो पूर्वभवो मे अर्जित ऐसे सस्कार लेकर आये थे कि उनको सासारिक विषयो मे कुछ भी आकर्षण दिखाई नही देता था। वे उनको ऐसे ही त्याग कर चले आये थे जैसे साप अपनी केचुली छोडकर चल देता है और फिर पीछे मुड कर नही देखता। मुनि चान्दमल जी महाराज ने भी पीछे मुडकर नहीं देखा। देखते भी कैसे वे तो आध्यात्मिक मार्ग के अग्रगामी जीव थे। वे वास्तव मे वीरप्रभु के उपासक थे। वीर सदा आगे ही बढा करते है, वे पीछे मुडकर नही देखा करते।

समिति पालन

बडी सावधानी से, जीवो की रक्षा निमित्त चार हाथ आगे की भूमि देख के चलकर 'ईर्यासमिति' का , मधुर, सत्य, हितकर और मित भाषा का प्रयोग करके, 'भाषा समिति' का, सदा निर्दोष और शुद्धाहार ग्रहण करके 'एषणा समिति' का, जीव जन्तुओ की हिसा को ध्यान मे रखते हुए, वस्तुओ को उठाने-रखने की सावधानता द्वारा 'आदान निक्षेपण समिति' का, जीवोत्पत्ति के भय से मलमत्र का उपयुक्त स्थान पर विधि पूर्वक विसर्जन करके 'परिष्ठापनिका समिति' का मुनि चान्दमल जी महाराज ने भलीभान्ति पालन करके पाचो समितियो को जीवन मे क्रियान्वित किया था।

त्रिगुप्ति-आचरण

अपने मन को अशुभ, घृणित, निन्दनीय एव कुत्सित सकल्पो से हटाकर 'मनोगुप्ति' का, कटु, कठोर, अहितकर एव असत्य वाणी का प्रयोग न करके 'वचन गुप्ति' का और अपने शरीर को दुष्कर्मो से निवृत्ति करके शुभ कर्मो मे लगाकर एव दैनिक शारीरिक क्रियाओ मे सावधानी रखकर स्वामीजी ने तीनो गुप्तियो का पूर्ण रूपेण पालन किया था।

अनाचीर्ण के त्यागी

जैन साधु के लिये जैन शास्त्रो मे बावन अनाचीर्णो का विधान किया है। 'अनाचीर्ण' पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है—ऐसी क्रियाए जिनका आचरण साधु के लिये वर्जित है। साधु के निमित्त

बने भोजन को ले लेना, सदा एक ही घर से आहार ग्रहण कर लेना— इत्यादि इत्यादि बावन प्रकार की सभी क्रियाओ का मुनि चान्दमल जी महाराज ने कभी आचरण नही किया।

बारह भावनाओं का आत्मसातकरण

१. अनित्य भावना : धर्म की स्थिरता के लिये वीतरागता की अभिवृद्धि के लिये जैन शास्त्रो मे विहित भावनाओ के चिन्तन और मनन मे मुनि चान्दमल जी सदा लीन रहते थे। घर के सुख वैभव का त्याग उन्होने ससार के पदार्थो को अनित्य समझ कर ही किया था। दीक्षा के पश्चात् गुरुमुख से धर्मशास्त्रो का अध्ययन करके तो उनके ज्ञान के चक्षु और भी खुल गये थे। वे भलीभान्ति ससार की नि सारता और उनके विषयो की अनित्यता से परिचित हो गये थे। ससार के अनित्य पदार्थो के लिये नित्यानन्द से वचित हो जाने को वे विवेक की निशानी नही समझते थे।

२, अशरण भावना 'कराल काल के पजे से जीव की कोई रक्षा नहीं कर सकता' इस सत्य का उनको व्यक्तिगत रूप से अनुभव था। उनके पिता और उनकी प्यारी माता का उनकी आखो के समक्ष निधन हो गया था। कोई उनको नही बचा सका था। उनकी उपस्थिति मे उनके माता-पिता के मृतक शरीर दाह के लिये श्मशान भूमि मे पहुचा दिये गये थे और वे सभ्रान्त पथिक की तरह देखते और ममता के कारण रोते रह गये थे। उनका जाना असामयिक था किन्तु काल समय की प्रतीक्षा नही करता। वह मरणशील प्राणी का समय नही देखता, वह तो अपना समय देखता है। जब उनको कोई शरण नही दे सका, उनके जीवन की रक्षा नही कर सका, तो उसको कौन शरण देने वाला है, कौन उनकी रक्षा करने वाला है, इस प्रकार की चिन्तन धारा मे डूबे रहते थे।

३ संसार भावना अपनी पैदल विहार यात्राओ मे उनको अनेक धनिक और निर्धन परिवारो के सम्पर्क मे आने का अवसर मिलता था। उन्होने किसी के मन मे भी शान्ति नही पाई। सब दु खी थे, अपनी-अपनी स्वार्थपूर्ण समस्याओ के कारण। सब पापकर्म बाध रहे थे, अज्ञानता के कारण। परिणामस्वरूप अपने जन्म-मरण के चक्र की नीव पक्की कर रहे थे। यहा कौन किसकी चिन्ता करे। जो इस भव

मे अपना है वही आगामी भव मे पराया हो जाता है, अतएव जीव का कोई अपना-पराया नही है,' ऐसी चिन्तन धारा मे मग्न रहते हुए वे ससार का चिन्तन किया करते थे।

४. एकत्व भावना · मुनि चान्दमल जी महाराज को यह अच्छी प्रकार तत्वज्ञान हो गया था कि जीव अकेला ही ससार मे आता है और अकेला ही यहा से प्रस्थान कर जाता है। वह अपने अर्जित कर्मो का फल भी अकेले ही भोगता है। इसके लिये शास्त्रो का ज्ञान और गुरु का ज्ञान तो आधार था ही किन्तु उसके अतिरिक्त उन्हे स्वानुभूति भी थी। वे दैनिक जीवन मे देखा करते थे कि न तो ससार मे कोई किसी के दुःख बाट ही सकता है और न ही मृत्यु के समय कोई किसी के साथ ही जाता है। इस प्रकार के विचार के चिन्तन की भी उन्होने कभी उपेक्षा नही की।

५. अन्यत्व भावना : 'जो ससार के पदार्थ है, वह मै नही हू। पदार्थ अपने स्वरूप मे जड है और मैं अपने स्वरूप मे चेतन हू। जो जड है, वह चेतन कैसे हो सकता है, और जो चेतन है, वह जड कैसे हो सकता है ? दोनो का स्वभाव सर्वथा भिन्न है। फिर जो ससार के पदार्थ है, वह मै कैसे हो सकता हू, मै तो सर्वथा उनसे भिन्न अपनी स्व-प्रकृति मे शुद्ध, बुद्ध और निरजन हू'। इस प्रकार के चिन्तन की आस्था से वे सदा अनुप्राणित थे।

६. अशुचि भावना : 'मेरा यह शरीर मल, मूत्र, रक्त, मज्जा और रोग आदि अनेक अमेध्य और अपवित्र तत्वो से परिपूर्ण है। इसके मोह मे पडकर मैं इसके अन्दर रहने वाले शुद्ध-बुद्ध-तत्व-जीव की क्यो उपेक्षा करू। शरीर की सेवा कर्मबन्ध का कारण है और नारकीय वेदनाओ मे धकेलने वाली है और जीव के जीवत्व का, सफलत्व का और महत्व का चिन्तन, कल्याणकारी है, जन्म-मरण के फन्दे को काटने वाला है। इस लिये मुझे जीव की ही चिन्ता करनी चाहिये, शरीर की नही।'

इस प्रकार के चिन्तन से मुनि चान्दमल जी महाराज ने अपने वैराग्य की नीव को सुदृढ बनाया था।

७. आस्रव भावना मानव जीवन के सभी दुःखो का, क्लेशो का और गभीर कष्टकारिणी समस्याओ का कारण 'कर्मबन्ध' है।

राग, द्वेष, अज्ञान, मोह, असत्य, असन्तोष, प्रमाद, क्रोध, मान, माया, और लोभ किस प्रकार जीव को कलुषित कर देते है—इत्यादि आस्रव की भावना पर स्वामीजी गभीर चिन्तन किया करते थे। केवल चिन्तन मात्र ही नही उनके क्षय की ओर भी अग्रसर हो रहे थे।

८. सवर भावना : जीवन मे दुखो का कारण आस्रव है। आस्रव के कारण ही नव-नव कर्म जीव मे प्रवेश प्राप्त करते है। उसके निरोध करने मे, और कर्मबन्ध के कारणो के निरोध मे स्वामी जी ने अपना सारा जीवन लगा दिया। जीवन मे सवर भावना को क्रियान्वित करना उनके गम्भीर चिन्तन का ही परिणाम था।

९. निर्जरा भावना पूर्वभव मे और इस भव मे अज्ञान दशा मे सचित कर्मो की निर्जरा पर वे चिन्तनशील ही नही थे परन्तु साधु धर्म का बडी कर्मठता से पालन करके वे उन कर्मो की निर्जरा मे भी प्रयत्नशील थे। कर्मो की निर्जरा के लिये कठिनतम से कठिनतम कोई भी जैन मुनि की ऐसी आचार क्रिया नही थी, जिसे उन्होने अपने जीवन मे न उतारा हो।

१०. लोक भावना : लोक के पुरुषाकार रूप का तो वे बडे एकाग्रमन से चिन्तन किया करते थे और कई वार उसके रूप पर आश्चर्य भी प्रकट करते थे। लोक का भी पुरुषाकार रूप कैसे बन गया, यह एक रहस्यात्मक बात है।

११. बोधिदुर्लभ भावना अधोगामी जीव को ऊर्ध्वगामी वनाने वाले, सासारिक सारता और असारता को विवेक प्रदान करने वाले और मोक्ष पथ पर अग्रसर करने वाले बोधि ज्ञान के महत्व से वे भली-भान्ति परिचित थे। 'वह ज्ञान कितना दुर्लभ है' इस पर वे निरन्तर चिन्तन किया करते थे। वोधिदुर्लभ ज्ञान इस कारण दुर्लभ माना जाता है कि उसकी उपलब्धि सरल नही है। वडी तपश्चर्या के पश्चात् ही उसे प्राप्त किया जा सकता है।

१२ धर्म भावना : धर्म के स्वरूप की रूपरेखा तो दीक्षा के समय ही उनके गुरुवर्य स्वामीजी श्री नथमल जी महाराज ने उनके सामने खीच दी थी। तत्पश्चात् शास्त्रो के अध्ययन के परिणामस्वरूप और जीवन मे धर्म के आचरण के कारण उन्होने स्वानुभूति से धर्म के महत्व को समझा था। वे अपने वार्तालाप मे और प्रवचनो मे

सदा धर्म की महिमा का वखान किया करते थे, जो उनके निरन्तर चिन्तन का ही परिणाम था।

तपोनिष्ठ उग्र तपस्वी

मुमुक्षु साधक के लिये मोक्ष के प्रशस्त पथ पर अग्रसर होने के लिये तपश्चर्या को छोडकर अन्य कोई उपाय नही है। ऊपर साधना के मूल मन्त्रो के रूप मे जिन सक्षिप्त साधनो का उल्लेख हमने किया है वे सब तपश्चर्या के भिन्न-भिन्न प्रकार है या फिर यो कहो कि वे मोक्षरूपी दुर्ग पर विजय प्राप्त करने के लिये जीव के शस्त्रागार हैं या फिर कषायरूपी शत्रुओ को परास्त करने के लिये उन पर कठोर प्रहार है। मोक्ष का अधिकारी वही आत्मा है जो तपश्चर्या की अग्नि मे तपकर सुवर्ण के समान निर्मल बन जाता है, शुद्ध बन जाता है और पवित्र बन जाता है। शास्त्र का कथन है।

जह खलु मइल वत्थ,
सुज्झइ उदगाइएहि दव्वेहिं।
एवं भावुवहाणेण,
सुज्झए कम्ममट्ठविहं॥

आचारांग निर्युक्ति, २८२

अर्थात्—जिस प्रकार जल आदि शोधक द्रव्यो से मलिन वस्त्र भी शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार आध्यात्मिक तपसाधना द्वारा आत्मा ज्ञानावरणादि आठ प्रकार के कर्ममल से मुक्त हो जाता है।

इन्ही आठ प्रकार के कर्मो की मल को धोने के लिये मुनि चान्दमल जी महाराज उग्र तपश्चर्या मे निरत थे। अनेक परीषहो को सहन करके वे पाच महाव्रतो को तथा उन को शक्ति प्रदान करने वाले अनेक धार्मिक मुनि-नियमो और उपनियमो का पालन तो बडी कर्मठता से, निष्ठा से और श्रद्धा से करते ही थे किन्तु उनके अतिरिक्त वे अपनी शक्ति से बाहर जाकर भी तपश्चर्या की आराधना करते थे।

उग्रविहारी

वे वडे उग्रविहारी थे। अस्वस्थावस्था मे शारीरिक शैथिल्य के सद्भाव मे भी वे विहार करने मे तनिक भी आलस्य और सकोच नही

करते थे। वसन्त ऋतु के विहार के समय अपनी रुग्णावस्था को भूलकर वृक्षो से पवन वेग द्वारा पीले, जीर्ण और परिपक्वावस्था मे पहुचे हुए पेडो के पत्तो को झडते हुए देखकर यही सोचा करते थे

"जैसे ये जीर्ण पत्ते वृक्ष से झडकर सदा के लिये वृक्ष के सम्बन्ध से मुक्त हो जायेंगे, ठीक इसी प्रकार अपनी तपश्चर्या के द्वारा मुझे भी अपने अर्जित कर्मो को इस प्रकार झाड देना है कि ये पुन मेरे जीव से लिप्त न हो सके। कितना सत्य कहा है सन्त कबीर ने

पात झरंता यो कहै सुन तरुवर वनराय।
अबके बिछुरे ना मिलें दूर परेंगे जाय॥

अर्थात्—पत्ते जब वृक्ष से अलग होकर झडने लगे तो उन्होने वृक्ष से कहा कि 'हे तरुवर! हमारा यह सम्बन्ध तुमसे अन्तिम था, अब हम भविष्य मे कभी भी तुमसे नही मिल सकेंगे'। मैं भी अपने कर्मो का सम्बन्ध अपने जीव से सदा के लिये विच्छिन्न कर दूगा। कुछ वृक्षो पर, पौधो पर और लताओ पर नई-नई कोपले, कलिया और कुसुमो का भी आविर्भाव होना आरभ हो गया है। मेरे भी तो कषायरूपी सडे गले पत्ते झड चुके है और सद्भावना रूपी कलियो का विकास हो रहा है। फूल खिल रहे हैं और अपनी सुगन्धि आकाश मण्डल मे बिखेर रहे है। कितनी प्रसन्नता से और उल्लास से मुस्करा रहे है ये फूल। मेरा मन भी तो सासारिक ममता के त्याग से उल्लसित है और उससे सद्ज्ञान की सुगन्धि प्रस्फुटित हो रही है। परन्तु, हा, मेरे और वसन्त ऋतु के उल्लास मे और विकास मे तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। इन फूलो का खिलना, इनकी मुस्कराहट और इनकी सुगन्धि तो नश्वर है, क्षणिक है और चिरस्थायी नही है किन्तु मेरा उल्लास तो अमर रहने वाला है, मेरी मुस्कराहट कभी मुर्झाने वाली नही है और मेरा सौरभ तो अनन्त-काल दिग्दिगन्त को सुरभित करता रहेगा। इन पौधो के पत्ते तो पुन आविर्भूत हो गये है और ऐसे ही सदा झडते रहेगे और नये आते रहेगे किन्तु मेरे कर्म रूपी पत्ते एक बार झडकर पुन जीवरूपी पौधे को लगने वाले नही है। मेरा आनन्द, मेरा विकास और मेरा सौरभ अमर है। इन पेड, पौधो और लताओ के पत्र कर्म-वन्धनो से लिप्त ससार के जीवो के समान वार वार जन्म-मरण के रूप मे ससार मे आते जाते रहेगे किन्तु जिस कैवल्य पथ पर मैं चल

रहा हू, उस पथ का राही कभी लौट कर वापिस नही आता। वह तो अपनी वास्तविक स्वस्थिति मे या स्व-स्वरूप मे पहुच जाता है।

गीता के शब्दो मे

"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।"

अर्थात्—जहा से लौट कर वापिस नही आना है, मैं तो उस धाम का राही हू।

बढते हुए नग्न-चरण एवं अध्यात्म-चिन्तन

विहार—यात्रा मे जैसे-जैसे मुनि चान्दमल जी महाराज के नग्न चरण पगडडी पर आगे बढते जाते थे वैसे-वैसे उनकी आध्यात्मिक चिन्तन की धारा का प्रवाह भी आगे बढता रहता था। पगडडी टेढी मेढी थी किन्तु उनका चिन्तन सरल था। पगडडी कण्टकाकीर्ण थी किन्तु उनका अन्त करण निष्कटक था, पगडडी पर बालुका के कण बिखरे थे किन्तु उनका मन विकारहीनता के कारण परिमार्जित था, पगडडी कच्ची थी किन्तु उनका श्रद्धान पक्का था, पगडडी कही-कही रुक भी जाती थी, खेतो मे खो भी जाती थी किन्तु वे गतिशील थे और उनका प्रशस्त मार्ग खो जाने वाला नही था, पगडडी को किसान हल चला कर कई वार लुप्त भी कर देते थे किन्तु उनका मार्ग अनादिकाल से न अब तक कभी लुप्त हुआ है और न ही अनन्तकाल तक कभी लुप्त हो सकेगा।

चिन्तन धारा मे डूबकर उनको अपने शरीर की, अपने कष्ट की और अपनी पीडा की कोई सुधबुध नही रहती थी, इसका कारण यही था कि उनको अपने शरीर पर कोई भी आसक्ति नही थी।

वसन्त ऋतु के पश्चात् आनेवाली ग्रीष्म ऋतु भी उनके विहार के विचार को परिवर्तित नही कर सकती थी। सहचर सन्तो के रुग्णावस्था मे विहार के परामर्श की उपेक्षा करके वे विहार कर दिया करते थे। यह कहकर उनके परामर्श का परिहार कर दिया करते थे कि 'परीषह सहने से साधु शीघ्रातिशीघ्र कर्मो का क्षय कर लेता है'। नीचे पृथ्वी तवे के समान तप रही होती थी, ऊपर आकाश से आग बरसती थी और चारो ओर धूल भरी आन्धी और लू के अत्यन्त तप्त झोके सृष्टि को भस्म करने पर तुले होते थे किन्तु चान्दमल जी महाराज इन सबकी किंचित् भी चिन्ता न करते हुए विहार मे नगे पैर, पसीने से

करते थे। वसन्त ऋतु के विहार के समय अपनी रुग्णावस्था को भूलकर वृक्षो से पवन वेग द्वारा पीले, जीर्ण और परिपक्वावस्था मे पहुचे हुए पेडो के पत्तो को झडते हुए देखकर यही सोचा करते थे

"जैसे ये जीर्ण पत्ते वृक्ष से झडकर सदा के लिये वृक्ष के सम्बन्ध से मुक्त हो जायेगे, ठीक इसी प्रकार अपनी तपश्चर्या के द्वारा मुझे भी अपने अर्जित कर्मो को इस प्रकार झाड देना है कि ये पुन मेरे जीव से लिप्त न हो सके। कितना सत्य कहा है सन्त कबीर ने

पात झरंता यो कहै सुन तरुवर वनराय।
अबके बिछुरे ना मिलें दूर परेंगे जाय॥

अर्थात्—पत्ते जब वृक्ष से अलग होकर झडने लगे तो उन्होने वृक्ष से कहा कि 'हे तरुवर! हमारा यह सम्बन्ध तुमसे अन्तिम था, अब हम भविष्य मे कभी भी तुमसे नही मिल सकेंगे'। मै भी अपने कर्मो का सम्बन्ध अपने जीव से सदा के लिये विच्छिन्न कर दूगा। कुछ वृक्षो पर, पौधो पर और लताओ पर नई-नई कोपले, कलिया और कुसुमो का भी आविर्भाव होना आरभ हो गया है। मेरे भी तो कषायरूपी सडे गले पत्ते झड चुके है और सद्भावना रूपी कलियो का विकास हो रहा है। फूल खिल रहे है और अपनी सुगन्धि आकाश मण्डल मे बिखेर रहे है। कितनी प्रसन्नता से और उल्लास से मुस्करा रहे है ये फूल। मेरा मन भी तो सासारिक ममता के त्याग से उल्लसित है और उससे सद्ज्ञान की सुगन्धि प्रस्फुटित हो रही है। परन्तु, हा, मेरे और वसन्त ऋतु के उल्लास मे और विकास मे तो पृथ्वी और आकाश का अन्तर है। इन फूलो का खिलना, इनकी मुस्कराहट और इनकी सुगन्धि तो नश्वर है, क्षणिक है और चिरस्थायी नही है किन्तु मेरा उल्लास तो अमर रहने वाला है, मेरी मुस्कराहट कभी मुर्झाने वाली नही है और मेरा सौरभ तो अनन्त-काल दिग्दिगन्त को सुरभित करता रहेगा। इन पौधो के पत्ते तो पुन आविर्भूत हो गये है और ऐसे ही सदा झडते रहेगे और नये आते रहेगे किन्तु मेरे कर्म रूपी पत्ते एक बार झडकर पुन जीवरूपी पौधे को लगने वाले नही है। मेरा आनन्द, मेरा विकास और मेरा सौरभ अमर है। इन पेड, पौधो और लताओ के पत्र कर्म-बन्धनो से लिप्त ससार के जीवो के समान वार वार जन्म-मरण के रूप मे ससार मे आते जाते रहेगे किन्तु जिस कैवल्य पथ पर मै चल

रहा हू, उस पथ का राही कभी लौट कर वापिस नही आता। वह तो अपनी वास्तविक स्वस्थिति मे या स्व-स्वरूप मे पहुच जाता है।

गीता के शब्दो मे

"यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।"

अर्थात्—जहा से लौट कर वापिस नही आना है, मै तो उस धाम का राही हू।

बढ़ते हुए नग्न-चरण एवं अध्यात्म-चिन्तन

विहार—यात्रा मे जैसे-जैसे मुनि चान्दमल जी महाराज के नग्न चरण पगडडी पर आगे बढते जाते थे वैसे-वैसे उनकी आध्यात्मिक चिन्तन की धारा का प्रवाह भी आगे बढता रहता था। पगडडी टेढी मेढी थी किन्तु उनका चिन्तन सरल था। पगडडी कण्टकाकीर्ण थी किन्तु उनका अन्त करण निष्कटक था, पगडडी पर बालुका के कण बिखरे थे किन्तु उनका मन विकारहीनता के कारण परिमार्जित था, पगडडी कच्ची थी किन्तु उनका श्रद्धान पक्का था, पगडडी कही-कही रुक भी जाती थी, खेतो मे खो भी जाती थी किन्तु वे गतिशील थे और उनका प्रशस्त मार्ग खो जाने वाला नही था, पगडडी को किसान हल चला कर कई बार लुप्त भी कर देते थे किन्तु उनका मार्ग अनादिकाल से न अब तक कभी लुप्त हुआ है और न ही अनन्तकाल तक कभी लुप्त हो सकेगा।

चिन्तन धारा मे डूबकर उनको अपने शरीर की, अपने कष्ट की और अपनी पीडा की कोई सुधबुध नही रहती थी, इसका कारण यही था कि उनको अपने शरीर पर कोई भी आसक्ति नही थी।

वसन्त ऋतु के पश्चात् आनेवाली ग्रीष्म ऋतु भी उनके विहार के विचार को परिवर्तित नही कर सकती थी। सहचर सन्तो के रुग्णावस्था मे विहार के परामर्श की उपेक्षा करके वे विहार कर दिया करते थे। यह कहकर उनके परामर्श का परिहार कर दिया करते थे कि 'परीषह सहने से साधु शीघ्रातिशीघ्र कर्मो का क्षय कर लेता है'। नीचे पृथ्वी तवे के समान तप रही होती थी, ऊपर आकाश से आग बरसती थी और चारो ओर धूल भरी आन्धी और लू के अत्यन्त तप्त झोके सृष्टि को भस्म करने पर तुले होते थे किन्तु चान्दमल जी महाराज इन सबकी किचित् भी चिन्ता न करते हुए विहार मे नगे पैर, पसीने से

लथपथ, और राजस्थान की तप्त बालुकणो से धूसरित अवस्था मे चलते हुए दिखाई देते थे। शरीर के कष्ट की वेदना की और असह्य असुविधा की चिन्ता न करते हुए वे इस चिन्तन मे लीन हो जाते थे

"गर्मी शरीर को तपा रही है, लू शरीर को जला रही है, धूल आखो मे वेदना उत्पन्न कर रही है, काटे पैरो मे छेद कर रहे है, तपे हुए ककर पैरो मे चुभ रहे है, और भूख तथा प्यास तन को व्याकुल कर रही है, वे सारे कष्ट तो शरीर की अनुभूति है, चेतन के सम्पर्क से, परन्तु जो मैं हू वह तो शरीर नही है, जो शरीर है, वह मैं नही हू। मै तो शरीर से सर्वथा भिन्न सत्, चित्, आनन्दस्वरूप, शुद्ध-बुद्ध और निरजन तत्व हू। फिर मुझमे जड शरीर की चिन्ता क्यो, जडतत्व मे आसक्ति क्यो, ममता क्यो और मोह क्यो ? यह तो नश्वर है और मै अनश्वर हू। मैं चेतन हू और यह जड है। यदि अज्ञानवश चेतन और जड के साधारणीकरण के चक्र मे पडा रहा, जैसे कि अनादिकाल से पडा हुआ हू, तो मेरा जन्म-मरण का बन्धन कैसे कटेगा ? शास्त्र प्रतिपादित 'अन्यत्व की भावना' को मैने भलीभाति समझ रखा है, फिर मै शरीर का मोह क्यो करू ? यह तपता है तो तपने दो, जलता है तो जलने दो, नष्ट होता है तो होने दो। मै इसकी सर्वथा चिन्ता नही करूगा। मैं तो अपनी चिन्ता करूगा, अपने वास्तविक स्वरूप की चिन्ता करूगा, अपने कर्मक्षय की चिन्ता करूगा, अपने उद्धार की चिन्ता करूगा और अपने स्वरूप मे पहुचने की चिन्ता करूगा।"

वर्षा ऋतु और शरद् ऋतु मे जैन सन्त विहार नही करते। वर्षा ऋतु मे वर्षा के कारण मार्ग यत्र-तत्र अवरुद्ध हो जाते है, पृथ्वी वनस्पति से ढक जाती है और अनेक प्रकार वनस्पतिकायिक जीवो की उत्पत्ति हो जाती है। यद्यपि साधु इर्या समिति से कदम आगे बढाते है तो भी पृथ्वी पर फैली वनस्पति मे, घास मे, लताओ मे,

होते। सभवत विक्रम का १९९७वा वर्ष था, स्वामीजी चान्दमल जी महाराज का चातुर्मास ब्यावर का निश्चित हुआ था। शहर मे प्रवेश करने से पूर्व कुछ दिन के लिये नगर के बाहर एक ऊजड से मकान मे कुछ दिनो के लिये उन्हे ठहरना पडा था। सयोगवश मैं भी उनके साथ ही था। कहते है कि विपत्तिया अकेली कभी नही आती किन्तु वे तो ससैन्य और सशस्त्र आती है। वास्तव मे उस ऊजड स्थान मे मच्छरो, खटमलो और मकोडा की सेना सशस्त्र प्रकट हुई और आक्रमण कर दिया हम सब पर। हमारे साथ मिथिला के एक पण्डितजी भी थे, उन पर जैन सस्कृति का कोई प्रभाव नही था। वडे शास्त्रार्थी पण्डित थे और समय आने पर शस्त्रार्थी भी वन जाते थे। वे तो भिड गये मच्छरो से और खटमलो से। छोटे-छोटे जीव-जन्तु भला इतने बडे विद्वान् को अपने डको से घायल कर दे, यह अपमान भला उन्हे कैसे सह्य हो सकता था। बस लगे दोनो हाथो से ताडिया वजा कर मच्छर मारने और साथ-साथ हाथ की अगुली से और पैर के अगूठे से खटमल मसलने। दो शत्रुओ का सामना करना कोई सरल काम न था, परन्तु वीरात्मा थे, डट गये रात्रि को ही युद्ध के मैदान मे। इस बीच मे अवसर पाकर मकौडे उनको डक मार कर मोटर साईकल की तरह भाग निकलते थे। आखिर तीन तरफ से शत्रुओ का आक्रमण था, कायर का काम नही था इस युद्ध मे अडिग रहना। सारी रात युद्ध चलता रहा आखिर प्रात काल शत्रु को पीछे हटना पडा। कलिंग की सेना के सिपाहियो के खून के धब्बे जगह-जगह दिखाई दे रहे थे। यह था सासारिक युद्ध। धर्म युद्ध नही। धर्म युद्ध मे आक्रान्त, शस्त्रधारी आक्रमणकारियो को लोहे के या चर्म के शस्त्रो से पराजित नही करता किन्तु प्रेम के शस्त्रो से पराजित करता है। आक्रमण करने वाले शस्त्र प्रहारो से तरह-तरह के नारकीय कर्म वान्धते है किन्तु आक्रान्त, आक्रमण करने वालो के शस्त्रो के प्रहारो को बडी सहनशीलता से सहन करके अपने कर्मों का क्षय करते है। वे केवल मात्र प्रहारो की चोटो को सहन ही नही करते किन्तु चोट करने वाले पर करुणा की किरणे बरसाते है। स्वय के दुख से दुखी न होकर शत्रु के भावी कर्मवन्ध-जन्य दुख से व्याकुल हो जाते है। भगवान् महावीर ने भी तो अज्ञानी

जीवो के द्वारा दी गई असह्य यातनाओ को सहन किया था, बदले मे उन पर क्रोध नही किन्तु करुणा की थी, दया की थी और यातना देने वाले के पाप-कर्म-बन्ध के परिणामस्वरूप प्राप्त होने वाले नारकीय जीवन पर खिन्नता प्रकट की थी। मुनि चान्दमल जी के और उनके सहचर अन्य जैन सन्तो के समक्ष भगवान महावीर का आदर्श जीवन था। वे मच्छर, खटमलादि के कष्टप्रद आक्रमणो से तनिक भी विचलित नही हुये। यद्यपि ऐसे कष्टपूर्ण समय मे सोना सभव नही था तो भी मुनियो को इसकी कोई चिन्ता नही थी। वे सारी रात ध्यान-मग्न होकर व्यतीत कर देते थे। मैं तो मच्छरदानी के प्रयोग से अपना बचाव कर लेता था, परन्तु पण्डितजी मैदान छोड कर भाग निकले। मुनि चान्दमल जी महाराज ने अपने अन्य जैन मुनियो के साथ कई रात्रिया वहा इसी प्रकार घोर परीषहो को सहन करके बिता दी थी। धन्य है ऐसा धर्म जो दूसरे प्राणियो को हानि न पहुचाकर स्वय को हानि पहुचाना अधिक श्रेयस्कर समझना है और धन्य है वे जैन मुनिराज जो स्वय यातनाए सहनकर दूसरे जीवो का कल्याण करते है। 'मुनि चान्दमल जी कैसे उग्रतपोनिष्ठ साधक थे' इस सत्य की झलक इस घटना से स्पष्ट परिलक्षित होती है।

प्रत्येक ऋतु मे आने वाले परीपहो को जैन मुनि कर्मो के क्षय का सुअवसर मानता है। वर्षा ऋतु मे जहा व्योम मे जलभाराक्रान्त काले वादलो की घटाओ का जाल था, इधर पृथ्वी पर चान्दमल जी मुनि के कर्मक्षय का काल था। भाग्यहीन प्राणी की वक्र मस्तक रेखाओ के समान धरा वृश्चिक, सर्पादि जन्तुओ का आधान थी, समस्त प्राणियो के प्रति कारुणिक मुनि चान्दमल जी की प्रवृत्ति जीवो की हत्या के प्रति सावधान थी। धरित्री नवजलधारा पाकर जवान थी, मुनिजी की भावना चातुर्मास मे अधिकाधिक ज्ञान ध्यान का सुअवसर पाकर धृतिमान् थी। वादल पृथ्वी के पास आकर जल की वर्षा कर रहे थे और स्वामी जी श्रावको के मध्य विराजमान होकर ज्ञान की वर्षा कर रहे थे। वादलो मे कभी-कभी विजली की ज्योति का क्षणिक भान था, स्वामी जी के प्रवचन मे ज्ञान की ज्योति का स्थायी स्थान था। विजली की शिकार अनेक प्राणियो की जान थी किन्तु स्वामीजी की प्रवचन विद्युत ज्योति अनेक प्राणियो के कर्मक्षय

की खान थी। अधिक वर्षा के कारण नदी, नाले और तालाब सब अपने तटो को तोड कर मर्यादाहीन हो गये थे किन्तु स्वामीजी ने वर्षाकालिक कर्कश परीषहो के सद्भाव मे भी अपनी धार्मिक क्रियाओ की मर्यादा भग नही की थी। कच्चे घर, कच्चे सयमियो के समान धराशायी हो रहे थे किन्तु पक्के मकान स्वामीजी चान्दमलजी जैसे दृढ सकल्पी मुनि के समान यथावत् दृढता से वर्षा का सामना कर रहे थे। शुक्ल पक्ष का चाद बादलो की काली घटाओ के कारण कई दिन से अपनी चादनी पृथ्वी पर नही छिटका पाया था परन्तु पृथ्वी का यह मुनि चान्द तो प्रतिदिन अपनी शान्तिदायक किरणो से श्रावको के मनो को प्रकाशित कर रहा था। सूर्य ने अपने प्रकाश का उत्तरदायित्व सभवत इसी चान्द को सौप रखा था। वर्षा होते ही दलदल मे दुरित दर्दुर बाहर निकल कर ऐसे प्रसन्नता मे टर्राने लगे जैसे कर्मो के दल-दल से किंचित् मुक्त हुआ जीव आध्यात्मिकता के उल्लास भरे गाने गाने लगता है। सर्प अपना सिर और बिच्छू अपनी पूछ ऊची करके ऐसे चलने लगे जैसे धर्महीन और आत्मतत्व से अनभिज्ञ जीव अहकार से अभिभूत होकर दूसरे जीवो को डसने के लिये उद्यत होकर चलता है। अहकारी के पतन के समान ही वर्षा ऋतु का पतन हुआ, अन्त आ गया।

अब आरम्भ हो गई शरद् ऋतु। शरद् ऋतु के आने से सासारिक यात्रियो के लिये तो मार्ग खुल गये। नदियो का, उप नदियो का और नालो का पानी उतर गया। इतना अल्प रह गया कि उसमे यात्री सरलता से चलकर पार कर सकते थे। परन्तु जैन मुनियो के लिये तो उतने अल्प जल को भी बीच मे चलकर पार करना शास्त्र द्वारा निषिद्ध था, इसलिये उन्हे पूरी शरद् ऋतु मे भी एक ही स्थान पर रहना आवश्यक था। पानी निश्चित रूप से मन्द पडता जा रहा था किन्तु वर्षाकाल मे उत्पन्न असख्य जीव जन्तुओ का प्रकोप शरद् ऋतु के आने से मन्द नही पडा करता। जैन मुनियो को तो शरद् ऋतु मे भी वर्षा ऋतु मे जात आक्रमणकारी विषैले जीवो द्वारा दिये गये परीषहो को सहना ही पडता है।

हेमन्त ऋतु का आगमन भी जैन मुनि के लिये सुखसह्य नही होता। हेमन्त ऋतु मे पर्वतो पर जमने वाली वर्षा के पश्चात् जो देश

मे शीत की लहर चलती है उससे सहस्रो मानव, पशु और पक्षी काल का ग्रास बनते है। पर्वतीय प्रान्तो मे विहार करने वाले जैन मुनियो का कष्ट तो अनुमानगम्य ही है किन्तु जो दूसरे प्रान्तो मे भी विचरते है उनको भी हेमन्त ऋतु मे परीषहो का कम सामना नही करना पडता। ठण्डे-ठण्डे बालुका कणो से आकीर्ण राजस्थान की ठडी पगडडियो पर, अत्यन्त शीतल, काटने वाले, चुभने वाले, देह को चीरकर बीच मे से निकल जाने वाले वायु के झोको मे से होकर चलने वाले, अल्प-वस्त्र परिग्रह वाले, अत्यन्त कोमल पैरो मे तीखे ककरो के चुभने के कारण खून से लथपथ चरणो वाले, शीत लहर के कारण अपने कपाय-मान अतिसुकुमार शरीर का भार ढोने वाले, सहचर मुनियो द्वारा आराम के निमित्त विश्राम के लिये दिये गये परामर्श पर मौन धारण करने वाले, विहार मे मिलने वाले अत्यन्त श्रद्धावान श्रावको द्वारा समीपस्थ जलपान-शाला के बरामदे मे घडी दो घडी रुकने के मनुहार का परिहार करने वाले, रुग्णावस्था मे भी वैद्यों द्वारा, डाक्टरो द्वारा दी गई विश्राम निमित्त अनुमति की उपेक्षा करके लम्बे विहार पर सचार करने वाले, पैर मे मोच आने पर, पैरो द्वारा चलने का निषेध पाकर भी लगडा-लगड़ा कर चलने वाले उग्रतपस्वी मुनि चान्दमलजी महाराज को मैंने (उनकी जीवनी के लेखक ने) स्वय अपनी आखो से देखा है।

'आप दूसरे प्राणियो को कष्ट पहुचाने मे तो, पाप समझते है, अपनी देह को इस प्रकार तडपाने से क्या पाप कर्म का बन्धन नही होता ?' मैंने उनसे पूछा।

मेरे इस प्रश्न करने पर मुनि चान्दमलजी महाराज ने हेमन्त ऋतु के एक विहार मे ठडी पगडडी पर अपने सुकुमार चरणो के सचार को भग करते हुए अर्थात् खडे रह कर कहा

"दूसरे प्राणियो को चोट पहुचाने से अपने पाप कर्मो का बन्ध होता है किन्तु दूसरो की रक्षा निमित्त स्वय कष्ट सहने से अपने कर्मो का क्षय होता है। तुम कहोगे कि इस समय तो मेरे सामने दूसरे जीव रक्षा की अपेक्षा नही कर रहे फिर मै क्यो व्यर्थ मे शीत की यातना सहन कर रहा हू। इसके लिये मेरा यही कहना है कि यह देह जो मुझे मिली हुई है, वह कर्म बन्धका ही तो परिणाम है। देह की कारागार

मे रहने का जीव का वास्तविक स्वरूप नही है । वह तो स्व-स्थिति मे शुद्ध, बुद्ध और अमर आत्मा है, ऋतु-जन्य तथा और अनेक परीपहो को सहने के लिये मै अपने शरीर को इसलिये प्रेरित कर रहा हू जिससे मेरे वे सारे कर्म क्षीण हो जाए जिनके कारण मुझे यह शरीर मिला हुआ है । वास्तव मे यह शरीर जीव के लिये वन्धन है, इस वन्धन से मुक्ति या छुटकारा तभी मिल सकता है यदि परीपहो को शान्तिपूर्वक और धैर्यपूर्वक सहन कर लिया जाये । शरीर के सुख को सुख समझना और शरीर के दुख को दुख समझना, यह अज्ञान का आवरण है जो जीव पर छाकर उसे सम्भ्रान्त वना देता है। मैंने कष्ट सहन करके उस आवरण को हटाना है, भ्रान्ति से दूर रहना है । मेरा जीव इसी प्रकार की भ्रान्ति मे पडा हुआ अनेक भवो से जन्म-मरण के चक्कर मे पडा हुआ दुख भोग रहा है । मैं सदा के लिये उस दुख का अन्त करना चाहता हू । दुख मेरा स्वभाव नही है, मैं परम आनन्दमय आत्मतत्व हू ।"

शिशिर ऋतु मे सूर्य के तापमान की वृद्धि के कारण पर्वतो पर हिम पिघलने लगती है और जल के रूप मे प्रवहमान होने लगती है । सन्त कवीर ने पिघलती हुई वर्फ को देखकर कहा था 'जो तू था सोई भया' हे जल ! तू वर्फ तो ऋतुकालीन प्रभाव के कारण वन गया था, वास्तव मे तो तू तरल पदार्थ है, पिघल कर तू फिर अपने वास्तविक रूप मे आ गया है' । उक्ति तो सामान्य है किन्तु अर्थ गभीर है । जैसे जल ऋतुकालीन प्रभाव के कारण कुछ समय के लिये वर्फ के रूप मे जम जाता है, ठीक इसी प्रकार शरीर का रक्त शीतपरिणाम के द्वारा जहा का तहा जम जाता है, परन्तु जव उसे विहारजन्य-तपश्चर्या का ताप लगता है तो वह पुन अपनी वास्तविक स्थिति स्व-स्वरूप मे अवस्थित हो जाता है । अन्तर केवल इतना है कि जल की स्व-स्थिति अस्थायी है और जीव की स्व-स्थिति स्थायी है, सूर्य के तापमान की वृद्धि से शीतलहर अवश्य मन्द पड जाती है और मौसम सुहावना हो जाता है परन्तु जैन मुनियो की तपश्चर्या की लहर मन्द नही पडती और न ही सुहावनी मौसम का उन पर प्रभाव ही पडता है । ससारी लोग सुहावनी मौसम का शारीरिक आनन्द द्वारा लाभ उठाते है किन्तु जैन सन्त इस ऋतु मे लम्वे लम्वे विहार करके सुहावनी मौसम का

सदुपयोग करते है। लम्बे विहार सुखमय नही किन्तु परीषहमय होते है। एक दिन मे दो-दो विहार, तीन-तीन विहार, शरीर बुरी तरह से थक-कर चूर-चूर हो जाता है, टूट-टूट जाता है, गिर-गिर पडता है, परन्तु उनको इसकी कोई चिन्ता नही। वे तो अपनी आत्मकल्याण की भावना से चलते जाते है, चलते जाते है।

'चरैवेति, चरैवेति।'

मुनि श्री चान्दमलजी महाराज तो उग्रविहारी होने के कारण लम्वे से लम्बे विहारो को पसन्द करते थे।

अडिग साधक

श्रमण सस्कृति मे मुक्ति की साधना के पथ पर अग्रसर होने के लिये साधु के निमित्त जिस आचार सहिता का विधान है, वह ससार की आचार पद्धतियो की अपेक्षा कही अधिक कठोरतम, दुष्करतम और कठिनतम है। नगे पैर विहार, रूखा सूखा आहार। अनेक वार, आहार प्राप्ति के अभाव मे निराहार-विहार, अनियत सचार, के शलुचन का आचार, भूमि शय्या का सभार, फूटी कौडी का भी पास मे रखने का परिहार, इन्द्रियो पर विजय प्राप्ति के निमित्त दिवानिश उनके विषयो पर ज्ञान का सतत् प्रहार, भूख प्यास, गर्मी, सर्दी, मच्छर, बिच्छू, साप के डसने के समय मात्र धैर्य का आधार, प्रत्येक वस्तु का याचना के द्वारा ही स्वीकार, कभी-कभी गोवरी मे कुछ न पाकर विषाद का परिहार, अज्ञानी जीवो से अपमानित होकर भी प्रतिकार का बहिष्कार और उनके प्रति करुणा का सचार, वर्पावास को छोडकर ग्राम ग्राम मे, नगर-नगर मे सात दिन अथवा एक मास से अधिक न ठहरने का आचार, ऐसी कठोरतम धार्मिक चर्याए है जिनका पालन जैन साधु को करना होता है। मुनि चान्दमल जी महाराज जैन साधु की इन सव चर्याओ मे अडिग रहे, अविचलित रहे और दृढ रहे। वे वीतरागता की, त्याग की और तपश्चर्या की जीवित प्रतिमा थे। उनकी ऊपर वर्णित उग्रसाधना का उद्देश्य था 'आत्मशुद्धि'। 'आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन और असीम आनन्द और विराट् चेतना का भण्डार होकर भी स्वार्जित कर्मो की उपाधि के कारण असीम दु खो का भाजन वनता है और जव तक इस कर्म

की उपाधियो नष्ट नही किया जाता तव तक उसके सहज गुण प्रकाश मे नही आ सकते', इस सत्य से वे पूर्णरूपेण अनुप्राणित थे। कर्मो का नाश, बिना उग्र तपश्चर्या के सभव नहीं है, इस कारण वे जव तक जीवित रहे, उग्र तपश्चर्या मे निरत रहे। एक क्षण भी वे जीवन को व्यर्थ नही खोते थे। जव और साधुचर्या से तनिक भी अवकाश पाते थे, तो माला फेरने लगते थे। वे स्वय कहा करते थे, 'मेरे जीवन की गति टूट सकती है किन्तु माला हाथ से नही छूट सकती'। मुनि चान्दमलजी महाराज वास्तव मे एक महान् जैन मुनि थे, उग्र जैन तपस्वी थे, अनिर्वचनीय परीपहो को शान्ति से सहन करने वाले साधक थे, एक विराट् चेतना के आराधक थे, दुर्दमनीय दुरन्त दुष्कर्म दुर्ग के वाधक थे और नि.श्रेयस-सन्मार्गप्रवृत्त साधको के लिये मादक थे। मैने उनको बडे ही समीप से देखा था, परखा था, पढा था, जाना था, पहचाना था, उनके अन्त करण को विविध आगम-विहित विधि विधानो से सम्बन्धित विवादास्पद विषयो पर सलापो से छाना था और उनके शास्त्र समत, तर्क सगत, सारगर्भित और युवित निरुक्ति परिमार्जित समाधान पाकर उन्हे मुनियो मे, मनीषियो मे, माननीय महर्षियो मे और सम्मान्य साधको मे मूर्धन्य माना था। उनकी वाणी मे सौजन्य था, मन मे नैर्मल्य था और कर्म मे कमनीयता थी। उनकी कथनी और करनी मे एकता थी। वे अधिक मौनव्रत के उपासक थे किन्तु जब बोलते थे तो वाणी मे फूल झडते थे। उनके शब्दो मे आध्यात्मिकता की सौरभ थी, उनके प्रवचनो मे ज्ञान की गरिमा थी, उनके व्यवहार मे चरित्र की चारुता थी, उनके आहार मे सात्विकता साकार थी और उनके मागलिक आशीर्वाद मे, सम्मति प्रदान मे करुणा की भावना की भरमार थी। उनका व्यक्तित्व महनीय था, अनिर्वचनीय था, सराहनीय था, अनुगमनीय था, अनुभूति से आकलनीय था और आचरणीय था। सक्षेप मे वे अपने समान स्वय थे।

कलाकार के रूप में

सम्यग्दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यक् चारित्र चर्यारूपी मालती के तो वे चतुर चचरीक थे ही किन्तु उनके साथ-साथ वे उच्चकोटि के कलाकारो मे से भी एक थे। दीक्षा के पश्चात् उनको उनके गुरु

स्वामी नथमलजी महाराज ने शास्त्राभ्यास के साथ अक्षर जमाने की कला, बारीक से बारीक अक्षर लिखने की रीति और सुन्दर अक्षरो के निर्माण की विद्या का अभ्यास कराना आरम्भ करा दिया था। सुकुमार शरीर, सुकुमार भावना, सुकुमार व्यवहार, सुकुमार आचार और सुकुमार विचार—एक कलाकार के अपेक्षित गुण है, जिनके मुनि चान्दमल जी महाराज निधि थे। कलाकार की प्रवृत्ति जिस ओर केन्द्रित हो जाती है उसी विषय पर उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है। मुनि जी का एकाग्रमन अक्षरो के सौन्दर्य पर केन्द्रित हो चुका था और उसका उनके जीवन की प्रगति के साथ-साथ इतना विकास हुआ कि वह कला के अन्तिम चरण 'सुन्दरम्' तक पहुच गया। उनके अक्षर इतने सुन्दर, आकर्षक और आकृति मे समतल एव सन्तुलित है कि आजकल के छापे के अक्षर भी उनके सामने शोभाहीन प्रतीत होते है। उनके द्वारा लिखित नमूने के तौर पर दी गई ग्रथ मे शास्त्र के पन्नो की फोटो स्टेट कापी से पाठको को उनकी उच्च कोटि की लेखन कला का भली प्रकार साक्षात्कार हो जायेगा। जैन शास्त्र मे बत्तीस अक्षरो की एक पक्ति को ग्रन्थ के नाम से अभिहित किया जाता है। मुनि चान्दमलजी महाराज ने एक लाख ग्रन्थो अर्थात् बत्तीस अक्षरो की पक्तियो को अपने जीवन मे लिखा। उनके द्वारा लिपिबद्ध अनेक ग्रन्थ यत्र-तत्र राजस्थान के भण्डारो मे विद्यमान है। इन मणियो के समान सुन्दर, मोतियो के समान कान्तिमान् और दाडिम के बीजो के समान सुव्यवस्थित अक्षरो को देखकर किस कलाकार का मन मुग्ध नही हो जाता। आत्म नैर्मल्य की, मानस-सौन्दर्य की हस्तलाघवकी, अगुलियो की सुकुमारता की, मस्तिष्क के सतुलन की, ज्ञान की गरिमा की, ध्यान की महिमा की, एकाग्रता की पराकाष्ठा की, लिपिपरिमार्जन निष्ठा की, सत्य, शिव, सुन्दर की प्रतिष्ठा की, कर्मशील कलाकार की कर्मठता की, लिपि सौन्दर्य की सुष्मा की, कलाकृति की उष्मा की, परमपावन-आपगा-सरस्वती के कमनीय कूलो पर-विकसित-सुरभित-कमलो की क्रोड मे सतत-क्रीडा-निरत-भ्रमरो की सी कालिमा से अलकृत मुनि चान्दमलजी की लेखनी से प्रस्तुत अक्षर आज भी उनकी, उनके अन्तर के कलाकार की कहानी कहते प्रतीत हो रहे है। लिपिकार के रूप मे, कलाकार के रूप मे और अक्षर

सस्कार के सूत्रधार के रूप मे, मुनि चान्दमलजी महाराज सदा अमर रहेगे।

चाणक्य नीति सार मे लेखक का लक्षण करते हुए लिखा है

सकृदुक्तग्रहीतार्थो
लघुहस्तो जितेन्द्रिय ।
शब्दशास्त्र परिज्ञाता,
एष लेखक इष्यते ॥

- **चाणक्यनीतिसार, १०४**

अर्थात्—एक बार कहे गये शब्द के अर्थ को जो तुरन्त समझ जावे, जिसके हाथ मे लाघव हो, जो पूर्ण रूपेण, अपनी इन्द्रियो को जीतने वाला हो, जिसको व्याकरण शास्त्र का अच्छा ज्ञान हो ऐसा व्यक्ति ही अच्छा और सुयोग्य लेखक बन सकता है।

मुनि चान्दमलजी महाराज के लिये ये वरीयताए तो अति सामान्य थी। वे तो इनसे कई गुणा आगे निकल गये थे। ये वरीयताए तो सामान्य लेखक की है। वे तो असाधारण लिपिकार थे और कलाकारो के सरदार थे।

चातुर्मासिक-सस्थान

संवत्	नगर ग्राम
१९६५	सोजत
१९६६	कुचेरा
१९६७	कुचेरा
१९६८	ब्यावर
१९६९	रायपुर
१९७०	जोधपुर
१९७१	पीपाड
१९७२	ब्यावर
१९७३	झूठा
१९७४	कुचेरा
१९७५	रायपुर
१९७६	जोधपुर

स्वामी नथमलजी महाराज ने शास्त्राभ्यास के साथ अक्षर जमाने की कला, बारीक से बारीक अक्षर लिखने की रीति और सुन्दर अक्षरो के निर्माण की विद्या का अभ्यास कराना आरम्भ करा दिया था। सुकुमार शरीर, सुकुमार भावना, सुकुमार व्यवहार, सुकुमार आचार और सुकुमार विचार—एक कलाकार के अपेक्षित गुण हैं, जिनके मुनि चान्दमल जी महाराज निधि थे। कलाकार की प्रवृत्ति जिस ओर केन्द्रित हो जाती है उसी विषय पर उत्तरोत्तर विकसित होती रहती है। मुनि जी का एकाग्रमन अक्षरो के सौन्दर्य पर केन्द्रित हो चुका था और उसका उनके जीवन की प्रगति के साथ-साथ इतना विकास हुआ कि वह कला के अन्तिम चरण 'सुन्दरम्' तक पहुच गया। उनके अक्षर इतने सुन्दर, आकर्षक और आकृति मे समतल एव सन्तुलित है कि आजकल के छापे के अक्षर भी उनके सामने शोभाहीन प्रतीत होते है। उनके द्वारा लिखित नमूने के तौर पर दी गई ग्रथ मे शास्त्र के पन्नो की फोटो स्टेट कापी से पाठको को उनकी उच्च कोटि की लेखन कला का भली प्रकार साक्षात्कार हो जायेगा। जैन शास्त्र मे बत्तीस अक्षरो की एक पक्ति को ग्रन्थ के नाम से अभिहित किया जाता है। मुनि चान्दमलजी महाराज ने एक लाख ग्रन्थो अर्थात् बत्तीस अक्षरो की पक्तियो को अपने जीवन मे लिखा। उनके द्वारा लिपिबद्ध अनेक ग्रन्थ यत्र-तत्र राजस्थान के भण्डारो मे विद्यमान है। इन मणियो के समान सुन्दर, मोतियो के समान कान्तिमान् और दाडिम के बीजो के समान सुव्यवस्थित अक्षरो को देखकर किस कलाकार का मन मुग्ध नही हो जाता। आत्म नैर्मल्य की, मानस-सौन्दर्य की हस्तलाघवकी, अगुलियो की सुकुमारता की, मस्तिष्क के सतुलन की, ज्ञान की गरिमा की, ध्यान की महिमा की, एकाग्रता की पराकाष्टा की, लिपिपरिमार्जन निष्ठा की, सत्य, शिव, सुन्दर की प्रतिष्ठा की, कर्मशील कलाकार की कर्मठता की, लिपि सौन्दर्य की सुष्मा की, कलाकृति की उष्मा की, परमपावन-आपगा-सरस्वती के कमनीय कूलो पर-विकसित-सुरभित-कमलो की क्रोड मे सतत-क्रीडा-निरत-भ्रमरो की सी कालिमा से अलकृत मुनि चान्दमलजी की लेखनी से प्रस्तुत अक्षर आज भी उनकी, उनके अन्तर के कलाकार की कहानी कहते प्रतीत हो रहे हैं। लिपिकार के रूप मे, कलाकार के रूप मे और अक्षर

सस्कार के सूत्रधार के रूप मे, मुनि चान्दमलजी महाराज सदा अमर रहेगे।

चाणक्य नीति सार मे लेखक का लक्षण करते हुए लिखा है

सकृदुक्तग्रहीतार्थो
लघुहस्तो जितेन्द्रिय ।
शब्दशास्त्र परिज्ञाता,
एष लेखक इष्यते ।।

चाणक्यनीतिसार, १०४

अर्थात्—एक बार कहे गये शब्द के अर्थ को जो तुरन्त समझ जावे, जिसके हाथ मे लाघव हो, जो पूर्ण रूपेण, अपनी इन्द्रियो को जीतने वाला हो, जिसको व्याकरण शास्त्र का अच्छा ज्ञान हो ऐसा व्यक्ति ही अच्छा और सुयोग्य लेखक बन सकता है।

मुनि चान्दमलजी महाराज के लिये ये वरीयताए तो अति सामान्य थी। वे तो इनसे कई गुणा आगे निकल गये थे। ये वरीयताए तो सामान्य लेखक की है। वे तो असाधारण लिपिकार थे और कलाकारो के सरदार थे।

चातुर्मासिक-सस्थान

संवत्	नगर ग्राम
१९६५	सोजत
१९६६	कुचेरा
१९६७	कुचेरा
१९६८	ब्यावर
१९६९	रायपुर
१९७०	जोधपुर
१९७१	पीपाड
१९७२	ब्यावर
१९७३	झूठा
१९७४	कुचेरा
१९७५	रायपुर
१९७६	जोधपुर

१९७७	महामदिर
१९७८	रीया
१९७९	पीपाड
१९८०	नागौर
१९८१	ब्यावर
१९८२	सोजत
१९८३	व्यावर
१९८४	जोधपुर
१९८५	पीपाड
१९८६	जयपुर
१९८७	रीया
१६८८	सादडी
१९८९	बगडी
१९९०	जयपुर
१९९१	जोधपुर
१९९२	पीपाड
१९९३	व्यावर
१९९४	जोधपुर
१९९५	पीपाड
१९९६	नानणा
१९९७	व्यावर
१९९८	पीपलिया
१९९९	पीपाड
२०००	नागौर
२००१	बिराटिया
२००२	महामन्दिर
२००३	रायपुर
२००४	पीपाड
२००५	वर
२००६	सोजत
२००७	महामंदिर

२००८	समदडी
२००६	महामन्दिर
२०१०	खागटा
२०११	जोधपुर
२०१२	किशनगढ
२०१३	गढसीवाणा
२०१४	विलेपारले (वम्बई)
२०१५	कादावाडी (वम्बई)
२०१६	कोट (वम्बई)
२०१७	अमरावती (महाराष्ट्र)
२०१८	नागपुर (महाराष्ट्र)
२०१६	राजनादगाव (मध्य प्रदेश)
२०२०	रायपुर (मध्य प्रदेश)
२०२१	साहुकार पेठ (मद्रास)
२०२२	मैलापुर (मद्रास)
२०२३	अलसूर (बंगलौर)
२०२४	चिकपेट (बैंगलोर)
२०२५	विलेपारले (बम्बई)

चातुर्मासिक—संस्थान के पावन अवसर पर मुनि श्री चान्दमलजी महाराज द्वारा दिये गये कतिपय प्रवचनों की रूपरेखा।

१. स्थान रीयां, विषय धर्म—रीया के चातुर्मास मे उन्होने अपना प्रथम प्रवचन दिया था। वे अपने प्रवचन का आरभ किसी शास्त्रवचन से किया करते थे। धर्म का विवेचन करने के लिये उन्होने कहा

धम्मो मंगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।
देवावि तं नमंसंति, जस्स धम्मे सया मणो॥
दशवैकालिक सूत्रम्, १।१

अर्थात्—ससार का सवसे उत्कृष्ट तत्व या मानव-कर्त्तव्य है धर्म का पालन करना और इस धर्म की साधना अहिंसा, ,सयम और

नपश्चर्या द्वारा होती है। जिस प्राणी का मन सदा धर्म मे निरत रहता है, उसको तो देवता भी नमस्कार करते है। सामान्य जनो की तो बात ही क्या है।

आखिर यह धर्म क्या है ? धर्म का अर्थ क्या है ?

वत्थुसहावो धम्मो।

कार्तिकेय,४७८

धर्म कहते है वस्तु के स्वभाव को। कौनसी वस्तु के स्वभाव को ? शरीर के स्वभाव को, धन-दौलत के स्वभाव को या अन्य जड पदार्थो के स्वभाव को, नही। वे यहा अपेक्षित नही है। यहा अपेक्षित है, जीव। आपने, हम सबने जीव के स्वभाव को या जीव के स्वरूप को समझना है। जीव के स्वरूप को समझना ही धर्म है। जिसने इसको समझ लिया, वह धार्मिक व्यक्ति है, जिसने इसको नही समझा वह अधार्मिक है। साराश यह है कि हम सबने जीव के वास्तविक स्वभाव को, धर्म को समझना है, या दूसरे शब्दो मे यह कहो कि हमने अपने आपको समझना है। क्या शरीर हम है ? क्या ससार की दौलत हम है ? क्या हमे जो ऐश्वर्य के साधन मिले है—वे हम है ? क्या हमारे सगे सम्वन्धी हम हैं ? क्या ससार के अन्य जड पदार्थ जो हमे बहुत प्रिय है, वे हम है ? नही जीव इन सब से सर्वथा भिन्न है। वह तो शुद्ध, वुद्ध और परमानन्दपूर्ण तत्व है। ससार के पदार्थ नश्वर हैं, अस्थायी हैं और क्षणिक है किन्तु जीव अनश्वर है, स्थायी है और अमर है। वह जड शरीर से भिन्न है किन्तु कर्मो के आवरण से अपने को शरीर ही समझने लग गया है। 'मै पदाधिकारी हू, मैं उत्तराधिकारी हू, मैं राज्य कर्मचारी हू आदि-आदि नामो से अपने आपको पुकार कर जीव अपने मे, शरीर मे एकरूपता स्थापित कर रहा है। वह सब मिथ्याज्ञान है और मिथ्याज्ञान का परिणाम दु ख होता है। ससार के जीव इस प्रकार के मिथ्याज्ञान के अन्धकार मे भटक कर अनेक प्रकार के क्लेशो, यातनाओ और दु खो के शिकार बनते है। जब तक जीव मिथ्याज्ञान के अन्धकार को सम्यग् ज्ञान की किरणो से छिन्न-भिन्न नही कर देता तब तक सासारिक दु खो से, पीडाओ से, असाध्य रोगो से और जन्म, जरा और मृत्यु के जाल से उसका छुटकारा नही हो सकता। मानवतन पाकर भी जिसने अपने स्वरूप को समझने का प्रयत्न नही किया, उसे धर्म शास्त्र अधम पुरुप कह कर पुकारते है। अन्य

योनियो मे जीव को अपने भविष्य-चिन्तन का विवेक नही होता, यह मानव-शरीर पाकर जो इस सत्य को नही समझता उसे शास्त्र विवेकशील मानव नही समझते। शास्त्र मे लिखा है

तं तह दुल्लहलंभं, विज्जुलया चंचलं माणुसत्तं।
लद्धूण जो पमायइ, सो कापुरिसो न सप्पुरिसो॥

आवश्यक निर्युक्ति, ८३७

अर्थात्—जो बडी कठिनाई से प्राप्त होने के कारण दुर्लभ है और जो बिजली की चचल चमक के समान चिरस्थायी नही है, ऐसे मनुष्य के शरीर को पाकर भी जो प्राणी धर्म साधना मे प्रमाद करता है, उसे अधम पुरुष ही कहना चाहिये, सत्पुरुष नही।

हा, अब यहा उपस्थित श्रावको! आपने अधम पुरुष बनना है अथवा सत्पुरुष? हमारे विचार से कोई भी अपने को अधम पुरुष कहलाना पसन्द नही करेगा परन्तु पसन्द नापसन्द से कोई अधम या सत्पुरुष नहीं बनता। अधम पुरुष पापाचरण से बनता है और सत्पुरुष धर्माचरण से बनता है। मैं चाहता हू तुम सब सत्पुरुष बनो किन्तु सत्पुरुष का शब्द आपके नाम के साथ जोड देने से आप सत्पुरुष नही बन सकते, उसके लिये तो आपको धर्म के तत्व को समझना होगा, धर्म के नियमो का पालन करना होगा और धर्म के विधि-निषेधो को अपने जीवन मे उतारना होगा। यह सब इसलिये करना होगा कि तुम धर्म को समझ सको, धर्म के स्वरूप को समझ सको या दूसरे शब्दो मे अपने आपको समझ सको। तुम्हारे अन्दर बहुत से श्रावक ऐसे भी हैं जो लखपति है, करोडपति है, बेशुमार धन दौलत उनके पास है, क्या वे उससे सतुष्ट है? क्या उससे उनके मन मे शान्ति की धारा बह रही है? क्या वे दु खी नही है? क्या उनकी समस्या दिवानिश उनको परेशान नही कर रही? क्या वे रात को चैन की गाढ निद्रा मे सोते है? इन सब प्रश्नो का उत्तर हमे नही मे मिलता है। इसका कारण क्या है? इसका कारण है किसी ने भी धर्म को नही समझा, अपने आपको नही समझा और अपने स्वरूप को नही पहचाना। जब तक तुम धर्म को नही समझोगे तब तक तुम इसी प्रकार अशान्ति के और दु खो के सागर मे गोते खाते रहोगे। यदि धन-दौलत सुख की जननी होती तो धनपति दुखी क्यो होते? अशान्त क्यो रहते? दिन रात

चिन्ताओ मे डूबे क्यो रहते ? यदि धन से स्वर्ग और मोक्ष खरीदे जा सकते तो ससार के सारे निर्धन और अकिचन नरक मे ही जाते। ईसा के युग मे ऐसा भी होता था। योरोप मे धनिक लोग गिरजाघरो के पादरियो को लाखो रुपये इसलिये दिया करते थे कि वे स्वर्ग मे उनका स्थान आरक्षित कर दे। पादरियो के हाथ मे स्वर्ग का ठेका था और वे प्रचुर धन लेकर भक्तो की सीट स्वर्ग मे पक्की करने का दावा भी करते थे। ऐसी पाखण्ड पूर्ण स्थिति को देखकर ही महात्मा ईसा को कहना पडा था, 'सूई के छिद्र मे से ऊट को तो निकाला जा सकता है, उसकी सभवता तो है किन्तु धनिक व्यक्ति का स्वर्ग के द्वार के अन्दर प्रवेश सर्वथा असभव है'। वास्तव मे स्वर्ग या मोक्ष की प्राप्ति के लिये न तो धन साधन बन सकता है और न ही निर्धनता बाधक बन सकती है। सम्पन्नता और अकिचनता तो कृत्रिम स्थितिया है जिनका आत्मा के वास्तविक स्वभाव से कोई सम्बन्ध नही है। जो आत्मा के वास्तविक स्वरूप को समझ लेता है उसके लिये, चाहे वह सम्पन्न हो चाहे निर्धन, स्वर्ग मे जाना कठिन नही और मोक्ष को प्राप्त करना अशक्य नही। इसीलिये तीर्थंकरो का उपदेश है कि मानव को चाहिये कि वह सर्वप्रथम धर्म के महत्व को समझे, उस पर आचरण करे और उसका आश्रय ले। धर्म से बढ कर दुखो से छुटकारा दिलाने के लिये उसको कोई शरण देने वाला ससार मे नही है। शास्त्र का कथन है

जरामरणवेगेणं, बुज्झमाणाण पाणिण ।
धम्मो दीवो पइट्ठाय, गई सरणमुत्तम ।।

उत्तराध्ययन सूत्र २३।६८

अर्थात्—जरा और मरण के महाप्रवाह मे डूबते हुए प्राणियो की रक्षा के लिये धर्म ही द्वीप है, प्रतिष्ठा का आधार है गति है और उत्तम शरण है।

एक्को हि धम्मो नरदेव ! ताणं,
न विज्जई अन्नमिहेह किंचि ।।

वही० १४।४०

अर्थात्—हे राजन ! एक धर्म ही जीव की रक्षा करने वाला है, उसको छोडकर ससार मे कोई उसको शरण देने वाला नही है ।

धर्मो बन्धुश्च मित्रश्च धर्मोऽयं गुरूरगिनाम् ।
तस्माद् धर्मे मतिं धत्स्व स्वर्मोक्षसुखदायिनि ।।

आदिपुराण, १०।१०६

अर्थात्—धर्म ही मनुष्य का सच्चा बन्धु है, मित्र है और गुरु है । अतएव स्वर्ग और मोक्ष दोनो की प्राप्ति कराने वाले धर्म मे अपनी बुद्धि को स्थिर रखो ।

ऊपर जो मैने शास्त्रो के उदाहरण दिये है उनसे धर्म की महानता और धर्म की गरिमा का तो पता चलता है किन्तु मात्र महानता और गरिमा जान लेने से धर्म का बोध नही होता । धर्म तो आचरण की वस्तु है, अनुभूति की वस्तु है और पालन की चीज है । कैसे, किस रूप मे, किस विधि-विधान से उसका आचरण करना चाहिये, यह जानना परमावश्यक है । अपने प्रवचन के आरभ मे मैने जो शास्त्र की गाथा पढी थी उसमे पहले चरण मे तो धर्म की उत्कृष्टता बताई थी और दूसरे मे उसके आचरण की पद्धति का निर्देश था । दूसरे चरण का भाव था कि इस उत्कृष्ट धर्म का आचरण अहिसा, सयम और तप द्वारा हो सकता है । दूसरे शब्दो मे गाथा के दूसरे चरण मे आचरण की विधि का विधान है । जो व्यक्ति अपने जीवन मे अहिसा के सिद्धान्त का, सयम के सचरण का और तपश्चर्या की चर्या का पालन करता है, वही सच्चा धार्मिक व्यक्ति है । हिसा पाप की जननी है, असयम इन्द्रियो की दासता के कर्दम मे धकेलने वाला है और तप का अभाव कर्मो के आस्रव को प्रोत्साहन देने वाला है । हिंसा से पापकर्म का बन्ध होता है, इन्द्रियो की उच्छृ खलता पाप कर्म मे और योगदान देती है और तपश्चर्या का अभाव कर्मो के आस्रव के प्रवाह को और गतिशील बनाता है । कर्म प्रवाह की प्रगति से जीव जन्म-मरण के चक्कर की ओर, असह्य दु खो की ओर और घोर नारकीय यातनाओ की ओर बढता है । अपने ही अज्ञानता के दोप से, अज्ञानता के आवरण से, अज्ञानता के अन्धकार से ऐसा सब होता है । जीव अत्यन्त दुखी होता है, दु ख उसका स्वभाव नहीं है, इसलिये उसे अच्छा नही लगता । वह सुख चाहता है, आनन्द चाहता है और चाहता है दु खो से छुटकारा ।

दु खो के उसी परिताप से छुटकारा दिलाने के लिये जिनवाणी उसे सचेत करती हुई कहती है कि तू धर्म का आचरण कर और वह आचरण कैसे कर—अहिसाव्रत के पालन द्वारा, सयम धारण द्वारा और तपश्चर्या द्वारा। अहिंसा का व्रत लेकर तुम किसी जीव का अपने स्वार्थ के लिये घात नही करोगे। अपनी असावधानी के कारण भी जीवहिसा नही करोगे। अहिसाव्रत के पालन से तुम्हारे मे समता की भावना का जन्म होगा। ससार के प्राणीमात्र को तुम अपने समान समझने लगोगे। जो दु ख तुम्हे प्रिय नही है वह तुम और किसी को भी देना नही चाहोगे। तब तुम 'पापाय परपीडनम्' अर्थात्—दूसरे जीव को दु ख पहुचाना पाप समझने लगोगे, धर्म पालन द्वारा, इस पाप से तुम्हारी निवृत्ति होगी और शुभ कर्म मे प्रवृत्ति होगी। इस प्रकार धर्म के पालन का एक साधन तो अहिसा धर्म का पालन है। इन्द्रियो पर सयम रखने से इन्द्रियो के भिन्न-भिन्न प्रलोभनीय विषयों की ओर तुम्हारी प्रवृत्ति का निरोध हो जायेगा। तुम अपने दैनिक जीवन मे यह भली प्रकार अनुभव करते हो कि जिन विषयो के उपभोग के लिये तुम्हे अनेक प्रकार के पापाचरण करने पडते है, उनका परिणाम पश्चातापमय होता है। कौनसा आचरण अच्छा है और कौनसा बुरा, इसको जान लेना कोई कठिन बात नही है। जो आदि, मध्य मे तो सुखमय लगे किन्तु परिणाम मे दु ख रूप हो, वह आचरण अच्छा नही माना जाता। जो आदि और मध्य मे भले ही कष्टदायक हो किन्तु परिणाम मे सुन्दर हो वही आचरण अच्छा माना जाता है। इन्द्रियो पर सयम रखने से जीव अन्तर्मुखी बनता है और अनेक प्रकार की पाप की प्रवृत्तियो से बचा रहता है। पाप प्रवृत्तियो से बचना जीव के लिये इसलिये हितकारी है क्योकि ऐसा करने से उसके आगामी पापकर्म-बन्ध का निरोध हो जाता है। यह सयम मन का, वचन का, शरीर का और सग्रह की प्रवृत्ति—चारो का होना परमावश्यक है। इन्द्रियो के दास के लिये शास्त्र का कथन है

मोह जति नरा असवुडा।

सूत्रकृताग, १।२।१।२७

अर्थात्—इन्द्रियो का दास असवृत मनुष्य हित और अहित—निर्णय के समय मोहग्रस्त हो जाता है।

इसलिये इन्द्रियो की दासता से मुक्ति पाने के लिये, मन के ऊपर ज्ञान द्वारा नियत्रण-सयम रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त आगम के इस वचन को कभी नही भूलना चाहिये

खणमित्तसुक्खा, बहुकालदुक्खा।

उत्तराध्ययन, १४।१३

अर्थात्—ससार के विषय भोग क्षणमात्र के लिये ही सुख देने वाले है किन्तु उनके भोग के परिणामस्वरूप दुख चिरकाल तक भोगना पडता है।

बिना तपश्चर्या के पूर्वभवार्जित और इहभवार्जित कर्मो का क्षय होना सभव नही है। जिस प्रकार सोने मे मिला मैल अग्नि मे तपाने से सोने से अलग हो जाता है और सोना तपने के परिणामस्वरूप अपनी असली चमक देने लगता है ठीक इसी प्रकार तपश्चर्या द्वारा आत्मा मे लिप्त कर्मो का क्षय हो जाता है और कर्मो के क्षय के फलस्वरूप वह स्व-स्थिति, स्व-स्वरूप स्थित होकर शुद्धज्ञानमय वन जाता है और उसके जन्म-मरण के बन्धन, दुख, यातनाए और नारकीय पीडाए, सबका अन्त हो जाता है। बिना तपश्चर्या के कर्मो की निर्जरा कदापि सभव नही है, इसलिये शास्त्रकारो ने धर्म के जिज्ञासु साधक के लिये अहिसा और सयम के साथ-साथ तपश्चर्या का भी विधान किया है। अब तुम अच्छी तरह समझ गये होगे कि अहिसा, सयम और तपश्चर्या द्वारा आराधना किया जाने वाला धर्म किस प्रकार अधम आत्मा को उत्तम बना देता है, किस प्रकार निकृष्ट पुरुष को सत्पुरुष बना देता है, और किस प्रकार आत्मा को परमात्मा बना देता है। तुम्हारी अधम पुरुष के रूप मे रहने की इच्छा है तो खूब ससार के भोगो को भोगो और अनन्तकाल तक दुख के महासागर मे गोते खाते रहो, और यदि सत्पुरुष बनना है, आत्मरूप से परमात्मपद को पाकर ससार के सब दुखो से छुटकारा पाना है तो धर्म की आराधना करो, अहिसा का पालन करो, सयम को धारण करो और तपश्चर्या का आचरण करो।

हमे तो वडा आश्चर्य होता है यह देखकर कि धर्म का आचरण तो लोग सत्सग और प्रसग आने पर भी करके राजी नही है किन्तु

पाप का आचरण तो बडे प्रयत्न से और लगन से करते है। इस मानव की दुर्लभ देह को पाकर लोग अमृतरूपी धर्म का त्याग करके पापरूपी विष का पान करते है।

आजकल तो कलियुग चल रहा है। सभवत यह युग का ही प्रभाव है। किसी विद्वान् ने कलियुग का वर्णन करते हुए लिखा है

धर्म प्रव्रजितस्तप. प्रचलित सत्य च दूर गतम्।
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः।
मर्त्या स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नता.,
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृता॥

सु०र०भा० पृ०, ३८६ श्लो०, ४८८

अर्थात्—ऐसा है यह कलियुग जिसमे धर्म ने तो सन्यास ले लिया है—अर्थात्—धर्म लोक जीवन से उठ गया है, तपकी भावना भी लोक छोड कर चली गई है, सत्य का भी लोगो ने त्याग कर दिया है, पृथ्वी फलहीन हो गई है, लोग अत्यन्त कपट से भरे हुए है, ब्राह्मण लालची बन गये है, पुरुप स्त्रियो के दास बन कर रहते है, स्त्रिया अत्यन्त चचल प्रकृति वाली है, छोटे दर्जे के लोग ऊचे-ऊचे पदो पर आसीन है। कितना कष्टमय है, इस कलियुग मे जीना। वे धन्य है जो इसे नही देख रहे।

परन्तु यह स्मरण रखो कि युग का प्रभाव तुम्हे धर्म कर्म से रोक नही सकता। कही यह बहाना ढूढलो कि जी 'कलियुग का प्रभाव है, हम क्या करे' यह तो झूठा बहाना है। जीव की गति ऊर्ध्वगामी है, वह किसी भी युग का हो, यह अपनी ऊर्ध्वगामी प्रकृति का त्याग कभी नही कर सकता। धर्म की आराधना सभी युगो मे होती है, सभी युगो मे पुण्यवान जीव धर्म की आराधना द्वारा आत्म-कल्याण करते है और कर्मो का क्षय करते है। मैंने जिस विद्वान् का श्लोक अभी सुनाया है, जिसमे कहा गया है कि धर्म ने सन्यास ले लिया है, उसका अर्थ अपेक्षा से है अर्थात्—दूसरे युगो की अपेक्षा से कलियुग मे धर्माचरण बहुत कम है।

अन्त मे मेरा सब श्रावको को यही उपदेश है कि ससार की नश्वर क्रियाओ की, क्षणिक सुख देने वाले और परिणाम मे दुखावह विषयो की, और जड पदार्थो के ममत्व की उपेक्षा करके तुम धर्म की

आराधना करो। यदि तुम अपने दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति चाहते हो, मानव जीवन की सफलता के पक्षपाती हो, अपनी आत्मा के उत्थान के अभिलाषी हो, ज्ञान की गरिमा के समर्थक हो, आत्मतत्व की महिमा को मानने वाले हो, ससार की असारता को समझने वाले हो, प्रत्येक जीव की जान के महत्व को जानने वाले हो, सासारिक माया जाल की जघन्यता को पहचानने वाले हो, जीव के दु खो की कालिमा के कलक को परखने वाले हो और आत्म-शुद्धि की साधना के सन्मार्ग को सराहने वाले हो तो धर्म की धुरीणता को समझो, समझकर उसका मनन चिन्तन करो, धर्म को आत्मसात करो और धर्म के परमपावन पथ पर अपने कदम बढाओ। धर्म से तुम्हारी बुद्धि सुसस्कृत बनेगी, पावन बनेगी और निर्मल बनेगी। बुद्धि के नैर्मल्य से तुम्हारा अन्त-करण पाप की प्रवृत्तियो की ओर नही बढ सकेगा। पापके निरोध से कर्मों का निरोध होगा, कर्मो का आस्रव जीव मे रुक जायेगा। धीरे-धीरे जीव तपश्चर्या के आश्रय से कैवल्य की ओर अग्रगामी बनेगा और परमपद को प्राप्त करने मे समथ होगा। इस प्रकार तुम्हारे आत्मा के कल्याण को आधारशिला धर्माचरण है। यही कारण है और यही भावना है मेरी जिसको लेकर मैने अपने प्रवचन के आरभ मे धर्म की प्रशसा के और उत्तमता के विषय मे शास्त्र वचन सुनाया था कि इस नश्वर ससार मे जोव के कल्याण के लिये मात्र धर्म ही एक उत्कृष्ट मगल है जिसका आचरण अहिंसा, सयम और तपश्चर्या द्वारा करना चाहिये।

२ **स्थान : जोधपुर, विषय : अहिंसा**—सवत् १९९१ वे मे मुनि श्री चान्दमलजी महाराज ने "अहिंसा महाव्रत" पर प्रवचन देते हुए कहा था

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविऊ न मरिज्जिऊं।

दशवैकालिकसूत्रम् ६।११

अर्थात्—ससार के सब जीव जीवित रहना चाहते है, कोई भी मरना नही चाहता।

सव्वे पाणा पिआउआ,
सुहसाया दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा पियजीविणो,

पाप का आचरण तो बडे प्रयत्न से और लगन से करते है। इस मानव की दुर्लभ देह को पाकर लोग अमृतरूपी धर्म का त्याग करके पापरूपी विप का पान करते हे।

आजकल तो कलियुग चल रहा है। सभवत यह युग का ही प्रभाव है। किसी विद्वान् ने कलियुग का वर्णन करते हुए लिखा है

धर्म प्रव्रजितस्तप. प्रचलित सत्य च दूरं गतम्।
पृथ्वी वन्ध्यफला जना· कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणा·।
मर्त्या स्त्रीवशगा· स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नता,
हा कष्ट खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृता ॥

सु०र०भा० पृ०, ३८६ श्लो०, ४८८

अर्थात्—ऐसा है यह कलियुग जिसमे धर्म ने तो सन्यास ले लिया है—अर्थात्—धर्म लोक जीवन से उठ गया है, तपकी भावना भी लोक छोड कर चली गई है, सत्य का भी लोगो ने त्याग कर दिया है, पृथ्वी फलहीन हो गई है, लोग अत्यन्त कपट से भरे हुए हैं, ब्राह्मण लालची बन गये है, पुरुप स्त्रियो के दास बन कर रहते हैं, स्त्रिया अत्यन्त चचल प्रकृति वाली है, छोटे दर्जे के लोग ऊचे-ऊचे पदो पर आसीन है। कितना कष्टमय है, इस कलियुग मे जीना। वे धन्य हे जो इसे नही देख रहे।

परन्तु यह स्मरण रखो कि युग का प्रभाव तुम्हे धर्म कर्म से रोक नही सकता। कही यह बहाना ढूढलो कि जी 'कलियुग का प्रभाव है, हम क्या करे' यह तो झूठा बहाना है। जीव की गति ऊर्ध्वगामी है, वह किसी भी युग का हो, यह अपनी ऊर्ध्वगामी प्रकृति का त्याग कभी नही कर सकता। धर्म की आराधना सभी युगो मे होती है, सभी युगो मे पुण्यवान जीव धर्म की आराधना द्वारा आत्म-कल्याण करते है और कर्मों का क्षय करते है। मैने जिस विद्वान् का श्लोक अभी सुनाया है, जिसमे कहा गया है कि धर्म ने सन्यास ले लिया है, उसका अर्थ अपेक्षा से है अर्थात्—दूसरे युगो की अपेक्षा से कलियुग मे धर्माचरण बहुत कम है।

अन्त मे मेरा सब श्रावको को यही उपदेश है कि ससार की नश्वर क्रियाओ की, क्षणिक सुख देने वाले और परिणाम मे दुखावह विपयो की, और जड पदार्थो के ममत्व की उपेक्षा करके तुम धर्म की

आराधना करो। यदि तुम अपने दु खो की आत्यन्तिक निवृत्ति चाहते हो, मानव जीवन की सफलता के पक्षपाती हो, अपनी आत्मा के उत्थान के अभिलाषी हो, ज्ञान की गरिमा के समर्थक हो, आत्मतत्व की महिमा को मानने वाले हो, ससार की असारता को समझने वाले हो, प्रत्येक जीव की जान के महत्व को जानने वाले हो, सासारिक माया जाल की जघन्यता को पहचानने वाले हो, जीव के दु खो की कालिमा के कलक को परखने वाले हो और आत्म-शुद्धि की साधना के सन्मार्ग को सराहने वाले हो तो धर्म की धुरीणता को समझो, समझकर उसका मनन चिन्तन करो, धर्म को आत्मसात करो और धर्म के परमपावन पथ पर अपने कदम वढाओ। धर्म से तुम्हारी बुद्धि सुसस्कृत बनेगी, पावन बनेगी और निर्मल बनेगी। बुद्धि के नैर्मल्य से तुम्हारा अन्त - करण पाप की प्रवृत्तियो की ओर नही बढ सकेगा। पापके निरोध से कर्मो का निरोध होगा, कर्मो का आस्रव जीव मे रुक जायेगा। धीरे-धीरे जीव तपश्चर्या के आश्रय से कैवल्य की ओर अग्रगामी बनेगा और परमपद को प्राप्त करने मे समथ होगा। इस प्रकार तुम्हारे आत्मा के कल्याग को आधारशिला धर्माचरग है। यही कारण है और यही भावना है मेरी जिसको लेकर मैने अपने प्रवचन के आरभ मे धर्म की प्रशसा के और उत्तमता के विषय मे शास्त्र वचन सुनाया था कि इस नश्वर ससार मे जोव के कल्याण के लिये मात्र धर्म ही एक उत्कृष्ट मगल है जिसका आचरण अहिसा, सयम और तपश्चर्या द्वारा करना चाहिये।

२ **स्थान : जोधपुर, विषय : अहिसा**—सवत् १९९१ वे मे मुनि श्री चान्दमलजी महाराज ने "अहिसा महाव्रत" पर प्रवचन देते हुए कहा था

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविऊ न मरिज्जिऊ।

दशवैकालिकसूत्रम् ६।११

अर्थात्—ससार के सब जीव जीवित रहना चाहते है, कोई भी मरना नही चाहता।

सव्वे पाणा पिआउआ,
सुहसाया दुक्खपडिकूला,
अप्पियवहा पियजीविणो,

जीविउकामा,
सव्वेंसि जीवियं पियं,
नाइवाएज्ज कचण ॥

आचारांग, १।२।३

अर्थात्—सब प्राणियो को अपना जीवन प्यारा है। सुख सबको अच्छा लगता है, और दु ख बुरा। वध सबको अप्रिय है, और जीवन प्रिय। सब प्राणी जीना चाहते है। कुछ भी हो सबको जीवन प्रिय है। अत किसी भी प्राणी की हिसा मत करो। और शास्त्र का यह भी कथन है

आयओ बहिया पास।

आचारांग, १।३।३

अर्थात्—अपने समान ही बाहर के सब प्राणियो को देखो।

हिसा का अर्थ है पागलपन मे आकर दूसरे जीव के प्राणो का हरण करना। आज के युग मे ऐसे पागलो की कमी नही है। वास्तव मे तो उनके आयुष्य कर्म की प्रकृति ने, लोक भाषा मे ईश्वर ने या किसी भी और शक्ति ने सब प्राणियो को समान रूप से जीने का अधिकार दे रखा है, फिर किसी का क्या अधिकार है कि दूसरे प्राणियो को जो मूक है, निर्बल है या लाचार है उनकी अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिये, अपना पेट भरने के लिये या अपने दैनिक उपकरणो का निर्माण करने के लिये हत्या करे? ससार के सभी जीव भले ही उनमे से बहुतो की ज्ञानेन्द्रिया अधिक विकसित न हुई हो, तुम्हारी तरह ही सुख से जीना चाहते है, सुख से रहना चाहते है। और सुख से अपने वश की परम्परा को स्थायित्व देना चाहते है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार तुम्हारी आकाक्षाए है, इच्छाए है और अभिलापाए है, सुख से जीने की, रहने की और अपनी वश परम्परा की प्रगति देखने की। जिसको तुम अपने लिये उचित नही समझते, वह दूसरो के अनुकूल कैसे होगा? जिस बात की इच्छा तुम्हे खलती है वह दूसरो को सुखकर कैसे होगी? जिसकी कल्पना तुम्हारे लिये भयावह है उसकी कार्यरूप मे परिणति अन्य के लिये सुखावह कैसे बनेगी और जिस शस्त्र के प्रहार से तुम तिलमिला जाते हो, काँपने लगते हो और असह्य वेदना का अनुभव करते हो, उसका प्रहार दूसरे प्राणियो मे कितनी असह्य पीडा उत्पन्न

करता होगा—इसकी तुम कल्पना तो करके देखो। यदि तुम वास्तव मे इन्सान हो, राक्षस नही, तो प्राणी वध की कल्पना मात्र से तुम्हारा दिल दहलने लगेगा। परन्तु आज का इन्सान, इन्सान कहा रह गया है, वह तो हैवान से भी पापकर्म मे आगे बढना चाहता है। पौष्टिक आहार के लिये अन्य साधन—घी, दुग्ध और फल व सब्जियो के सद्भाव मे भी वह प्रतिदिन मासाहार के लिये असख्य प्राणियो का वध करता है। वस्त्र तथा अन्य परिधान के उपकरणो के उपयोग मे लाने के लिये असख्य जगली जानवरो की शिकार द्वारा, विषप्रयोग द्वारा, तथा जाल द्वारा हत्या करता है। वह अपने क्षणिक सुख के लिये दूसरे जीवो को प्राणो से वचित करता है। ठीक ही किसी विद्वान् ने कहा है :

एकस्य क्षणिका वृत्तिरन्य. प्राणैर्वियुज्यते।

आज के विज्ञान-युग का मानव अपने आपको बडा ही सुसभ्य, सुसस्कृत, प्रगतिशील और बौद्धिक विकास मे अग्रगण्य मानता है परन्तु मैं पूछता हू कि क्या अपने मिथ्यास्वार्थ के लिये दूसरे प्राणियो की हत्या करना सभ्यता है, क्या निरपराध और निरीह जीवो की हत्या द्वारा प्राप्त मास भोजन से अपने पेट को कबरिस्तान बनाना ऊची सस्कृति है, दूसरो के दु ख को अपने दु ख के समान न समझना क्या प्रगति की निशानी है, और अपने से निर्बल जीवो को गोली का निशाना बनाना, उनकी गर्दन पर छुरी चलाना, उनको विष देकर मार डालना, उनको हलाल करके मारना या झटके से क्या बौद्धिक विकास की चरम सीमा है? यदि यही सभ्यता है, सस्कृति है और बौद्धिक विकास है तो फिर असभ्यता, कुसस्कृति और बौद्धिक ह्रास क्या होगा? आधुनिक युग की सभ्यता और सस्कृति मे पनपे उन लोगो की बात तो छोडो जिनके सामने पुण्य पाप नामकी कोई वस्तु नही है। "खाओ, पीओ और इन्द्रियो को सन्तुष्ट करो" वे तो इस बात को मानने वाले हैं परन्तु ऐसे लोग जो अपने आपको धार्मिक कहलाने का दावा करते हैं और फिर भी मासाहार आदि से जीवहत्या को प्रोत्साहन देते हैं, उन पर बडी दया आती है। इन लोगो ने अपनी मान्यता की पुष्टि के लिये युक्तिया भी निकाल रखी हैं। ये लोग एक तीर से दो शिकार करने वाले हैं। वे इस बात को तो मानते हैं कि जीवहत्या से पाप होता है परन्तु उस पाप को धोने के लिये उनके पास बडे ही सरल

उपाय है। किसी नीर्थ मे गोता लगाया सारा पाप धुल गया। किसी धर्मस्थान पर देवता का नाम लेकर प्रसाद बाट दिया, तो सारा पाप समाप्त हो गया, किसी को मोटी दक्षिणा देकर घर मे किसी देवता के नाम का जाप करवा लिया तो बस सारा पाप झड गया। ऐसे लोग इस सत्य से सर्वथा अनभिज्ञ है कि जो पाप कर्म एक बार आत्मा से चिपक जाते है, उनका क्षय तो उनके भोगने से ही होता है। शास्त्र का कथन है·

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।

उत्तराध्ययन सूत्रम्, ४।३

अर्थात्—अपने किये हुए कर्मो से जीव तब तक छुटकारा नही पा सकता जब तक वह स्वय उन्हे भोग न ले।

ज जारिस पुव्वमकासि कम्मं,
तमेव आगच्छति सपराए।

सूत्रकृताग, १।५।२

अर्थात्—अतीत काल मे जैसा भी कुछ कर्म किया गया है, भविष्य मे वह उसी रूप मे भोगना पडता है।

सुखस्य दु·खस्य न कोऽपि दाता,
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अह करोमीति वृथाभिमान·,
स्वकर्म सूत्रग्रथितो हि लोक ॥

सु० र० भा० ९२,५७

अर्थात्—यह सोचना कि सुख या दु ख मुझे कोई दूसरा दे रहा है, यह बडी भारी भूल है, यह तो एक प्रकार की कुबुद्धि है। मैं सब कुछ करने वाला हू, यह मिथ्याभिमान है। ससार के सब प्राणी अपने-अपने किये हुए कर्मो के सूत्र मे गुथे हुए है। जैसा कर्म जिस जीव ने किया है उसका फल उसे भोगना पडता है।

केवल मात्र यही नही

येन यत्रैव भोक्तव्य सुखं वा दु खमेव वा।
स तत्र बद्ध्वा रज्ज्वे व बलादैवेन नीयते ॥

भर्तृहरिसुभाषितसग्रह, ६९२

अर्थात्—जिस जीव ने जो दु ख या मुख जहा भोगना होता है वह उसी स्थान मे बलात् ऐसे चला जाता है जैसे किसी ने उसे रस्सी से बान्ध कर वहा ला पटका हो। कर्मों की शक्ति उसे बाध्य कर देती है उसी प्रकार सुख और दु ख भोगने के लिये। एक जैनाचार्य के ग्रन्थ का प्रबन्ध मुझे इस प्रसग मे याद आ गया है जो आपके सामने प्रस्तुत करता हू।

"कई शताब्दी पूर्व की यह घटना है जबकि यातायात के साधन बहुत कम थे। सामान्य लोग प्राय पैदल ही लम्बे मार्ग तय किया करते थे। सौराष्ट्र मे सोमनाथ का एक बहुत पुराना ऐतिहासिक मन्दिर अब भी विद्यमान है। किसी भक्त के मन मे यह भावना जागृत हुई कि वह सोमनाथ की यात्रा करके भगवान् के दर्शन करे। वह चल पडा अकेला ही घर से। कई मास व्यतीत हो गये उसे चलते-चलते। केवल सौ मील चलना बाकी था। सूर्य अस्त होने जा रहा था और धर्म-यात्री थक कर चूर-चूर हो गया था। एक छोटा-सा गाव आया और यात्री ने वहा रात बिताने का निश्चय किया। एक किसान का घर था, गृह स्वामी से रात्रि निवास की प्रार्थना की और स्वीकृति मिल गई। उस घर मे मात्र किसान और उसकी पत्नी का निवास था। अतिथि यात्री को बडे प्रेम से भोजन खिला दिया गया और उसका यथासभव अतिथि सत्कार किया गया। रात्रि को किसान की पत्नी अपने अलग कमरे मे सो गई और किसान तथा यात्री अलग के एक कमरे मे अपनी चारपाई पर सोने के लिये लेट गये। किसान तो गहरी नीन्द मे सो गया किन्तु यात्री यद्यपि बहुत थका हुआ था किन्तु उसे नीन्द नही आ रही थी। वह प्रयत्न करने पर भी इस निद्राभाव का कारण नही समझ पा रहा था। रात के बारह बज गये। अचानक ही उसे उस कक्ष के द्वार खुलने की ध्वनि सुनाई दी जिसमे किसान की पत्नी सो रही थी। उसके कमरे मे सरसो के तेल का दीपक टिम-टिमा रहा था। यात्री ने अपने अन्धकारपूर्ण कमरे से किसान पत्नी को हाथ मे चारा काटने का गडासा लिये हुए खडे देखा। वह उसके कमरे की ओर मन्द और आहटहीन पदचाल से बढने लगी। यात्री भयभीत हो गया किन्तु अपनी खाट पर इस मुद्रा मे लेटा रहा जैसे वह गहरी नीन्द मे सो रहा हो। 'मुझे मारने के लिये वह मेरी खाट

के पास आयेगी, तो मै भाग खडा हो जाऊगा' ऐसा सोचकर वह पडा रहा। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि वह किसान पत्नी उसकी खाट की तरफ न बढकर अपने पति की खाट की तरफ बढी और एक ही झटके से गडासे से सोए हुए अपने पति की गर्दन अलग कर दी और गडासे को यात्री की खाट की ओर पटककर यह शोर मचाने लगी बडे जोर-जोर से कि इस अज्ञात यात्री ने मेरे पति की हत्या करदी है। गाव के लोग, पडौस के लोग सब एकत्रित हो गये और बहुत बुरी तरह से पीटने लगे यात्री को। जाट के एक सम्बन्धी ने उसी गडासे से जिससे किसान की हत्या की गई थी, यात्री के दोनो हाथ काट डाले। प्रात काल यात्री को धक्के देकर गाव से निकाल दिया गया। मार्ग मे किसी दयालु पुरुष ने यात्री के ही वस्त्र से उसके दोनो हाथो पर जिनसे रुधिर की धारा बह रही थी पट्टी बान्ध दी जिससे रक्त का स्राव रुक जाये। रोता चिल्लाता यात्री अपने यात्रा-मार्ग पर चलने लगा। उसने यह निश्चय किया कि अब वह किसी गाव मे रात्रि नही काटेगा। सायकाल हुआ तो वह एक वृक्ष के नीचे रात बिताने के लिये बैठ गया। पीडा के कारण तडपते हुए उसने कहा, 'हे सोमनाथ! मै तो तेरे दर्शनो के निमित्ति सैकडो कोस की यात्रा करके आ रहा था। यह तो शुभ कर्म था, क्या इस शुभ कर्म का यही फल मुझे मिलना था? यदि शुभकर्म का यही परिणाम है तो भविष्य मे तेरे दर्शनो के लिये कौन इतनी लम्बी यात्रा करेगा?' वृक्ष से आवाज आई

यात्रि! नि सन्देह तुम्हारा यह कर्म तो शुभ है किन्तु पूर्व भव मे जो तू पाप कर्म करके आया है उसका फल कौन भोगेगा? यह तुम्हारे पूर्व भव के पापकर्म का फल है। पूर्व जन्म मे पास के ही एक गाव मे तुम एक निर्धन परिवार मे पैदा हुए थे। माता-पिता मर चुके थे, केवल तुम और तुम्हारे बडे भाई बाकी बच गये थे सारे परिवार मे। निर्धनता के कारण दोनो मे से किसी का भी विवाह नही हो पाया था। दोनो ने दूध पीने के लिये एक बकरी पाल रखी थी। जब बकरी ने दूध देना बन्द कर दिया तो बडे भाई ने तुम से कहा 'अब यह बकरी दूध तो देती नही, अब इसकी सेवा करने से क्या लाभ? क्यो न इसे मारकर

इसके मास का आहार किया जाये ?' तुमने स्वीकृति दे दी। तुमने बकरी के कान पकडे और तुम्हारे बडे भाई ने गडासे के एक ही झटके से बकरी का गला काट डाला और उसके मास का आहार बनाया। समय आने पर दोनो कालग्रस्त हो गये। जिस घर मे तुम अतिथि थे वह घर तुम्हारे बडे भाई का और बकरी का उत्तर भव का घर है और तुम्हारा भी यह उत्तर भव है। इस भव मे, उस घर मे जो किसान था वह तुम्हारे पूर्व भव का बडा भाई था, पूर्व भव मे जो बकरी थी वह उसकी पत्नी थी। तुम्हारा जन्म तो यहा से बहुत दूर प्रान्त मे हुआ था किन्तु कर्मो की शक्ति तीर्थयात्रा के निमित्त से तुम्हे यहा खीच लाई थी। बकरी का गला तुम्हारे बडे भाई ने काटा था, उसका बदला तो बकरी के जीव ने लेना ही था, बकरी के जीव ने पत्नी के रूप मे अपने पूर्व जन्म के शत्रु का गला गडासे से काटकर बदला लिया और तुमने क्योकि बकरी के दोनो कान पकडे थे उसकी हत्या करवाने के लिये, इसलिये इस भव मे तुम दोनो हाथो से वचित कर दिये गये हो। पाप कर्मो का फल तो भोगना ही पडता है, चाहे इस भव मे भोगना पडे चाहे उत्तर भव मे।"

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे कोई कितनी ही तीर्थ यात्रा करले, तीर्थो मे गोते लगाले और पाप कर्म के निवारण के लिये दूसरो से पूजा पाठ करवा ले किन्तु कर्मो का जीव से जो चिपकाव हैं वह बिना उनका शुभाशुभ फल भोगे मिट नही सकता।

"जीओ और जीने दो" यह ईसाईयो का भी उपदेश है, किन्तु वे प्राय मासाहारी है। 'अहिसा परमोधर्म' यह बुद्ध का भी सन्देश है किन्तु अधिक सख्या मे बौद्ध भी मासाहारी है 'अहिसा परमो धर्म यह मनुमहाराज का भी सिद्धान्त है लेकिन मासाहार त्याग करने वालो की सख्या बहुत कम है, 'यदि वस्त्र पर रक्त का एक धब्बा भी लग जाये तो वह वस्त्र अपवित्र माना जाता है किन्तु जो लोग रक्त पीते है, जीवो का, उनका मन कैसे निर्मल रह सकता है ?' यह गुरू नानकदेव का भी उपदेश है किन्तु सिक्ख बडी संख्या मे मासाहारी है। केवल एक जैन शासन बाकी बचा हे जिसमे अहिसा के महत्व को सूक्ष्म रूप से समझा गया है और आचरण मे लाया गया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आजकल के नई रोशनी से प्रभावित जैन

के पास आयेगी, तो मै भाग खडा हो जाऊगा' ऐसा सोचकर वह पडा रहा। उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि वह किसान पत्नी उसकी खाट की तरफ न बढकर अपने पति की खाट की तरफ बढी और एक ही झटके से गडासे से सोए हुए अपने पति की गर्दन अलग कर दी और गडासे को यात्री की खाट की ओर पटककर यह शोर मचाने लगी बडे जोर-जोर से कि इस अज्ञात यात्री ने मेरे पति की हत्या करदी है। गाव के लोग, पडौस के लोग सब एकत्रित हो गये और बहुत बुरी तरह से पीटने लगे यात्री को। जाट के एक सम्बन्धी ने उसी गडासे से जिससे किसान की हत्या की गई थी, यात्री के दोनो हाथ काट डाले। प्रात काल यात्री को धक्के देकर गाव से निकाल दिया गया। मार्ग मे किसी दयालु पुरुष ने यात्री के ही वस्त्र से उसके दोनो हाथो पर जिनसे रुधिर की धारा बह रही थी पट्टी बान्ध दी जिससे रक्त का स्राव रुक जाये। रोता चिल्लाता यात्री अपने यात्रा-मार्ग पर चलने लगा। उसने यह निश्चय किया कि अब वह किसी गाव मे रात्रि नही काटेगा। सायकाल हुआ तो वह एक वृक्ष के नीचे रात बिताने के लिये बैठ गया। पीडा के कारण तडपते हुए उसने कहा, 'हे सोमनाथ! मै तो तेरे दर्शनो के निमित्ति सैकडो कोस की यात्रा करके आ रहा था। यह तो शुभ कर्म था, क्या इस शुभ कर्म का यही फल मुझे मिलना था? यदि शुभकर्म का यही परिणाम है तो भविष्य मे तेरे दर्शनो के लिये कौन इतनी लम्बी यात्रा करेगा?' वृक्ष से आवाज आई

यात्रि! नि सन्देह तुम्हारा यह कर्म तो शुभ है किन्तु पूर्व भव मे जो तू पाप कर्म करके आया है उसका फल कौन भोगेगा? यह तुम्हारे पूर्व भव के पापकर्म का फल है। पूर्व जन्म मे पास के ही एक गाव मे तुम एक निर्धन परिवार मे पैदा हुए थे। माता-पिता मर चुके थे, केवल तुम और तुम्हारे बडे भाई बाकी बच गये थे सारे परिवार मे। निर्धनता के कारण दोनो मे से किसी का भी विवाह नही हो पाया था। दोनो ने दूध पीने के लिये एक बकरी पाल रखी थी। जब बकरी ने दूध देना बन्द कर दिया तो बडे भाई ने तुम से कहा 'अब यह बकरी दूध तो देती नही, अब इसकी सेवा करने से क्या लाभ? क्यो न इसे मारकर

इसके मास का आहार किया जाये ?' तुमने स्वीकृति दे दी। तुमने बकरी के कान पकडे और तुम्हारे बडे भाई ने गडासे के एक ही झटके से बकरी का गला काट डाला और उसके मास का आहार बनाया। समय आने पर दोनो कालग्रस्त हो गये। जिस घर मे तुम अतिथि थे वह घर तुम्हारे बडे भाई का और बकरी का उत्तर भव का घर है और तुम्हारा भी यह उत्तर भव है। इस भव मे, उस घर मे जो किसान था वह तुम्हारे पूर्व भव का बडा भाई था, पूर्व भव मे जो बकरी थी वह उसकी पत्नी थी। तुम्हारा जन्म तो यहा से बहुत दूर प्रान्त मे हुआ था किन्तु कर्मो की शक्ति तीर्थयात्रा के निमित्त से तुम्हे यहा खीच लाई थी। बकरी का गला तुम्हारे बडे भाई ने काटा था, उसका बदला तो बकरी के जीव ने लेना ही था, बकरी के जीव ने पत्नी के रूप मे अपने पूर्व जन्म के शत्रु का गला गडासे से काटकर बदला लिया और तुमने क्योकि बकरी के दोनो कान पकडे थे उसकी हत्या करवाने के लिये, इसलिये इस भव मे तुम दोनो हाथो से वचित कर दिये गये हो। पाप कर्मो का फल तो भोगना ही पडता है, चाहे इस भव मे भोगना पडे चाहे उत्तर भव मे।"

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि चाहे कोई कितनी ही तीर्थ यात्रा करले, तीर्थो मे गोते लगाले और पाप कर्म के निवारण के लिये दूसरो से पूजा पाठ करवा ले किन्तु कर्मो का जीव से जो चिपकाव है वह बिना उनका शुभाशुभ फल भोगे मिट नही सकता।

"जीओ और जीने दो" यह ईसाईयो का भी उपदेश है, किन्तु वे प्राय मासाहारी है। 'अहिंसा परमोधर्म' यह बुद्ध का भी सन्देश है किन्तु अधिक सख्या मे बौद्ध भी मासाहारी है 'अहिसा परमो धर्म यह मनुमहाराज का भी सिद्धान्त है लेकिन मासाहार त्याग करने वालो की सख्या बहुत कम है, 'यदि वस्त्र पर रक्त का एक धब्बा भी लग जाये तो वह वस्त्र अपवित्र माना जाता है किन्तु जो लोग रक्त पीते है, जीवो का, उनका मन कैसे निर्मल रह सकता है ?' यह गुरू नानकदेव का भी उपदेश है किन्तु सिक्ख बडी संख्या मे मासाहारी है। केवल एक जैन शासन बाकी बचा हे जिसमे अहिंसा के महत्व को सूक्ष्म रूप से समझा गया है और आचरण मे लाया गया है। यह दुर्भाग्य की बात है कि आजकल के नई रोशनी से प्रभावित जैन

नवयुवको मे भी अहिसा धर्म की भावना शैथिल्य पकडती जा रही है। उन्हे समझाने बुझाने की और सही भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट धर्म मार्ग पर लाने की आवश्यकता है। इस काम को उनके माता पिता अपना आदर्श उनके सामने रखकर कर सकते है।

हिसा का अर्थ केवल अपने हाथ से किसी जीव का वध करना नही किन्तु जो मन से किसी प्राणी का बुरा चाहता है, वह भी हिसक है, जो हिसा करने वाले का वाणी से अनुमोदन करता है वह भी हिसक है, जो हिंसा करने वाले को प्रोत्साहन देता है वह भी हिंसा का भागी है और जो जीवो का मास वाजार से खरीद कर खाता है वह भी समान रूप से हिसक है क्योकि वह शिकारी को और बुचर को जीव हत्या के लिए प्रेरित करता है। विवेकशील व्यक्ति को जो पाप से वचना चाहता है, जो पापकर्मबन्ध से छुटकारे की अभिलाषा रखता है, जो ससार के जन्म मरण के या आवागमन के चक्र को मिटाना चाहता है।

जो ससार के विषयो के विष को त्याग कर शुभ कर्मरूपी अमृत का पान करना चाहता है, जो अज्ञान के अन्धकार से भाग कर प्रकाश मे आना चाहता है, जो सम्यग् दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र के रत्नो की किरणो से अपने जीवन को आलोकित करना चाहता है, जो असयत जीवन के भयानक विपाक का प्रत्याख्यान करना चाहता है, जो कर्मों के आवरण से निवृत्ति चाहता है, जो शुभ कर्मो की निर्जरा द्वारा मोक्षपथ पर पैर रखना चाहता है, उसे चाहिये कि वह मन से, वाणी से और कर्म से न तो स्वय किसी जीव की हिसा करे, न किसी से करवाए और न ही किसी को करते हुए देख कर उसका अनुमोदन करे। उसे चाहिये कि वह आगम के निम्नलिखित वचन को सदा ध्यान मे रखे

> तुमसि नाम तं चेव जं हतव्व ति मन्नसि।
> तुमसि नाम त चेव ज अज्जावेयव्वं ति मन्नसि।
> तुमंसि नाम त चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नति।
>
> आचारांग सूत्रम् १५।५

अर्थात्—जिसे तू मारना चाहता है वह तू ही है। जिसे तू शासित

करना चाहता है, वह तू ही है। जिसे तू परिताप देना चाहता है, वह तू ही है।

३. स्थान नागौर, विषय मोह का बन्धन सवन् २००० मे नागौर नगर मे अपने चातुर्मासिक अवस्थान के पावन मौके पर 'मोह के बन्धन पर' अपना प्रवचन देते हुए मुनि श्री चान्दमलजी महाराज ने कहा था

'मोहमूलाणि दुक्खाणि'।

ऋषिभाषितानि, २।७

अर्थात्—ससार मे प्राणी जिन अनेक प्रकार के दु खो मे आक्रान्त होते है, उनका मूल कारण मोह की भावना है।

आठ कर्मो मे से चौथा स्थान मोहनीय कर्म का है। मोह एक प्रकार की उन्मादजनक मदिरा है जो जीव को विवेकशून्य वना देती है। यह मोहनीय कर्म शास्त्र मे दो प्रकार का माना है · दर्शन मोहनीय कर्म और चरित्र मोहनीय कर्म। सम्यग्दर्शन के प्रादुर्भाव मे विकृति को उत्पन्न करना, दर्शन मोहनीय कर्म का काम है। यह भी तीन प्रकार का है मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक् मिथ्यात्व मोहनीय और सम्यक्त्व मोहनीय। इस प्रकार चारित्र मोहनीय कर्म के भी अनेक भेद है जिनका विस्तृत विवरण उत्तराध्ययन सूत्र के ३३ वे अध्याय मे मिलता है। हा, तो मैने प्रवचन के आरम्भ मे कहा था कि मानव जीवन के दु खो का मूल कारण मोह की भावना है। शास्त्र का तो यहा तक कहना है कि वास्तव मे जन्म और मृत्यु का कारण भी मोह की भावना है जिसकी अभिव्यक्ति आचाराग सूत्र मे इस प्रकार की है

मोहेण गब्भं मरणाई एइ।

आचारांग सूत्र, ५।३

इसके अतिरिक्त शास्त्र का कथन है

रागो य दोसो वि य कम्मवीय,
कम्मं च मोहप्पभव वदन्ति।

उत्तराध्ययन, ३२।७

अर्थात्—राग और द्वेष तो कर्म के बीज है और मोह से कर्म की उत्पत्ति होती है।

कम्म च जाईमरणस्स मूल,
दुक्खं च जाईमरणवयति ॥

वही०

कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही वास्तविक दुख है।

यह मेरी पत्नी है, ये मेरे बच्चे है, ये मेरे माता पिता है, ये मेरे है, मैं इनका हू, इस प्रकार की आसक्ति राग कहलाती है। इस राग से प्रेरित होकर आत्मा अपनो के पालन के लिये, पोपण के लिये और रक्षा के लिये अपनी शक्ति से भी वाहर जाकर अनेक प्रकार के कर्म वान्धता है। दूसरे शब्दो मे, वह राग रूपी कर्म के बीज बोता है। ये मेरे नही है, ये मेरी आकाक्षाओ के विरुद्ध चलने वाले है, ये मुझे हानि पहुचाने वाले है, ये मेरे सगे सम्वन्धियो से शत्रुता रखने वाले है ऐसी भावना कुछ लोगो के प्रति रखता हुआ व्यक्ति उनको अपना शत्रु मानने लगता है और उनके प्रति सदा मन मे द्वेष की भावना रखता है। मात्र द्वेष ही नही रखता किन्तु शस्त्र आदि के प्रहार से उनका हनन या ताडन करता हुआ पाप कर्म बान्धता है। इस प्रकार पापरूपी कर्म का द्वेष बीज बन जाता है। इन सारे राग-द्वेप से जनित पाप कर्मो की भूमिका मोह के विकार से जन्म भी लेती है और पनपती भी है। राग-द्वेष के वशीभूत होकर, मोह विकार से जन्म लेने वाले पाप कर्मो के परिणामस्वरूप ही जीव जन्म-मरण के चक्कर मे पडता है और जन्म-मरण की शृ खला मे बन्धना ही दुख है। इस प्रसग मे तृष्णा का उल्लेख करना भी परमावश्यक है। तृष्णा और मोह का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित माना जा सकता है। तृष्णा मोह से उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है। शास्त्र मे वलाका का उदाहरण देते हुए लिखा है

जहा य अडप्पभवा बलागा,
अंडंबलागप्पभवं जहा य।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा,
मोहं च तण्हाययणं वयंति ॥

उत्तराध्ययन सूत्रम्, ३२।६

अर्थात्—जिस प्रकार वलाका-वगुली अण्डे से उत्पन्न होती है और अण्डा वलाका से, ठीक इसी प्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिसके प्रति हमारा मोह होता है उसके प्रति हमारी तृष्णा उत्तरोत्तर वढती ही जाती है। उदाहरण के लिये, धनको ही ले लीजिये। सौ से हजार की, हजार से लाख की, लाख से करोड की तृष्णा लोगो के जीवन मे हम प्रतिदिन देखते है। तृष्णा की सीमा अनन्त है। इसी भाव को किसी विद्वान् ने विस्तृत रूप मे प्रस्तुत करते हुए कहा है

> निस्वो वष्टि शत शतीदशशत लक्ष सहस्राधिप.
> लक्षेश क्षितिराजतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति।
> चक्रेश सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति,
> ब्रह्मा विष्णुपद हरि शिवपद तृष्णावधि को गतः॥

अष्टरत्नम्, ६

अर्थात्—जो सर्वथा धनहीन है वह सौ रुपये की तृष्णा करता है, सौ वाला एक हजार की, एक हजार वाला लाख की, लखपति राजा बनने की, राजा चक्रवर्ती सम्राट् बनने की, चक्रवर्ती देवताओ का राजा इन्द्र बनने की, इन्द्र ब्रह्मा के स्थान को पाने की, ब्रह्मा विष्णु के पद को पाने की और विष्णु शिव पद को प्राप्त करने की तृष्णा से व्याकुल रहते है। तृष्णा की सीमा को आज तक किसने पार किया है ?

यहा तक कि

> बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकित शिरः।
> गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

भर्तृहरिसुभाषितसग्रहः, १५६

अर्थात्—राग और द्वेष तो कर्म के बीज है और मोह से कर्म की उत्पत्ति होती है।

कम्म च जाईमरणस्स मूल,
दुक्ख च जाईमरणवयति ।।

वही०

कर्म ही जन्म-मरण का मूल है और जन्म-मरण ही वास्तविक दु ख है।

यह मेरी पत्नी है, ये मेरे बच्चे है, ये मेरे माता पिता है, ये मेरे है, मैं इनका हू, इस प्रकार की आसक्ति राग कहलाती है। इस राग से प्रेरित होकर आत्मा अपनो के पालन के लिये, पोषण के लिये और रक्षा के लिये अपनी शक्ति से भी बाहर जाकर अनेक प्रकार के कर्म बान्धता है। दूसरे शब्दो मे, वह राग रूपी कर्म के बीज बोता है। ये मेरे नहीं है, ये मेरी आकाक्षाओ के विरुद्ध चलने वाले है, ये मुझे हानि पहुचाने वाले है, ये मेरे सगे सम्बन्धियो से शत्रुता रखने वाले है ऐसी भावना कुछ लोगो के प्रति रखता हुआ व्यक्ति उनको अपना शत्रु मानने लगता है और उनके प्रति सदा मन मे द्वेष की भावना रखता है। मात्र द्वेष ही नही रखता किन्तु शस्त्र आदि के प्रहार से उनका हनन या ताडन करता हुआ पाप कर्म बान्धता है। इस प्रकार पापरूपी कर्म का द्वेष बीज बन जाता है। इन सारे राग-द्वेष से जनित पाप कर्मो की भूमिका मोह के विकार से जन्म भी लेती है और पनपती भी है। राग-द्वेष के वशीभूत होकर, मोह विकार से जन्म लेने वाले पाप कर्मो के परिणामस्वरूप ही जीव जन्म-मरण के चक्कर मे पडता है और जन्म-मरण की शृ खला मे बन्धना ही दु ख है। इस प्रसग मे तृष्णा का उल्लेख करना भी परमावश्यक है। तृष्णा और मोह का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित माना जा सकता है। तृष्णा मोह से उत्पन्न होती है और मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है। शास्त्र मे वलाका का उदाहरण देते हुए लिखा है

जहा य अडप्पभवा बलागा,
अंडबलागप्पभवं जहा य।
एमेव मोहाययण खु तण्हा,
मोहं च तण्हाययणं वयंति ।।

उत्तराध्ययन सूत्रम्, ३२।६

अर्थात्—जिस प्रकार बलाका-बगुली अण्डे से उत्पन्न होती है और अण्डा बलाका से, ठीक इसी प्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से।

यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिसके प्रति हमारा मोह होता है उसके प्रति हमारी तृष्णा उत्तरोत्तर बढती ही जाती है। उदाहरण के लिये, धनको ही ले लीजिये। सौ से हजार की, हजार से लाख की, लाख से करोड की तृष्णा लोगो के जीवन मे हम प्रतिदिन देखते हैं। तृष्णा की सीमा अनन्त है। इसी भाव को किसी विद्वान् ने विस्तृत रूप मे प्रस्तुत करते हुए कहा है

नि स्वो वष्टि शत शतीदशशत लक्ष सहस्राधिपः
लक्षेश क्षितिराजतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति।
चक्रेश सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदं वाञ्छति,
ब्रह्मा विष्णुपद हरि शिवपद तृष्णावधिं को गतः॥

अष्टरत्नम्, ६

अर्थात्—जो सर्वथा धनहीन है वह सौ रुपये की तृष्णा करता है, सौ वाला एक हजार की, एक हजार वाला लाख की, लखपति राजा बनने की, राजा चक्रवर्ती सम्राट् बनने की, चक्रवर्ती देवताओ का राजा इन्द्र बनने की, इन्द्र ब्रह्मा के स्थान को पाने की, ब्रह्मा विष्णु के पद को पाने की और विष्णु शिव पद को प्राप्त करने की तृष्णा से व्याकुल रहते है। तृष्णा की सीमा को आज तक किसने पार किया है ?

यहा तक कि

बलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरंकित शिरः।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते॥

भर्तृहरिसुभाषितसग्रहः, १५६

अर्थात्—वृद्धावस्था मे मुख पर झुरिया पड जाती है, सिर के बाल सफेद हो जाते है और शरीर के सारे अग शिथिल पड जाते हैं किन्तु अकेली तृष्णा ही नवयुवति बनी रहती है।

तृष्णा की सीमा जैसा कि ऊपर कहा गया है असीम है। धन के अतिरिक्त, स्त्री की तृष्णा, पुत्र की तृष्णा, पौत्र की तृष्णा, विषयो

के उपभोग की तृष्णा, अलभ्य वस्तु को पाने की तृष्णा, काम की तृष्णा, नाम की तृष्णा, पृथ्वी की तृष्णा, कीर्ति की तृष्णा, आदि तृष्णा का क्षेत्र बहुत विशाल है। उक्त सभी प्रकार की तृष्णाए कर्मवन्ध का कारण है और कर्मबन्ध की परिणति दु ख मे होती है। तृष्णा का सहायक, पोपक और मूलभूत कारण मोह तो होता ही है। मोह से उत्पन्न इस तृष्णाजन्य दु ख का अन्त कैसे करना चाहिये इसके लिये शास्त्रकार कहते है

दुक्खं हयं जस्स न होई मोहो,
मोहो हओ जस्स न होई तण्हा।
तण्हा हया जस्स न होई लोहो,
लोहो हओ जस्स ण किंचणाइ ॥

उत्तराध्ययन सूत्रम्, ३२।८

अर्थात्—जो मोह से मुक्त हो जाता है, उसका दु ख भी नष्ट हो जाता है। जो तृष्णा से मुक्ति पा लेता है उसका मोह नष्ट हो जाता है। जिसको लोभ नही होता, उसकी तृष्णा नष्ट हो जाती है और जो सर्वथा परिग्रह रहित है उसका लोभ नष्ट हो जाता है।

उपर्युक्त शास्त्र वचन से यह स्पष्ट है कि तृष्णा के नाश के लिये लोभ का अभाव आवश्यक है और लोभ के अभाव के लिये परिग्रह का त्याग आवश्यक है। यह परिग्रह क्या है ?

मूर्च्छा परिग्रह ।

तत्वार्थसूत्रम्, ७।१२

पदार्थों के प्रति आसक्ति रखना मूर्छा है।

यह मेरी पत्नी है, यह मेरा पुत्र है, यह आसक्ति परिग्रह ही तो है। यह परिग्रह

आरंभ पूर्वको परिग्रह ।

सूत्रकृतागचूर्णि, १।२।२

हिंसा को जन्म देने वाला है, हिंसा से कर्मवन्ध होता है और कर्मवन्ध का परिणाम दु ख है।

साराश यह कि दु ख की मूल कडी मोह की भावना है। इसीलिये

मैने प्रवचन के आरम्भ मे कहा था कि ससार के समस्त दुख मोह विकार से उत्पन्न होते है।

इस मोह की परिभाषा शास्त्रकारो ने—

मोहो विण्णाण विवच्चासो।

निशीथचूर्णि, २६

इस प्रकार की है। अर्थात्—विवेक के अभाव को ही मोह कहते हैं। व्यक्ति अविवेक के कारण ही पुत्र, दारा, भाई, वन्धु आदि के मोहजाल मे बन्धा हुआ अनेक प्रकार के दुख भोग रहा है। ममता का मन पर आवरण इतना गाढा होता है कि वह अपनी ममता के पात्र जीवो के बिना अपना जीवन निस्सार समझता है और अपने जीवन की सफलता उनकी ममता को आत्मसात करना ही समझता है। वास्तव मे यह उसकी अज्ञानता है, भूल है और विवेकहीनता है। यहा ससार मे कोई किसी का नही है, जीव अकेला ही आता है और अकेला ही चला जाता है। न कोई उसके साथ आने वाला है और न ही उसके साथ कोई जाने वाला है। दुख का कारण ममता कैसे बन जाती है, इस प्रसग पर मुझे एक कहानी स्मरण हो आई है

"प्राचीन युग मे किसी नगर मे एक सेठ रहते थे जिनके पास सम्पत्ति तो पर्याप्त थी किन्तु उस सम्पत्ति का भविष्य मे उपभोग करने वाले पुत्र का अभाव था। उन्होने अनेक देवी-देवताओ की मनौतिया मानी थी किन्तु उनकी इच्छा सफल नही हो पा रही थी। उनके नगर मे बाहर का एक प्रसिद्ध ज्योतिषी आ गया। सेठजी उसकी सेवा मे उपस्थित हुए और दक्षिणा देकर अपने पुत्र के अभाव के दुख को व्यक्त किया। ज्योतिषी ने भविष्यवाणी करते हुए कहा

'सेठजी! पुत्र का योग तो आपके यहा है किन्तु वह उत्पन्न होकर मृत्यु को प्राप्त होगा'।

'तो क्या उसकी जीवन रक्षा का कोई उपाय नही है'?

सेठ साहब ने बडी उत्कण्ठा से पूछा।

'हा है, यदि तुम बारह वर्ष तक उसका मुह न देखो तो वह जीवित रह सकता है'।

'मै बारह वर्ष के लिये व्यापार निमित्त कही बाहर चला जाऊगा'। सेठ साहब ने सुख का श्वास लेते हुए उत्तर दिया।

कुछ ही दिनो मे सेठानी गर्भवती हो गई। दम्पति हर्ष से फूले न समाये। जब प्रसव का समय आया तो सेठ साहब पत्नी की सारी घर पर व्यवस्था करके व्यापार के लिये दिसावर को चल दिये। उनके जाने के कुछ दिन वाद ही पुत्र का जन्म हुआ। सेठ साहब को दिसावर मे पुत्र-जन्म का शुभसमाचार भेज दिया गया। सेठ साहब उल्लास से भर गये इस चिरकाक्षित शुभ समाचार से। समय आगे वढता गया। सेठ साहव दुगने उत्साह से व्यापार के काम मे जुट गये और उन्होने बहुत धन कमाया। घर से पत्नी और पुत्र की कुशलता कामना के समाचार मिलते रहते थे। समय को वीतते क्या लगता है, वारह वर्ष व्यतीत हो गये और लडका मा की ममता की छत्रछाया मे पलता हुआ बडा हो गया। अब सेठानी बडी वेचैन रहती थी सेठ साहब की प्रतीक्षा मे। वह चाहती थी कि वे शीघ्र ही आकर पुत्रमुख दर्शन के सौभाग्य को प्राप्त करे। सेठ साहब भी पुत्रमुख देखने के लिये तरस रहे थे किन्तु व्यापार का जाल इतना उलझा हुआ था कि उसे सुलझाना उनके लिये कठिन हो रहा था। इसी उलझन मे उनको बारह वर्ष से छै मास और अधिक लग गये। इधर कुछ दिनो से सेठ साहब का कोई पत्र नही था। वह कई बार उन्हे लिख चुकी थी कि शीघ्रातिशीघ्र घर आये। आखिर निराश होकर उसने सोचा 'अब तो मेरा बेटा बडा हो गया है और समझदार भी है, क्यो न इसको साथ लेकर मैं ही सेठ साहब के पास पहुच जाऊ' ? वह अपने बेटे को साथ लेकर जहा उसके पिता रहते थे, उस नगर को चलदी और घर की देखरेख नौकरो पर छोड दी।

उधर सेठ साहब ने सोचा, 'अब पत्र डालने की क्या आवश्यकता है। मै सीधा घर को ही चल देता हू जिससे जल्दी से जल्दी अपने पुत्र के मुख को देख सकू'। 'सेठ साहब भी चल दिये। कर्म गति वडी विचित्र होती है। काफी मार्ग तय कर चुके थे। सूर्य अस्त होने को था, वे मार्ग मे आने वाले एक नगर की धर्मशाला के कमरे मे ठहर गये। उनके पास वाले कमरे मे उनकी पत्नी भी अपने पुत्र के साथ पहले ही पहुच कर विश्राम कर रही थी। हेमन्त ऋतु थी, वडे ही कडाके की सर्दी पड रही थी। कर्म की गति वडी वलवान है। अचानक ही लडके को सर्दी लग गई और नमोनिया हो गया, वडी परेशानी हुई सेठानी को, वहा

कौन उसकी सहायता करने वाला था ? कौन किसी वैद्य को बुलाकर लाने वाला था। लडका तडप-तडप कर मृत्यु का ग्रास बना। सेठानी जोर-जोर से विलाप करने लगी।

पास वाले कमरे मे सेठ साहब पडे-पडे सोच रहे थे, 'यह क्या मुसीबत मेरे साथ वाले कमरे मे ठहरी हुई है। इस स्त्री के रोने से यह स्पष्ट है कि इसका लडका मर गया है, किन्तु मर गया तो क्या, मरना तो ससार मे सभी ने है। इसके रोने से कोई वह वापिस तो आ नही जायेगा। व्यर्थ मे चिल्ला-चिल्लाकर मेरी भी नीद हराम कर रही है। यात्रा से थक कर शरीर चूर-चूर हो रहा है, इच्छा थी कि यहा रात को विश्रान्ति पाकर कल पुन घर चलने के लिये शक्ति प्राप्त करूगा किन्तु यह चुडैल पता नही रोगी लडके को लेकर कहा से यहा मुझे दुखी करने के लिये आ टपकी। जाता हू और जाकर इसे डाट पिलाता हू कि वह इस प्रकार चिल्ला-चिल्ला कर दूसरो की नीद खराब न करे'।

हमारे देश मे बहुत से प्रान्तो मे यह परम्परागत रीति है कि जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो स्त्रिया रोती भी है और रोने के साथ-साथ विलाप भी करती है। विलाप का अर्थ है कि मृतक से सम्बन्ध रखने वाली घटनाओ को और मृतक के गुणो को वाणी द्वारा व्यक्त भी करती है। सेठानी के विलाप के ये शब्द, 'यदि मैं तुम्हे लेकर तेरे पिता से मिलने के लिये और तुम्हे मिलाने के लिये घर से न चलती तो क्यो तुम्हे सरदी लगती, क्यो तुम्हे नमोनिया होता और क्यो तुम्हारी यह अकाल मे मृत्यु होती'? सेठ साहब के कानो मे ये शब्द उस समय पडे जब वे उस रोती हुई स्त्री को मध्य रात्रि मे डाटने के लिये अपने कमरे से अभी-अभी बाहर निकले थे। विलाप करती हुई स्त्री के शब्द सेठजी की जीवनी से मिलते-जुलते थे। सेठ साहब की स्वार्थ की भावना करुणा मे परिवर्तित होने लगी। उन्होने शीघ्र ही जाकर जब पास के कमरे मे प्रवेश किया तो वे एकदम सहम गये, घबराये और व्याकुल हो गये यह देखकर कि वह उन्ही की सेठानी थी और मरने वाला प्राणी उन्ही का सुपुत्र था। अब तक तो उनकी पत्नी रो रही थी, अब वे भी बिलख-बिलख कर रोने लगे। 'यह मेरी पत्नी है और यह मेरा पुत्र है' इस मोह-ममता की भावना ने उन्हे व्याकुल

कर दिया, बेचैन कर दिया, और अत्यन्त दुखी बना दिया। जब तक 'मै और मेरी' की भावना नही थी तब तक सेठजी आपत्तिग्रस्त पडौसिन को गाली दे रहे थे, उसे कोस रहे थे और बडी-बडी ज्ञान की बाते कर रहे थे किन्तु जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि 'यह तो मेरी ही पत्नी है और मेरा ही पुत्र है' तो वे दुखी हो गये। इस कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि यह मेरे का ममत्व या मोह ही वास्तव मे आत्मा के दु ख का कारण है।

यदि हम यह कह दे कि मोह ससार का ही दूसरा नाम है तो कोई असगत बात नही होगी। ससार तभी तक है जब तक मोह है। जब मोह से निवृत्ति हो जायेगी, तब ससार से भी निवृत्ति हो जायेगी। जब तक मोह है तब तक कर्मो का बन्धन निरन्तर चलता रहेगा और कर्मो के परिणाम दु ख का प्रादुर्भाव भी समाप्त नही होगा। अतएव दु खो के मूल कारण मोह को, नष्ट करना होगा। मोह का नाश विवेक द्वारा ही सभव है, अन्यथा नही। मोहग्रस्त व्यक्ति को सोचना चाहिये कि—

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
तवानन्तानि जातानि, कस्य ते कस्य वा भवान्॥

सुभाषितावलि, ३२।८८

अर्थात्—जन्म जन्मान्तरो की परम्परा मे अब तक हजारो तेरे माता पिता हो चुके है, और सैकडो पुत्र और पत्निया हो चुकी है। इतने हो चुके है कि जिनको अनन्त की सख्या दी जा सकती है। बताओ, किसकी ममता तुम्हारे प्रति स्थिर रही है और तुम्हारी ममता किनके प्रति स्थिर रह सकती है ?

और भी—

रात्रि. सैव पुन स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो—
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत् क्रिया.।
व्यापारै पुनरुक्तमुक्तविषयैरेवविधेनामुना,
संसारेण कदर्थिता कथमहो मोहान्न लज्जामहे॥

भर्तृहरि, ३, ४५

अर्थात्—वे ही राते, वे ही दिन बार-बार आते है, कोई उनमे

विशिष्टता नही, आकर्षण नही, इस वात को हम अच्छी प्रकार जानते हुए भी पुरुषार्थी होने का दभ करते हुए निरन्तर अनेक प्रकार के कर्मो को आरम्भ करते है और उनके सपादन मे निरत है। वार-वार उन्ही विषयो को भोगकर परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के सासारिक दु खो से अभिभूत होकर भी मोह के कारण हमे तनिक भी लज्जा नही आती।

इस प्रकार की विवेक की चिन्तन धारा से ही हम मोह से मुक्ति पाकर दु खो का अन्त कर सकते है।

४. स्थान · किशनगढ़, विषय: कर्ता और भोक्ता: सवन् २०१२ मे, किशनगढ की भूतपूर्व स्टेट मे चातुर्मास के पवित्र अवसर पर स्वामी चान्दमलजी महाराज द्वारा दिये गये प्रवचन का सार।

'जीव को ससार मे कौन दु ख देता है और सुखी वनाता है' इस पर व्याख्यान देते हुए मुनि श्री चान्दमलजी महाराज ने कहा था—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ॥

उत्तराध्ययन, २०।३७

अर्थात्—मानव जीवन मे आने वाले सुखो का और दु खो का करने वाला या लाने वाला और उन दु खो-सुखो को भोगने वाला स्वय आत्मा ही है। यदि आत्मा सदाचार मे प्रवृत्त है तो मित्र के समान है और यदि दुराचार मे प्रवृत्त है तो वह अपना शत्रु स्वय ही है।

भ्रान्ति की भावना मे भटकने वाले ससार के लोग मन्दिरो मे, मस्जिदो मे, गिरजाघरो मे, गुरुद्वारो मे, महापुरुषो की और महर्षियो की समाधियो पर और तीर्थो पर जाकर सुख की याचना करते है और दु ख के विनाश की प्रार्थना करते है। उक्त सभी स्थानो पर न कोई सुख को वरसाने वाला है और न ही दु ख को निवारण करने वाला है। वस्तु तो वास्तव मे अपने अन्दर ही विद्यमान है किन्तु उसकी खोज की जा रही है, वाहर के ससार मे। खोज करने वाला जीव स्वय ही सुख का भी कारण है और दु ख का भी किन्तु अज्ञान के आवरण के कारण वह स्वय के स्वरूप को देख नही पा रहा है। जैसे दर्पण पर धूल पडने से दर्पण की प्रतिविम्वित करने वाली शक्ति या चमक के सद्भाव मे भी दर्पण देखने वाले की छाया दिखाई नही देती,

कर दिया, बेचैन कर दिया, और अत्यन्त दुखी बना दिया। जब तक 'मैं और मेरी' की भावना नही थी तब तक सेठजी आपत्तिग्रस्त पडौसिन को गाली दे रहे थे, उसे कोस रहे थे और बडी-बडी ज्ञान की बाते कर रहे थे किन्तु जब उन्हे यह ज्ञात हुआ कि 'यह तो मेरी ही पत्नी है और मेरा ही पुत्र है' तो वे दुखी हो गये। इस कहानी से स्पष्ट हो जाता है कि यह मेरे का ममत्व या मोह ही वास्तव मे आत्मा के दु ख का कारण है।

यदि हम यह कह दे कि मोह ससार का ही दूसरा नाम है तो कोई असगत बात नही होगी। ससार तभी तक है जब तक मोह है। जब मोह से निवृत्ति हो जायेगी, तब ससार से भी निवृत्ति हो जायेगी। जब तक मोह है तब तक कर्मो का बन्धन निरन्तर चलता रहेगा और कर्मो के परिणाम दु ख का प्रादुर्भाव भी समाप्त नही होगा। अतएव दु खो के मूल कारण मोह को, नष्ट करना होगा। मोह का नाश विवेक द्वारा ही सभव है, अन्यथा नही। मोहग्रस्त व्यक्ति को सोचना चाहिये कि—

मातापितृसहस्राणि पुत्रदारशतानि च।
तवानन्तानि जातानि, कस्य ते कस्य वा भवान्॥

सुभाषितावलि, ३२।८८

अर्थात्—जन्म जन्मान्तरो की परम्परा मे अब तक हजारो तेरे माता पिता हो चुके है, और सैकडो पुत्र और पत्निया हो चुकी है। इतने हो चुके है कि जिनको अनन्त की सख्या दी जा सकती है। बताओ, किसकी ममता तुम्हारे प्रति स्थिर रही है और तुम्हारी ममता किनके प्रति स्थिर रह सकती है?

और भी—

रात्रिः सैव पुन स एव दिवसो मत्वा मुधा जन्तवो—
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तत् क्रिया॰।
व्यापारै पुनरुक्तमुक्तविषयैरेवविधेनामुना,
संसारेण कदर्थिता॰ कथमहो मोहान्न लज्जामहे॥

भर्तृहरि, ३, ४५

अर्थात्—वे ही राते, वे ही दिन बार-बार आते है, कोई उनमे

विशिष्टता नही, आकर्षण नही, इस बात को हम अच्छी प्रकार जानते हुए भी पुरुपार्थी होने का दभ करते हुए निरन्तर अनेक प्रकार के कर्मो को आरम्भ करते है और उनके सपादन मे निरत है। बार-बार उन्ही विषयो को भोगकर परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के सासारिक दु खो से अभिभूत होकर भी मोह के कारण हमे तनिक भी लज्जा नही आती।

इस प्रकार की विवेक की चिन्तन धारा से ही हम मोह से मुक्ति पाकर दु खो का अन्त कर सकते है।

४. स्थान : किशनगढ, विषय कर्ता और भोक्ता : सवत् २०१२ मे, किशनगढ की भूतपूर्व स्टेट मे चातुर्मास के पवित्र अवसर पर स्वामी चान्दमलजी महाराज द्वारा दिये गये प्रवचन का सार।

'जीव को ससार मे कौन दु ख देता है और सुखी बनाता है' इस पर व्याख्यान देते हुए मुनि श्री चान्दमलजी महाराज ने कहा था—

अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं च, दुप्पट्ठिय सुप्पट्ठिओ ॥

उत्तराध्ययन, २०।३७

अर्थात्—मानव जीवन मे आने वाले सुखो का और दु खो का करने वाला या लाने वाला और उन दु खो-सुखो को भोगने वाला स्वय आत्मा ही है। यदि आत्मा सदाचार मे प्रवृत्त है तो मित्र के समान है और यदि दुराचार मे प्रवृत्त है तो वह अपना शत्रु स्वय ही है।

भ्रान्ति की भावना मे भटकने वाले ससार के लोग मन्दिरो मे, मस्जिदो मे, गिरजाघरो मे, गुरुद्वारो मे, महापुरुषो की और महर्षियो की समाधियो पर और तीर्थो पर जाकर सुख की याचना करते है और दु ख के विनाश की प्रार्थना करते है। उक्त सभी स्थानो पर न कोई सुख को बरसाने वाला है और न ही दु ख को निवारण करने वाला है। वस्तु तो वास्तव मे अपने अन्दर ही विद्यमान है किन्तु उसकी खोज की जा रही है, बाहर के ससार मे। खोज करने वाला जीव स्वय ही सुख का भी कारण है और दु ख का भी किन्तु अज्ञान के आवरण के कारण वह स्वय के स्वरूप को देख नही पा रहा है। जैसे दर्पण पर धूल पडने से दर्पण की प्रतिबिम्बित करने वाली शक्ति या चमक के सद्भाव मे भी दर्पण देखने वाले की छाया दिखाई नही देती,

इसी प्रकार जीव पर कर्मो की धूल जमने के कारण जीव अपने स्वरूप को देख नही सकता। यही कारण है कि वह अपने द्वारा ही किये गये पाप कर्म के परिणाम दु ख को उत्पन्न करता है और फिर उसके भोगने के लिये विवश हो जाता है। यहा यह बात ध्यान रखने योग्य है कि जीव कर्मो का उपार्जन करने मे तो स्वतन्त्र है किन्तु उनके फल को भोगने मे परतन्त्र है। जब जीव या आत्मा की वृत्ति शुद्ध होती है तो वह शुभ कर्मो की ओर प्रवृत्त होता है और परिणाम-स्वरूप सुख प्राप्त करता है। अपने भाग्य का उत्थान अथवा अपने भाग्य का पतन, दोनो का उत्तरदायी वही है। उसका भाग्य विधाता उससे अन्य कोई शक्ति नही है, वह स्वय है। जो आत्मा हिसा के दुष्कर्म मे प्रवृत्त है असत्य भाषण मे निरत है, चौर्य कर्म करता है, कामी है, दुश्चरित्र है परिग्रह के लिये घोर से घोर पाप कर्म करता है, इन्द्रियो के विषयो का दास है, क्रोधादि कषायो से आक्रान्त है, मिथ्याज्ञान मे चूर है, जडता मे भरपूर है और सत्कर्मो से दूर है, वह जो कर्म भो करेगा उसका परिणाम दु ख होगा। जो आत्मा पच महाव्रतो का पालन करता है, मन सहित सब इन्द्रियो पर जिसका नियन्त्रण है, क्रोधादि कषायो के आक्रमण को जिसने विफल बना दिया है, सम्यग्ज्ञान का जिसके पास प्रकाश है, विवेक का जिसके पास आभास है और सत्कर्मों के सौरभ का जिसमे उल्लास है, वह जो कर्म भी करेगा उसका परिणाम सुख होगा, आनन्द होगा और शान्ति होगी। आत्मा का यह आनन्द सकारण है। वास्तव मे दु ख आत्मा का स्वभाव नही है। दु ख तो कर्मबन्ध है। यह कर्मो का क्षय करके ही मिटाया जा सकता है। कर्मो का सम्बन्ध जीव के साथ सयोग जन्य है, बाह्य है और कृत्रिम है। वह आत्मा का स्वरूप नही है। शास्त्रकार कहते है

एगो मे सासदो अप्पा, णाणदंसणलक्खणो।
सेरा मे बाहिरा भावा, सव्वे सजोगलक्खणा॥

नियमसार, ६६

अर्थात्—ज्ञानदर्शन स्वरूप मेरा आत्मा ही शाश्वत तत्व है, इससे भिन्न जितने भी—राग, द्वेष, कर्म शरीर आदि भाव है, वे सब सयोग-जन्य बाह्य भाव है, मेरे नही हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि यदि आत्मा ज्ञानदर्शन-स्वरूप है और राग द्वेषादि भाव उसके अपने नही है, तो वह उन भावो को अपने पास क्यो आने देता है, उनसे दूर ही क्यो नही रहता । इस प्रश्न का उत्तर देते हुए शास्त्रकार कहते है

जीवो परिणमदि जदा,
सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।
सुद्धेण तदा सुद्धो,
हवदि हि परिणामसब्भावो ।।

प्रवचनसार, ११६

अर्थात्—आत्मा परिणमन स्वभाव वाला है, इसलिये जब वह शुभ भाव मे परिणत होता है तो शुभ हो जाता है और जब अशुभ भाव मे परिणत होता है तब अशुभ हो जाता है । जब वह शुद्ध भाव मे परिणत होता है तब वह शुद्ध होता है ।

अशुभकर्म या पाप कर्म मे निरत आत्मा दु ख को जन्म देता है और शुभ या सत्कर्म करने वाला आत्मा सुख देने वाली परिस्थितिया उत्पन्न करता है । आगमकार इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते है

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा में कूड़सामली ।
अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पा में नंदणं वणं ।

उत्तराध्ययन, २०।३६

अर्थात्—पाप मे प्रवृत्त होने वाली मेरी आत्मा ही वैतरणी नदी और कूट-शाल्मली वृक्ष के समान दु ख देने वाली है । यही मेरी आत्मा जब सत्कर्म मे प्रवत्त होती है तो कामधेनू के समान सब इच्छाए पूर्ण करने वाली और नन्दनवन के समान आनन्द और सुख देने वाली है ।

द्वैतवादी वेदान्त दर्शन के मत मे तो ज्ञानाधिकरण आत्मा के दो भेद स्वीकार किये हैं जीवात्मा और परमात्मा । वहा जीवात्मा पापकर्म मे प्रवृत्त होता है, परमात्मा नही किन्तु अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन मे तो जीव को भी "ब्रह्म" या परमात्मा माना है । जैन दर्शन की मान्यता अद्वैतवादियो से कुछ मिलती-जुलती है । हम पहले इस सत्य का प्रतिपादन करके आये है कि आत्मा स्वय मे शुद्ध, बुद्ध और

निरजन स्वरूप है किन्तु आत्मा की परिणमन की प्रवृत्ति के कारण वह अशुभ कर्म मे और शुभ कर्म मे, दोनो मे प्रवृत्त हो जाता है। इस परिणमन की प्रवृत्ति के अतिरिक्त जैन दर्शन मे आत्मा के प्रकारो की मान्यता का भी सिद्धान्त विद्यमान है। यह प्रकार-मान्यता द्वैतवादी एव अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन के दोनो सिद्धान्तो से भिन्न प्रकार की है। जैन शास्त्र के अनुसार

तिपयारो सो अप्पा, पर-मन्तर बाहिरो दु हेऊण।

मोक्षपाहुड़, ४

अर्थात्---आत्मा के तीन प्रकार है . परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा।

अन्तर-बहिरजप्पे, जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ, सो उच्चई अन्तरगप्पा॥

नियमसार, १५०

जो अन्दर एव बाहिर के जल्प-वचन विकल्प मे रहता है, वह बहिरात्मा है, जो किसी भी जल्प मे नही रहता, वह अन्तरात्मा कहलाता है। इन तीनो मे से जो बहिरात्मा है, उसी की प्रवृत्ति दुष्कर्मों की ओर होती है, इसलिये उसे हेय माना है। विवेक के उपक्रम के अनुसार शास्त्र विहित साधना के द्वारा साधक को बहिरात्मा से अन्तरात्मा की ओर, और अन्तरात्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर होना चाहिये।

इस आध्यात्मिक विकास की पद्धति पर उत्तरोत्तर प्रगतिशील तभी बना जा सकता है जब जीव विवेक द्वारा यह समझने लगे कि

अन्नो जीवो, अन्न सरीर।

सूत्रकृताग, २।१।९

अर्थात्—वह (जीव) और है और उसका शरीर और है। दोनो भिन्न पदार्थ है, एक नही।

अन्ने खलु कामभोगा, अन्नो अहमसि।

वही० २।१।१३

अर्थात्—शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श आदि कामभोग के पदार्थ और है और आत्मा और है।

इस प्रकार की विवेकपूर्ण भावना मे यदि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने मे सफल हो जाता है, तो उसका सासारिक दु खो से छुटकारा हो जाता है अन्यथा

पर अप्पा जउमणहि तहु संसार भमेई।

योगसार, २२

यदि वह ससार के पदार्थों को आत्मस्वरूप समभता रहा तो अनन्त काल तक ससार मे जन्म-मरण के चक्कर मे घूमता रहेगा और नारकीय दु ख भोगता रहेगा। यही कारण है कि जैनागम दु ख ग्रस्त मानवो को जागृत करने के लिये वार वार कह रहे है—

पुरिसा। अप्पाणमेव अभिणिगिज्भ,
एव दुक्खा पमुच्चसि।

आचारांग, १।३।३

हे मानव, तुम अपने आप को ही सयत करो, स्वय के सयमन से ही तुम्हारी दु खो से मुक्ति हो सकेगी।

५ स्थान अमरावती, विषय मोक्षमार्ग सवत् २०१७ मे अमरावती नगर मे, चातुर्मास के शुभ समय मे "सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग"—इस पर अपना प्रवचन देते हुए स्वामीजी चान्दमलजी महाराज साहब ने फरमाया था

"नाणं च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एय मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छति सोगइ॥"

उत्तराध्ययन सूत्र, २८।३

अर्थात्—ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप—इनके मार्ग पर जो चलते है या इनका जो आचरण करते है वे जीव ही मोक्ष की प्राप्ति करने मे समर्थ होते हैं। इसका कारण वताते हुए शास्त्रकार कहते है

"ना दसणिस्स नाणं,
नाणेन विना न हुति चरणगुणा।

निरजन स्वरूप है किन्तु आत्मा की परिणमन की प्रवृत्ति के कारण वह अशुभ कर्म मे और शुभ कर्म मे, दोनो मे प्रवृत्त हो जाता है। इस परिणमन की प्रवृत्ति के अतिरिक्त जैन दर्शन मे आत्मा के प्रकारो की मान्यता का भी सिद्धान्त विद्यमान है। यह प्रकार-मान्यता द्वैतवादी एव अद्वैतवादी वेदान्त दर्शन के दोनो सिद्धान्तो से भिन्न प्रकार की है। जैन शास्त्र के अनुसार

तिपयारो सो अप्पा, पर-मन्तर बाहिरो दु हेऊणं।

मोक्षपाहुड़, ४

अर्थात्---आत्मा के तीन प्रकार है परमात्मा, अन्तरात्मा और बहिरात्मा।

अन्तर-बहिरजप्पे, जो वट्टइ सो हवेइ बहिरप्पा।
जप्पेसु जो ण वट्टइ, सो उच्चई अन्तरगप्पा॥

नियमसार, १५०

जो अन्दर एव बाहिर के जल्प-वचन विकल्प मे रहता है, वह बहिरात्मा है, जो किसी भी जल्प मे नही रहता, वह अन्तरात्मा कहलाता है। इन तीनो मे से जो बहिरात्मा है, उसी की प्रवृत्ति दुष्कर्मों की ओर होती है, इसलिये उसे हेय माना है। विवेक के उपक्रम के अनुसार शास्त्र विहित साधना के द्वारा साधक को बहिरात्मा से अन्तरात्मा की ओर, और अन्तरात्मा से परमात्मा की ओर अग्रसर होना चाहिये।

इस आध्यात्मिक विकास की पद्धति पर उत्तरोत्तर प्रगतिशील तभी बना जा सकता है जब जीव विवेक द्वारा यह समझने लगे कि

अन्नो जीवो, अन्नं सरीर।

सूत्रकृताग, २।१।९

अर्थात्—वह (जीव) और है और उसका शरीर और है। दोनो भिन्न पदार्थ है, एक नही।

अन्ने खलु कामभोगा, अन्नो अहमंसि।

वही० २।१।१३

अर्थात्—शब्द, रस, रूप, गन्ध, स्पर्श आदि कामभोग के पदार्थ और हैं और आत्मा और है।

इस प्रकार की विवेकपूर्ण भावना मे यदि जीव अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने मे सफल हो जाता है, तो उसका सासारिक दुखो से छुटकारा हो जाता है अन्यथा

पर अप्पा जउमणहिं तहु ससार भमेई।

योगसार, २२

यदि वह ससार के पदार्थो को आत्मस्वरूप समझता रहा तो अनन्त काल तक ससार मे जन्म-मरण के चक्कर मे घूमता रहेगा और नारकीय दुख भोगता रहेगा। यही कारण है कि जैनागम दुख ग्रस्त मानवो को जागृत करने के लिये वार वार कह रहे है—

पुरिसा। अप्पाणमेव अभिणिगिज्झ,
एव दुक्खा पमुच्चसि।

आचाराग, १।३।३

हे मानव, तुम अपने आप को ही सयत करो, स्वय के सयमन से ही तुम्हारी दुखो से मुक्ति हो सकेगी।

५ स्थान अमरावती, विषय मोक्षमार्ग सवत् २०१७ मे अमरावती नगर मे, चातुर्मास के शुभ समय मे "सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग "—इस पर अपना प्रवचन देते हुए स्वामीजी चान्दमलजी महाराज साहब ने फरमाया था

"नाणं च दसण चेव चरित्त च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता जीवा गच्छति सोगइ॥"

उत्तराध्ययन सूत्र, २८।३

अर्थात्—ज्ञान, दर्शन चारित्र और तप—इनके मार्ग पर जो चलते है या इनका जो आचरण करते है वे जीव ही मोक्ष की प्राप्ति करने मे समर्थ होते है। इसका कारण वताते हुए शास्त्रकार कहते है

"ना दसणिस्स नाणं,
नाणेन विना न हुंति चरणगुणा।

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि अमोक्खस्स निव्वणं ॥"

वही०, २८।३०

अर्थात्—सम्यग्दर्शन के अभाव मे ज्ञान प्राप्त नही होता, ज्ञान के अभाव मे चारित्र के गुणो की उत्पत्ति नही होती, गुणो के अभाव मे मोक्ष की प्राप्ति सभव नही और मोक्ष के अभाव मे निर्वाण-शाश्वत् परमानन्द—प्राप्त नही हो सकता।

जिसके द्वारा तत्व का यथार्थ बोध होता है वह सम्यग् ज्ञान कहलाता है। तत्वार्थ का यथार्थ बोध होने के पश्चात् अटूट श्रद्धा ही सम्यग्दर्शन है। जिस धार्मिक आचार-सहिता के द्वारा अन्त करण की प्रवृत्तियो पर नियत्रण रखा जाता है और जीवन की सर्वतोमुखी विकास की योजना को कार्यान्वित किया जाता है, उसे सम्यक्चारित्र कहते हैं। इसे हम जिनशासन की परम पावन त्रिवेणी कह सकते है, जिसके सगम पर स्नान करने से साधक सर्वथा निर्विकार बन सकता है। इसी भाव को आगम मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है

"नाणेण जाणइ भावे, दसणेण य सद्दहे।
चरित्तेणे निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झई ॥"

उत्तराध्ययन, २८।३५

अर्थात्—ज्ञान से भावो—पदार्थो का सम्यग् बोध होता है, दर्शन से सम्यग्बोध द्वारा जाने हुए पदार्थो मे अटूट श्रद्धा पैदा होती है, सम्यक्चारित्र से आने वाले कर्मो का निरोध होता है और तप के द्वारा आत्मा शुद्ध हो जाती है।

मोक्षपथ पर आगे बढने वाले साधक के लिये आत्मशुद्धि अत्यावश्यक है।

यद्यपि जैनधर्म मे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र का अपना-अपना अलग-अलग महत्व है, अलग-अलग उपादेयता है, किन्तु सम्यग्दर्शन पर अधिक बल दिया गया है जिसकी झलक उत्तराध्ययन सूत्र के "नादसणिस्स नाण"—इस चरण से मिलती है। यदि सम्यग्दर्शन नही है तो ज्ञान, अज्ञान मे परिवर्तित हो जाता है और बडी से बडी साधना और अनुष्ठान मिथ्यात्व की क्रिया मे बदल जाते है। साधक को भले ही कितनी ही ज्ञान की अनुभूति हो जाये

किन्तु यदि उसकी सहायक या उसको शक्ति देने वाली अटूट श्रद्धा या प्रतीति का अभाव है तो ज्ञान कदापि जीव का कल्याण करने वाला नही बन सकता । तात्विक दृष्टि से यदि देखा जाये तो ज्ञात होता है कि जीव के स्वस्थिति से गिरने का और परस्थिति मे पतन का मुख्य कारण ही सम्यग्दर्शन का अभाव है। सम्यक्त्व का ही दूसरा नाम श्रद्धा है

"यथार्थतत्वश्रद्धा सम्यक्त्वम् ।"

जैनसिद्धान्तदीपिका, ५।३

अर्थात्—जीवादि तत्वो की यथार्थ श्रद्धा करना ही सम्यग्दर्शन है ।

"भावेण सद्दहतस्स, सम्मत्तं तं वियाहिय ।"

उत्तराध्ययन, २८।१५

जब तक जीव मे श्रद्धा का अभाव है, वह न तो अपने वास्तविक स्वरूप का ही चिन्तन कर सकता है, न ही उसको अपनी लौकिक और धार्मिक मर्यादाओ का, अधिकारो का, और विवेकपूर्ण आचारो का ही ज्ञान हो सकता है और न ही वह जगत् के अनन्तानन्त जड एव चेतन द्रव्यो के अस्तित्व पर ही विश्वास करने मे समर्थ हो सकता है । श्रद्धाहीन, इस प्रकार के मिथ्यादर्शी आत्मा से ससार के और अपने कल्याण की क्या आशा की जा सकती है ?

सम्यग्ज्ञान के लिये जितना महत्व सम्यग्दर्शन का है उतना ही सम्यक्चारित्र के लिए भी सम्यग्दर्शन का महत्व है ।

"नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं ।"

उत्तराध्ययन, २८।२९

अर्थात्—सम्यग्दर्शन के अभाव मे सम्यक्चारित्र का कोई महत्व नही है ।

साधक की बडी से बडी साधना और बडा से बडा त्याग—सब व्यर्थ है यदि वह मिथ्यादृष्टि से दूषित है । इस सत्य की पुष्टि करते हुए शास्त्रकार कहते है

"कुणमाणो वि निवित्तिं,
परिच्चयंतोऽवि सयण-धण-भोए ।

दितोऽवि दुहस्स उरं,
मिच्छादिट्ठी न सिज्झई उ ॥"

आचारागनिर्युक्ति, २२०

अर्थात्—निवृत्ति की साधना मे निरत साधक भले ही अपने प्यारे सगे-सबधियो को, धन सम्पत्ति के ऐश्वर्य को और विविध प्रकार के भोग-विलासो का परित्याग कर दे, अपने शरीर पर आने वाले अनेक कष्टो को सहन करले, किन्तु यदि वह मिथ्या दृष्टि है, उसकी श्रद्धा विपरीत-पथ-गामिनी है, तो वह कदापि अपनी साधना मे सिद्धि प्राप्त नही कर सकता

"दसणवओ हि सफलाणि,
हुति तवनाणचरणाइं ।

आचारांगनिर्युति, २३१

अर्थात्—चाहे कितनी ही महती तपश्चर्या हो, कितना ही गभीर ज्ञान हो और कितना ही ऊचा चारित्रबल हो किन्तु मबकी सफलता सम्यग्दर्शन मे ही निहित है।

सम्यग्दृष्टि द्वारा किया गया तपश्चरण, सयम, साधना और चारित्र-पालन ही आत्मा के कर्मो की निर्जरा मे समर्थ होते है। इस भाव को समयसार की गाथा मे इस प्रकार व्यक्त किया गया है

"ज कुणदि सम्मदिट्ठी, तं सव्व णिज्जरणिमित्त।"

समयसार, १९३

सम्यग्दर्शन की महिमा का गान करते हुए शास्त्र का तो यहा तक कथन है

"जीवविमुक्को सवओ, दसणमुक्को य होई चल सवओ"।
सवओ लोयअपुज्जो, लोउत्तरयम्मि चल सवओ" ॥

भावपाहुड, १४३

अर्थात्—जीव से रहित शरीर शव-मुर्दा है। इसी प्रकार सम्यग्-दर्शन से विहीन व्यक्ति चलता-फिरता शव है। जिस प्रकार शव का लोक मे अनादर होता है, उसे घृणा की दष्टि से देखा जाता है ठीक इसी तरह उस चल शव का धर्म-साधना के क्षेत्र मे भी अनादर होता है।

सम्यग्दृष्टि के लिए समयसार की तो यहा तक उक्ति है

"जह विसमुवभुंजतो, वेज्जो पुरिसो ण मरणमुवयादि ।
पुग्गलकम्मस्सुदयं, तह भुजदि णेव वज्झए णाणी ।।"

समयसार, १९५

अर्थात्—जिस प्रकार कोई वैद्य औषधि के रूप मे विष खाता हुआ भी विष के सेवन से मृत्यु को प्राप्त नही होता, इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि आत्मा कर्मोदय के कारण सुख-दु ख का अनुभव करते हुए भी उसमे वद्ध नही होता ।

सभवत सम्यग्ज्ञान की इसी महानता को और उपादेयता को ध्यान मे रखकर शास्त्र मे कहा है

"दसणभट्टो भट्टो, दंसणभट्टस्स नत्थि निव्वाण ।"

भक्तप्रतिज्ञा, ६६

अर्थात्—जो सम्यग्दृष्टि दर्शन से भ्रष्ट हो गया है वही वास्तव मे भ्रष्ट है, पतित है, क्योकि दर्शन से भ्रष्ट जीव का मोक्ष नही हो सकता ।

सम्यग्दृष्टि आत्मा कदाग्रह से, सकीर्णता से, हठ से, और अहकार से रहित होता है । वह तो सत्य का अनुयायी होता है, सबसे उच्च स्थान सत्य को देता है और सत्य की ही आराधना करता है और सत्य का ही आचरण करता है । कोई भी ससार की शक्ति, चाहे वह कितनी ही भयानक और यातनापूर्ण क्यो न हो, उसे सत्य के मार्ग से विचलित नही कर सकती । वह तो सत्य को भगवान् मानता है । उसे तो आत्म-स्वरूप की और आत्मा के सहज आनन्द की अनुभूति होने लगती है और इस कारण वह ससार के क्षणिक सुखदायी विषयो को उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगता है । योग शास्त्र मे सम्यक्त्व के पाच भूषण माने गये है, जो सम्यक्त्व को शक्ति प्रदान करते है और उसकी शोभा को वढाते है । वे है

"स्थैर्यं प्रभावना भक्ति , कौशलं जिनशासने ।
तीर्थसेवा च पचापि, भूषणानि प्रचक्षते ।।"

योगशास्त्र, २।१६

(१) धर्म की स्थिरता, (२) धर्म की प्रभावना, प्रवचनादि द्वारा

उसका जनता मे प्रचार,(३) जिनशासन मे दृढ श्रद्धा, (४)अज्ञानान्धकार मे भटकने वाले आत्माओ को धर्म की महानता समझाने की निपुणता और (५) चार तीर्थो—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—की सेवा, ये पाच सम्यक्त्व के भूषण कहे गये है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन आध्यात्मिक विकास एव मोक्ष की साधना का मूल मत्र है किन्तु इसका वास्तविक स्वरूप समझने के लिए इसके आठ-आठ अगो को समझना अत्यत आवश्यक है। वे आठ अग है

"निस्संकिय-निक्कखिय-निव्वित्तिगिच्छा- ृढदिट्ठी य।
उवबूह-थिरीकरणे-वच्छल्लपभावणे अट्ठ"॥

उत्तराध्ययन सूत्र, २८।३१

अर्थात्—(१) नि शकित, (२) नि काक्षित, (३) निर्विचिकित्सा, (४) अमूढदृष्टित्व, (५) उपबृ हण, (६) स्थिरीकरण, (७) वात्सल्य, (८) प्रभावना—ये सम्यग्दर्शन के आठ अग हैं।

१. **नि शंकित**—वीतराग और सर्वज्ञ के वचन कभी मिथ्या नही होते। मिथ्यात्व का कारण कषाय होते है, वे कषायो से रहित होते है। उनके वचनो मे पूर्ण श्रद्धा रखना नि शकित अग है।

२. **नि·कांक्षित**—प्रलोभन मे पडकर दूसरे के मत की और ससार के सुखो की काक्षा न करना—नि काक्षित दूसरा अग है।

३. **निर्विचिकित्सा**—सन्त जन शरीर को धारण करके भी वासना से मुक्त होते है। वे देह का सस्कार नही करते। उनके मैले शरीर को देख कर किसी प्रकार की ग्लानि न करना—निर्विचिकित्सा है।

४. **अमूढदृष्टित्व**—साधक अपनी प्रज्ञा को सर्वदा जागृत रखता है और स्वय को कभी प्रमादग्रस्त नही होने देता, यही अमूढदृष्टित्व है।

५ **उपबृ हण**—जो व्यक्ति विशेष ज्ञानवान् है, धर्म का पालन करने वाले है, सयम की आराधना करने वाले है, अनेक गुणो से सपन्न हैं, समाज, राष्ट्र की सेवा करने वाले है, प्रशसा द्वारा उनके उत्साह को बढाना और उनको सब प्रकार से सहयोग प्रदान करना—उपबृ हण नाम का अग है।

६. **स्थिरीकरण**—कोई साधक प्रलोभन के कारण या किसी कष्ट विशेष के कारण यदि अपने सम्यक्त्व के मार्ग से गिरता हुआ मिले तो उसे पुन धर्म मे स्थिर करना—स्थिरीकरण है।

७. वात्सल्य—ससार मे यो तो अनेक प्रकार के रिश्ते हैं, नाते हैं किन्तु स्वधर्मीपन का नाता सबसे ऊचा है। ऐसा जानकर अपने स्वधर्मी भाई-बहन के साथ वैसे ही स्नेह रखना जैसे गाय अपने बछडे के साथ रखती है।

८. प्रभावना—वीतराग भगवान् द्वारा प्रतिपादित और निर्दिष्ट धर्म के प्रभाव को फैलाना, उसका प्रचार करना, उसकी महानता को, उसके गुणो को और उसकी विशिष्टता की छाप को लोगो के मनपर अकित करना—प्रभावना नाम का आठवा सम्यक्त्व का अग है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शन की दृढता से, सम्यग्ज्ञान के आलोक से और सम्यक्चारित्र की चारुता से ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है।

तत्वार्थाधिगम का सूत्र

"सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः ॥"

इसी सत्य की सार्थकता को सिद्ध करता है।

समाधि मरण

भवितव्य भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः।

जो कुछ होना होता है वह हो कर ही रहता है, क्योकि जीव के कर्मो की गति का विधान ही ऐसा है।

यह घटना सवत्-२०२५, (सन्-२५ १० ६८) कार्तिक सुदी चतुर्थी, शुक्रवार के दिन पौने पाच बजे की है। स्वामी जी श्री चादमलजी महाराज बम्बई के विलेपारले स्थानक मे बडे आनद से चल-फिर रहे थे कि अचानक ही उनका पैर फिसल गया और वे बाए करवट फरश पर गिर पडे। सहचर सतो ने शीघ्र ही उनकी सेवा मे उपस्थित होकर उन्हे बिठाया और खडे करने का भी प्रयत्न किया, किंतु बाया पैर शक्तिहीन होने से शरीर के भार को सहन नही कर सका। समीपस्थ पाट पर उन्हे लेटा दिया गया और बाये हाथ को ऊचा-नीचा करने से कोई विषमता ज्ञात नही हुई। पक्षाघात की शका थी जिसका पहले भी एक बार सवत् २०२३ को अलसूर बाजार-बेंगलोर-के चातुर्मास मे हल्का-सा आक्रमण हो चुका था। वाणी की अस्पष्टता से सदेह उत्पन्न हो गया। डाक्टर वाडीलाल भाई, जो कि स्थानकवासी श्रावक भी थे, को बुलाया गया। सब प्रकार से स्वास्थ्य

मवधी परीक्षण करने के पश्चात् डाक्टर साहब ने पक्षाघात न होने का अपना निर्णय दिया और कहा कि चक्कर आ जाने के कारण सभवत मस्तिष्क की कोई नस प्रभावित हो गई है, इसी कारण यह विपमता प्रतीत हो रही है। एक दूसरे डाक्टर ने सेहत की विषमता का कारण हड्डी की चोट को बताया। उस समय मुनि श्री चान्दमल जी का रक्तचाप १७० था।

रात्रि का प्रथम चरण था। मुनि श्री चान्दमल जी ने प्रतिक्रमण लेटे-लेटे ही किया, नित्य का स्तोत्र-पाठ पूर्ववत् किये। अपना लेटना खलने लगा तो कहने लगे, "लोग कहते है कि मैं चलने फिरने मे असमर्थ हू। मुझे जरा खडा तो करो, मैं चल कर बताता हू। मुझे शरीर मे कही भी तो पीडा का अनुभव नही हो रहा है।" सतो ने डाक्टर द्वारा बताई गई हड्डी की चोट का जिक्र करके उन्हे लेटे रहने का ही परामर्श दिया। रात के दस बजे डाक्टर साहब पुन पधारे। सब देखा गया। सब ठीक था किंतु रक्तचाप २०० था। बढ गया था। चौविहार सागारी सथारा के कारण, रात को और उपचार सभव नही था।

आगामी दिवस २६ अक्टूबर, १९६८ ज्ञानपचमी, शनिवार को प्रात डाक्टर के देखने पर पता चला कि रक्तचाप २१० तक बढ चुका था। उपचार आरभ हुआ रक्तवाप, पक्षाघात और हड्डी की चोट—सभी की शाति के लिए इजेक्शन, केप्सूल आदि दिये गये। पूर्व के पक्षाघात के समय जैसे अन्न का त्याग करवाया गया था वैसा अब भी किया गया।

कादावाडी सघ के आग्रह से २७ अक्टूबर को हड्डी के परीक्षण के लिए एक्सरे की मशीन स्थानक मे मगवाई गई। एक्सरे के पश्चात् डाक्टरो ने मुनि श्री चान्दमलजी को नानावटी होस्पिटल मे प्रविष्ट कराने का परामर्श दिया। पहले तो सहचर सतो ने ऐसा करने से सकोच किया क्योकि मुनि श्री की विमारी की स्थिति गभीर थी किंतु डाक्टरो और सघ की सम्मति को हितकर जानकर स्वीकृति दे दी। रुग्णावस्था मे पाट पर लेटे-लेटे स्वामीजी श्री चादमलजी महाराज ने अपने पास खडे डाक्टरो से कहा

"हमने ऐसा सुना है कि डाक्टर लोग 'जव तक श्वास तव तक आश'—इस उक्ति मे विश्वास करते हुए रोगी का उसके अतिम क्षण

तक इलाज करते है और रोगी को ऐसा कभी नही कहते है कि स्थिति निराशाजनक है। गृहस्थो के लिए तो इस प्रकार का उपचार चल सकता है किंतु हम तो साधु हैं, अतिम श्वास से पहले तो अतिम यात्रा के लिए कई प्रकार की धार्मिक तैयारिया भी करते है, कही हमे आप उनसे वचित न कर देना।"

"स्वामीजी! आप निश्चित रहे। अवसर होगा तब हम आपको सूचना दे देगे।"

डाक्टरो ने स्वामीजी को विश्वास दिलाया।

२७ तारीख को, रविवार के दिन स्वामीजी को नानावटी अस्पताल मे प्रविष्ट करा दिया गया। डाक्टरो द्वारा उपचार के घोरतम प्रयत्न करने पर भी जब स्वामीजी ने अपने मे सुधार के लक्षण न देखे तो उन्होने "सथारे" की इच्छा व्यक्त की किंतु डाक्टर अपने सिद्धात को कहा छोडने वाले थे। स्वामीजी अपना अतिम निर्णय कर चुके थे। उन्होने अपनी अस्पष्ट भाषा मे नवकार मत्र, क्षमापना-पाठ आलोचना-पाठ, आहार-त्याग के पाठ और समाधि-पाठ को बारबार पढना आरभ कर दिया था। उनका दाया हाथ ऊचा उठा हुआ था जो निरतर माला पूर्ववत् फेर रहा था।

२६ तारीख को डाक्टरो ने स्थिति निराशाजनक बताई। काव्य-तीर्थ पडित मुनि श्री जीतमलजी महाराज साहब, वर्तमान आचार्य-प्रवर ने सब की सहमति से स्वामीजी को सथारा पचखाने के लिए मुनि श्री लालचदजी महाराज साहब को कहा। इस समय घाटकोपर, बबई के प्रमुख श्रावक श्री शातिलाल मकनजी शाह, जो कि स्वामीजी के परम श्रद्धालु श्रावक थे, उपस्थित थे। महामदिर 'जोधपुर' के श्रावक-प्रमुख श्री शातिलालजी धाडीवाल भी अकस्मात् इसी समय यहा पहुच गये। अधेरी, बबई मे चातुर्मास-स्थित महासतीजी भी दर्शनार्थ आई हुई थी। इन सब के अतिरिक्त और भी बहुत से श्रावक-श्राविकाए उपस्थित थे। यह प्रात काल का समय था। चतुर्विध सघ की साक्षी से सथारा पचखाते हुए पडित मुनि श्री लालचदजी महाराज ने स्वामीजी से भावपूर्ण शब्दो मे कहा

"आपने अपने मन से तो शास्त्र विधि-विधान से युक्त सथारा पहले ही कर लिया है किन्तु अब हम आप से क्षमायाचना पूर्वक मूल-

गुण-उत्तरगुणो के आलोचना के सहित, तीन करण, तीन योग से अठारह पाप और चारो आहारो का आजीवन त्याग करने की प्रार्थना कर रहे है।"

ऐसा कह कर स्वामी जी को चौविहार सथारा पचखा दिया। स्वामी जी ने प्रत्येक विधि मे अपनी स्वीकृति प्रकट की। यह विधि-विधान साढे आठ बजे के करीव सम्पन्न हुआ। स्वीमी जो को अस्पताल से सन्त स्थानक मे ले आये। हाल मे प्रविष्ट होते ही सथारा पूर्ण हो गया। लगभग दो ढाई घण्टे तक सथारा चला। उधर शरद् ऋतु का सूर्य आगे बढ रहा था—पहले मध्यान्ह की ओर, एव फिर अपनी दैनिक आयु पूण करके अस्ताचल की ओर। इधर शरद् ऋतु का चाद तैयारी कर रहा था और आगे बढ रहा था "पूनम का चाद" बनने के लिए।

तत्पश्चात् पण्डित मुनि श्री जीतमल जी महाराज, मुनि श्री लाल-चन्द जी महाराज, मुनि श्री शुभचन्द जी महाराज एव मुनि श्री पार्श्वचन्द जी महाराज साहब- ने जो कि दिवगत स्वामी जी श्री चान्दमलजी महाराज के क्रमश लघु गुरुभ्राता, भ्रातृज्य शिष्य, एव शिष्यद्वय थे उन्होने सघ के समक्ष स्वामीजी के पार्थिव शरीर को वोसिराने की विधि की और परिनिर्वाण-वर्तिक काउस्सग किया जिसे चार लोगस्स के पाठ से समाप्त किया।

सघ द्वारा दिये गये तारो से, किये गये टेलिफोनो के परिणामस्वरूप भारत के दूर-दूर नगरो से श्रावक-श्राविकाए वायुयानो द्वारा, कारो द्वारा और रेलगाडियो द्वारा पहुचने लगे। सहस्रो धर्मनिष्ठ, श्रद्धालु भक्त, एकत्रित होने लग गये। अन्तिम यात्रा के पूर्व बम्वई की प्रथा के अनुसार अन्तिम विधि-विधान की प्रत्येक क्रिया पर बोली लगाई गई। स्वामीजी ने पचहत्तर वर्प की आयु मे इहलोक यात्रा पूरी की थी उसी के अनुरूप बोली से पचत्तर हजार की धनराशि एकत्रित हो गई। ग्यारह बजे के करीव पालकी उठाई गई। बम्बई जैसे अत्यन्त कार्य-व्यग्र नगर मे छुट्टी का दिन न होने पर भी शवयात्रा मे पद्रह हजार की उपस्थिति देखकर सब आश्चर्यचकित हो रहे थे। बम्बई मे शव को पालकी मे बिठाकर निकालने की प्रथा है। दर्शको को वडा आश्चर्य हो रहा था कि स्वामीजी का मृतक शरीर उत्तरोत्तर कृश एव हल्का होता जा रहा था। प्राय देखा जाता है कि मृत-देह धीरे-धीरे

स्थूल एव भारी होता जाता है। परन्तु यह तो सर्वथा इसके विपरीत देखा गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो छिपता हुआ चाद उत्तरोत्तर क्षीण हो रहा हो। शवयात्रा मे मद गति से चलने वाले लोग उदास मुखमुद्रा और शोक-सन्तप्त चित्त से जीवन की, जगती की और जीव की क्षण-भगुरता का अनुभव कर रहे थे। कुछ कहते हुए सुनाई दे रहे थे, "कितने मतिमान् थे, विद्वान् थे और महान् थे—स्वामीजी चान्दमल जी महाराज! उनके तन मे, मन मे और वाणी मे सर्वत्र सौकुमार्य का सौरभ था और माधुर्य की छटा थी। उनके परिधान मे, ज्ञान मे, व्याख्यान मे, अभयदान मे, जैनागम ज्ञान-पान मे, साधु-विहित सदाचारचर्या के अवस्थान मे, कषाय-कलुषित जीव के विकारो के प्रत्याख्यान मे, माला के मन के के साथ मन के मनके के उत्थान मे, चौबीस तीर्थंकरो के गुणगान मे, जान-अनजान मे अर्जित पापकर्मो के पचखान मे, आत्मा के पूर्वभव और इहभव-अर्जित कर्म-क्षय निमित्त किये गये धर्मध्यान मे,—सर्वत्र पावनता और निर्मलता का सौष्ठव था।"

स्वामीजी श्री चान्दमल जी महाराज की नश्वर देह का अग्नि-संस्कार करके, शवयात्री मोक्षपथ के पथिक उस महान् दिवगत यात्री के गुणो का गान करते हुए वापिस आ गये।

सवेदना के तार और पत्र आने लगे तथा शोक प्रस्ताव पारित होने के समाचार भी डाक द्वारा मिलने लगे। तीन तारीख को एक विराट् शोकसभा का आयोजन किया गया जिसमे दिवगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धालिया अर्पित की गई और उनके असाधारण, विशिष्ट और सहज गुणो का स्मरण किया गया।

स्वामीजी श्री चान्दमलजी महाराज वास्तव मे एक महान् जैन सत थे। जिसका यश रूपी शरीर ससार मे विद्यमान रहता है, उसको कालग्रस्त नही समझना चाहिये। वह तो अमर हो जाता है। किसी विद्वान् ने कहा है -

> **"चलं वित्तं चलं चित्तं, चले जीवितयौवने।**
> **चलाचलमिद सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति॥**

सुभाषितरत्नभांडागार, ९८।५

अर्थात्—धन, मन, जीवन, युवावस्था और ससार सव पदार्थ नष्ट

होने वाले है। जो जीव ससार मे यश प्राप्त कर लेता है, वह कभी नष्ट नही होता, अमर हो जाता है।

स्वामीजी श्री चान्दमलजी महाराज ने सम्यग्दर्शन, ज्ञानचारित्र की चर्या द्वारा और घोर तपश्चर्या द्वारा जैन शास्त्रो मे विहित सच्चे गुरु की परिभापा को सार्थक और चरितार्थ कर के दिखा दिया। शास्त्र का कथन है

"महाव्रतधरा धीरा, मोक्षमात्रोपजीविनः।
सामायिकस्था धर्मोपदेशका गुरवो मता॥'-

योगशास्त्र, २।८

अर्थात्—महाव्रतधारी, धैर्यवान्, शुद्ध भिक्षा से जीने वाले, सयम मे स्थिर रहने वाले, एव धर्म का उपदेश देने वाले महात्मा गुरु माने जाते है।

स्वामीजी श्री चान्दमलजी महाराज सच्चे गुरु के उक्त सभी लक्षणो से सपन्न थे। उनका रोम-रोम तीर्थकरो की वाणी से अनुप्राणित था, उनकी प्रत्येक धार्मिक क्रिया जिनशासन से शासित थी, उनका प्रत्येक प्रवचन भगवान् महावीर की वीतरागता से रजित था, उनकी प्रत्येक साधना सदाचार के सद्भाव से समन्वित थी, उनका प्रत्येक सकल्प पच-महाव्रत-पालन मे दृढता मे सलग्न था, उनका प्रत्येक श्वास क्रोधादि कषायो के दारुण कदर्थन को दलने के लिये दिवानिश कटिवद्ध था। सासारिक विषय-वासनाओ के आकस्मिक आक्रमण को विफल बनाने के लिए वे सत्कर्मो के वर्म (कवच) से सदा सन्नद्ध थे, परोपकार, जीवोद्धार और ससार-निस्तार के वे प्रवल समर्थक थे। सौजन्य की वे साकार प्रतिमा थे। गुणियो मे, तपस्वी मुनियो मे वे मूर्धन्य थे। धर्मवीर थे, धीर थे, सच्चे फकीर थे। जैन सन्त के लिए अपेक्षित वे सभी गुणो से अलकृत थे। वे क्या-क्या नही थे, वास्तव मे वे अपने जैसे स्वय थे।

"जैन जयतु शासनम्।"

परिशिष्ट १

स्तवन-चन्द्रिका

(स्वर्गीय स्वामीजी श्री चादमलजी
महाराज की अठारह स्तवन-
कृतियो का प्रामाणिक सकलन ।)

संकलन एवं सम्पादन :

जैन-सिद्धान्त शास्त्री, मुनि
श्री पार्श्वचन्द्रजी महाराज

जिन गुणगान ❛

गावण दे गुणगान कुमत तू गावण दे गुणगान ।
सुमत सखी रो थोडी दूर तो राखण दे सनमान ।। टेर ।।
ऋषभ अजित सभव अभिनन्दन सुमति निधान ।
काल अनादि रख्यो मन थारो अब तो दे अवसान ।।
अब तो दे अवसान कुमत तू मानूला थारो अहसान ।। १ ।।
पदमप्रभ ने सुपार्श्व चदाप्रभ सुविधि सुबुध गुणखान ।
अब के जोग मिल्यो है मुझने करण दे जनम प्रमाण ।।
करण दे जनम प्रमाण हठीली लेवण दे लाभ अमान ।। २ ।।
शीतल ने श्रेयास वासुपूज्य विमल अनन्त भगवान ।
अबके जिनवर आछा लागा घटियो है कुदेवा रो मान ।।
घटियो है कुदेवा रो मान कामणगारी जागण दे मुझ भान ।। ३ ।।
धरम शान्ति कुथु अर मल्ली नमि रिठनेमी पुनवान ।
नवभव री नारी ने तज दी तू मन लीजे जाण ।।
तू मन लीजे जाण यू ही मै था सू तोडूला तान ।। ४ ।।
पारस और महावीर स्वामी ज्यारो नाम वर्धमान ।
शासन रा सिरदार कहीजे मालिक महरवान ।।
मालिक महरवान अखीरी वात कहू लीजे मान ।। ५ ।।
सतगुरु नथमलजी स्वामीजी समकित रतन समान ।
दीधो जिण सू कुमत तम मिटियो पडगी साफ पिछान ।।
पडगी साफ पिछान जगत माहि नहि कोइ सुमति समान ।। ६ ।।

❛ तर्ज खेलण दो गिणगोर भवर म्हाने

दश समाचारी ❧

दश समाचारी पालो रे होवे दुख रो टालो ।। टेर ।।

जावो जद पेली आवस्सिय बोलो ।
आवो निसीहिय भालो रे
मिटे भ्रमणा रो चालो ।। १ ।।

अपणे काम पूछो आपुछणा ।
पडिपुछणा पर रे सभालो रे
घटे सर्व घोटालो ।। २ ।।

धामो चीज जो कोई लावो ।
इच्छा वा री न्हालो रे
भूल्या मिच्छा वालो ।। ३ ।।

तहत्ति शब्द ने राखो जुबा पर ।
गर आया निज ने उठालो रे
विनयवान रो ढालो ।। ४ ।।

रहे जितरे सब सेवा सारो ।
समाचारी चक्र वालो रे
शशि कहे नथ वालो ।। ५ ।।

❧ राग—कुण मारी पिचकारी रे ?

चार समाधि ❛

धन धन विनयवान पुनवान, समाधिभाव मे रेवे ।।

सेवा करे सदा समभाव, व्रत आराधै रख उम्हाव ।
अपनी प्रशसा के भाव, जैसी वात न मुख से केवे ।।१।।

श्रुत से होवे सम्यग्ज्ञान, जिणसू होवें चित्त इकतान ।
आत्मा स्थिर रहे धरमध्यान, पर को भी स्थिर कर देवें ।।२।।

तप न करे इहलोकार्थे, इस तरह न परलोकार्थे ।
नहि जस महिमा के स्वार्थे, केवल निर्जरा हेत तपे वें ।।३।।

चौथी समाधि आचार, तप मुजब भेद है चार ।
जो लेवे हिये उतार, वे तो जाय मुक्ति या देवे ।।४।।

श्री जयमल जी समुदाय, म्हारे नथमल जी गरुराय ।
केवे चान्द मुनि सुखदाय, चातुर इण मारग मे व्हेवे ।।४।।

❛ राग—भगवान मरुदेवी के लाल

पच दु:स्थान-त्याग ❧

ए तज दो पाचो स्थान, मानव भव पायो ।
थाने मिलसी ज्ञान निधान, मानव भव पायो ।। टेर ।।

करडा थाभा हो जो मती,
ह्वेला विनय-धर्म की हान ।। १ ।।

क्रोध कदी करणो नही,
लो इण ने विष ज्यू मान ।। २ ।।

प्रमाद पाच प्रकार का,
ए करे आतम बेभान ।। ३ ।।

रोगीला मत रेव जो,
तजो कुपथ अनपान ।। ४ ।।

आलस सू अलगा रहो,
करे तन ने भैंस समान ।। ५ ।।

उत्तराध्ययन इग्यार मे,
ओ गाथा तीजी रो ज्ञान ।। ६ ।।

स्वामी नाथ करुणा करी,
जद चादू ने पडी पिछान ।। ७ ।।

❧ राग—कोरो काजलियो

शिष्य लक्षण ¶

मती विसरजो रे, ए शिष्य लक्षण ने हिरदे धरजो रे ।। टेर ।।

हसे नही सिर नीचो राखे, इन्द्रिय मन ने दमतो रे ।
मर्म बात नहि कहे कोई ने, है मन गमतो रे ।। १ ।।

शील स्वभावी बिन अतिचारी, अति लोलुप भी नाही रे ।
क्षमावान पुनि साचा बोले, शिक्षा ग्राही रे ।। २ ।।

उत्तराध्ययन ग्यारवे अध्ययन, चौथी पाचमी गाथा रे ।
सुपात्र को नहि जोग मिले तो, करो न साथा रे ।। ३ ।।

गुरु चेला दोनू ही दीपता, ऐसी जोडी थोडी रे ।
दोनू ही सतोषी काटे, करम री कोडी रे ।। ४ ।।

नाथ गुरु की किरपा हो गई, मन मे आनन्द रेवे रे ।
शिष्य लक्षण ने भूल न जाजो, चादू केवे रे ।। ५ ।।

¶ राग—पन जी मुडे बोल ।

अविनीत लक्षण ◊

तज दो अविनीता ने ज्यारो सग निभ्यो नहि जाय ॥
सग निभ्यो नहि जाय ज्याने अपा न आवा दाय ॥ टेर ॥

वार-वार जो क्रोध करे है, उडो रोष मन माहि धरे है ।
मैत्री तोड़े है विन न्याय ॥ १ ॥

शास्त्र सीख अभिमानी बणिया, छिद्रान्वेषी है हिनपुनिया ।
मित्रो पर रीसाय ॥ २ ॥

प्रेमी मित्र का दुर्गुण छाने, बोले सुणावे कानो काने ।
बेतुक बात बनाय ॥ ३ ॥

मन रा मैला मानी लोभी, मन-इन्द्रिय-वश पडिया क्षोभी ।
सविभाग न कराय ॥ ४ ॥

मन री भी घुडी नहिं खोले, गाठा बाध हिया मे घोले ।
यो अविनीत कहाय ॥ ५ ॥

सूत्र उत्तराध्ययन सही है, इग्यारवे अध्ययन कही है ।
गाथा सात आठ नव माय ॥ ६ ॥

दो हजार दश गाव खागटा, पर्यूषण धर्मध्यान सावटा ।
चाद कहे चित लाय ॥ ७ ॥

◊ राग—काटो लागो रे देवरिया

विनीत लक्षण [1]

विनीत लक्षण धारो मन मे, जो आत्मिक सुख चावो रे।
उत्तराध्ययन अध्ययन ग्यारमो हिरदे आप जचावो रे ॥ १ ॥

रत्नाधिक सू नीचो रेवे, अचपाल सरल सुभावो रे।
कुतूहल देखे नही दिखावे, निंदा नहि दुर्भावो रे ॥ २ ॥

दीर्घ रोष को दोष न ज्या मे, हितैषिता को भावो रे।
भणिया रो अभिमान रखे नहिं, नही छिद्र लखावो रे ॥ ३ ॥

हितु सू कोइ अपराध होय तो, करे न कोप कुभावो रे।
मित्र नराज हो जाय तथापि, नहि तस मर्म दिखावो रे ॥ ४ ॥
कलह कदाग्रह करे नही ते, कुलीन लज्ज स्वभावो रे।
निज चेष्टा राखे गोपव ने, काय गुप्ति कहावो रे ॥ ५ ॥

सतगुरु मम नथमलजी स्वामी, वा ने ये सब ध्यावो रे।
सूत्र रेश सिखावे चोखी, चाद कहे गुण गावो रे ॥ ६ ॥

---

[1] राग—प्रभाती

धर्म लक्षण ❛

मना रे ! तू तो मान कह्यो अब लीजे रे
म्हारा समझ्योडा मना ! म्हारा सुलझ्योडा मना !
अधरम पथ मे पग मत दीजे रे मना ॥ १ ॥

मना रे ! श्रुत और चारित्र दोनो भेदे रे
म्हारा सुलझ्योडा मना ! म्हारा समझ्योडा मना !
आरि-बारी सू तूं रमजे उमेदे रे मना ! ॥ २ ॥

मना रे ! अणगार सागार भी मत भूले रे
म्हारा समझ्योडा मना ! म्हारा सुलझ्योडा मना !
पेलो पाल ने उपदेशे अनुकूले रे मना ! ॥ ३ ॥

मना रे ! दश विध खति आदिक भी जाणी रे
म्हारा समझ्योडा मना ! म्हारा सुलझ्योडा मना !
पाल जे ओजतियारी निसाणी रे मना ! ॥ ४ ॥

मना रे ! दान शियल तप चौथा भावा रे
म्हारा समझ्योडा मना ! म्हारा सुलझ्योडा मना !
स्वमत परमत माहे है ऐ चावा रे मना ! ॥ ५ ॥

सतगुरु नथ कह्यो धर्म है वस्तु स्वभावे रे
म्हारा समझ्योडा मना ! म्हारा सुलझ्योडा मना !
चादू जिणसू आतम गुण प्रकटावे रे मना ! ॥ ६ ॥

❛ राग—जला रे (मारवाडी)

विद्याहीन के लक्षण [1]

जहा ऐसा लक्षण पावे रे वो तो है विद्याहीन ।। टेर ।।

होवे जो अक्कड घोचो ।
और लोभी मन रो पोचो ।
मन इन्द्रिय वश नहि लावे रे ।। १ ।।

जो वार वार तो वोले,
वरज्योडो न रहे ओले ।
निज मूरखता प्रगटावे रे ।। २ ।।

गुरुजन आज्ञा नहि माने,
वा सू बैठो भी रहे छाने ।
जग मे अविनीत कहावे रे ।। ३ ।।

दूजा री बिल्कुल न सुणे,
हित चित री बाता न चुणे ।
वो बहुश्रुत किम धन पावे रे ।। ४ ।।

उत्तर-अध्ययन इग्यारे,
गाथा दूजी के सहारे ।
मुनि चाद साफ सुनावे रे ।। ५ ।।

---

[1] राग—जो आनन्द मगल चाहो रे

नरक गति [1]

नरक गति दुखदायी रे, मत बाध आयुप सुण भाई रे ॥ टेर ॥

कारण चार कह्या जगदीश,
सुणने मत करजो कोई रीस।
सूत्र ठाणाग जी माई रे ॥ १ ॥

छह काया रो आरभ कूटो,
करता प्राण उणारा लूटो।
करुणा मन नहि आई रे ॥ २ ॥

सब ही दुनिया रो धनमाल,
कबजे किया भी रहे कगाल।
महा परिग्रही कहाई रे ॥ ३ ॥

पचेंद्रिय को करे सहार,
जिण मे पाप न करे स्वीकार।
आत्मा मलिन बनाई रे ॥ ४ ॥

मासाहार मा है तल्लीन,
रसना-इन्द्रिय रे आधीन।
दुख भुगते दिन राई रे ॥ ५ ॥

चाद मुनि कहे भाई बहनो,
गुरु नाथ को मानो कहनो।
ज्यो आतम सुख उपजाई रे ॥ ६ ॥

---

[1] राग—आखिर नार पराई है

तिर्यंच गति ❦

तिर्यंच की गति का मत बाध आयु भाई ।। टेर ।।

मन की न गाठ खोले, माया के रेवे ओले ।
बोली मे खाड घोले, हिवडे मे कडवाई ।। १ ।।

ऊपर सू अपणायत, माहे रखे परायत ।
वो है किणी रो शायत, सबसू करे ठगाई ।। २ ।।

दिन रात झूठ वाणी, सच माहे माने हाणी ।
तेरे अजाण प्राणी, परतीति है गवाई ।। ३ ।।

कूड तोल कूड मापा, लेत देते अलगापा ।
क्यो बाधता है पापा, घडिया देवे उडाई ।। ४ ।।

मुनि चादमल्ल केता, गुरु नाथ ज्ञान देता ।
मारग धरम के व्हेता, है छोड के कपटाई ।। ५ ।।

❦ राग—क्या भूलिया दिवाने

मनुष्य गति ❧

सुणजो भवि प्राणी ! मिनखा गती रा कारण चार ।। टेर ।।

सूत्र ठाणाग जी रे माय ने,
चौथे ठाणे मे जिन फरमाय ।
मुक्ति रो मारग तो खुल्लो नही,
देव गती न सको जो जाय ।। १ ।।

भद्रिक प्रकृती सरल स्वभावियो,
सब रे विश्वास रो स्थानक जाण ।
तन मन वचना मे इकसरिखा पणो,
जिणसू आतम ह्वै पुरुष प्रमाण ।। २ ।।

विनय नरमाई जिणरा अग मे,
नही करडाई रो कुछ भी काम ।
सेवा कर सके वो सब जीव री,
जिणसू उणने भी मिले आराम ।। ३ ।।

दु खी जीवों ने देख दया करे,
अपना ज्यू जाणे प्राणी और ।
साता उपजावे अपणा डील सू,
आतम नरभव री पावे ठौर ।। ४ ।।

देख दूजा री सब विधि उन्नति,
मन मे जो राखे राजी भाव ।
बाधे है वो नर रो आउखो,
मच्छरता मिटगी उणरी साव ।। ५ ।।

चाद मुनि कहे श्रोता साभलो,
जयगच्छी गुरु नाथ दियो ज्ञान ।
हिरदै धार्यां सू तिरणो होवसी,
पावोला पद निरवाण ।। ६ ।।

❧ राग—महला मे बैठी हो राणी कमलावती

देव गति [1]

सुनो सज्जन प्यारे ! निर्मल बनावो अपनी आतमा ।। टेर ।।

देव आयुष्य के कारण प्यारे चार कह्या जिनराय ।
दिव्य सुखा री चाह हुवे तो अवसर मती गवाय हो ।। १ ।।

सराग सयम पहिला कारण कर्म बीज नही छूटा ।
तिण थी मरकर बने देवता पुण्य ज्यारा अखूटा हो ।। २ ।।

श्रावक धर्म दूसरा कारण गती देवनी भाषी ।
कल्प बारमे जावे मानव आगम ज्यारा साखी हो ।। ३ ।।

तीजा कारण बाल तपस्या अन्यमती पहचान ।
अकाम निर्जरा चौथो जाणो दाख्यो सूत्र दरम्यान हो ।। ४ ।।

चॉद मुनि कहे चोथो ठाणो ठाणाग जी को जाण ।
नाथ गुरु मुख मुणियो जिणसू पडी म्हने पहचाण हो ।। ५ ।।

---

[1] राग—ख्याल

मनुष्य गति ❦

सुणजो भवि प्राणी ! मिनखा गती रा कारण चार ॥ टेर ॥

सूत्र ठाणाग जी रे माय ने,
चौथे ठाणे मे जिन फरमाय ।
मुक्ति रो मारग तो खुल्लो नही,
देव गती न सको जो जाय ॥ १ ॥

भद्रिक प्रकृती सरल स्वभावियो,
सब रे विश्वास रो स्थानक जाण ।
तन मन वचना मे इकसरिखा पणो,
जिणसूं आतम ह्वै पुरुष प्रमाण ॥ २ ॥

विनय नरमाई जिणरा अग मे,
नही करडाई रो कुछ भी काम ।
सेवा कर सके वो सब जीव री,
जिणसू उणने भी मिले आराम ॥ ३ ॥

दु खी जीवों ने देख दया करे,
अपना ज्यू जाणे प्राणी और ।
साता उपजावे अपणा डील सू,
आतम नरभव री पावे ठौर ॥ ४ ॥

देख दूजा री सब विधि उन्नति,
मन मे जो राखे राजी भाव ।
बाधे है वो नर रो आउखो,
मच्छरता मिटगी उणरी साव ॥ ५ ॥

चाद मुनि कहे श्रोता साभलो,
जयगच्छी गुरु नाथ दियो ज्ञान ।
हिरदै धार्यां सू तिरणो होवसी,
पावोला पद निरवाण ॥ ६ ॥

❦ राग—महला मे बैठी हो राणी कमलावती

देव गति [1]

सुनो सज्जन प्यारे ! निर्मल बनावो अपनी आतमा ।। टेर ।।

देव आयुष्य के कारण प्यारे चार कह्या जिनराय ।
दिव्य सुखा री चाह हुवे तो अवसर मती गवाय हो ।। १ ।।

सराग सयम पहिला कारण कर्म बीज नही छूटा ।
तिण थी मरकर बने देवता पुण्य ज्यारा अखूटा हो ।। २ ।।

श्रावक धर्म दूसरा कारण गती देवनी भाखी ।
कल्प बारमे जावे मानव आगम ज्यारा साखी हो ।। ३ ।।

तीजा कारण बाल तपस्या अन्यमती पहचान ।
अकाम निर्जरा चौथो जाणो दाख्यो सूत्र दरम्यान हो ।। ४ ।।

चाँद मुनि कहे चोथो ठाणो ठाणाग जी को जाण ।
नाथ गुरु मुख सुणियो जिणसू पडी म्हने पहचाण हो ।। ५ ।।

---

[1] राग—ख्याल

पुण्य फल ❁

बाधे-बाधे रे पुनवानी पुनवत प्राणिया रे ॥ टेर ॥

पुण्ये मानव नो भव पायो ।
आरज क्षेत्र उत्तम कुल आयो ।
पूरण इद्रिय पाच मिली है सुख मन मानिया रे ॥
जिनवर सूत्र ठाणायग माई ।
नवविध पुण्य कह्या सुखदाई ।
अन-जल-लयन-शयन अरु वस्त्र देह सुख दानिया रे ।

मन वच काय तीन शुभकार ।
सेवा करे नमन सुखकार ।
बाधे नवविध भोगे लोग बयालिस आनिया रे ॥

पुण्ये जीव तीर्थंकर होवे ।
मनडो तीन लोक रो मोवे ।
होवे चौतीस अतिशयवान जगति सब जानिया रे ॥

पुनवंत जीव धरम ने पावे ।
धीरज धार करम वसु ढावे ।
गावे चाद मुनि गुरु नाथ वचन प्रमाणिया रे ॥ ५ ॥

❁ राग—तज दे तज दे रे पुनवता

पुराण सार [1]

सुखदेव मुनि जी पाप हटने को कहो उपाय जी ॥ टेर ॥
राजकाज मे सुनो सतगुरु बधे पाप अपार।
ताते अरजी करू आप से कर दो मुझने पार जी ॥ १ ॥
आप जिसो का भया मेटका ज्ञान तणा भडार।
कर दो करुणा अब तो मुझपर बलिहारी हर वार जी ॥ २ ॥
सुनि नृप वचन मुनिजी बोले सुनो नृपति सुखकार।
पुराण अठारह धर्मग्रथ को सुनत पाप परिहार जी ॥ ३ ॥
वचन सुनत परीक्षित नृपति बोले इसी प्रकार।
नहि अवकाश इता सुनने का कहो अपर प्रतिकार जी ॥ ४ ॥
गुरु बोले तो सुण तू राजन ! कहू दुतीय उपचार।
जो धारेगा दिल मे तो तू उतरेगा भवपार जी ॥ ५ ॥
पुराण अठारो के ही है ये सार वचन दो जान।
परोपकारे पुण्य बताया पर पीडा पाप पहचान जी ॥ ६ ॥
गुरूपदेश सुन सोचा मन मे किया तुरत स्वीकार।
चाद मुनि कहे सुनो भव्य जन नाथ गुरु दिल धार जी ॥ ७ ॥

---

[1] राग—ख्याल

मुक्ति के साधन ❛

मुक्ति को जाना चाहो, तो चार वात धारो।
आत्मा जनम मरण से, करसी सदा किनारो ॥ टेर ॥

सम्यक्त्व ज्ञान सेती, सब भाव को पिछानो।
स्व-पर स्वरूप समझो, निज को करो सुधारो ॥ १ ॥

दर्शन सू श्रद्धा लेना, जानो हो आप जिसको।
श्रद्धा बिना न कुछ भी, सुज्ञान दे सहारो ॥ २ ॥

चारित्र धार करके, आते करम को रोको।
बिन आचरण सुधारे, है ज्ञान ध्यान भारो ॥ ३ ॥

तप आत्म की करम से, करता है शीघ्र शुद्धि।
बहिरतरग छह-छह, धारो श्रुतानुसारो ॥ ४ ॥

राहू करम हटा के, चमकाओ आत्म-चदा।
गुरु नाथ की कृपा से, लो सार सब सुखा रो ॥ ५ ॥

❛ राग—रेखता

परिशिष्ट २

❀

चद्र—कला
(स्वर्गीय स्वामीजी श्री चादमलजी
महाराज की प्रामाणिक पद्यमय
जीवनी)

रचयिता
आगम-व्याख्याता, पडित-रत्न
श्री लालचद्रजी महाराज

मंगलाचरण

जगत-पती जिनराज को, जपो आप नित जाप।
जग तपती मिट ह्वै विजय, चन्द्रप्रभ परताप ॥ १ ॥

शासनपति को शुद्ध मन, स्मरू हरू अघ सर्व।
जिण निज चेतन चद्र को, हर्यो राहु नित-पर्व ॥ २ ॥

वीर-वाणि आणी हिये त्योहि अनेको चद।
छोडि कृष्ण मय पक्ष को, पूर्यो शुक्ल अमद ॥ ३ ॥

जय-अनुयायी स्वामि-नथ, तकि शिष्य तृतीय।
चाद चरित रचिबे स्पृहा, है उपजी मुझ हीय ॥ ४ ॥

सद्गुरु कृपया कार्य यह, निरतराय ह्वै पूर्ण।
आरोहू गुण गिरि उपर, पावू शिवपद तूर्ण ॥ ५ ॥

कला—पहली, तर्ज—चौपाई

जबू भरत मरुधर के माही, सोजत ब्यावर बीच सुहाही।
पीपलियो एक जाहर गाम, सरवर तरवर शोभिर धाम ॥ १ ॥

धूम्रयान दक्षिण दिशि चाल, उत्तर मे मोटर बस म्हाल।
सत्ता केन्द्रिय शासन केरी, विविध जाति चउवर्ण वसेरी ॥ २ ॥

क्षत्रिय वरण वीर रस धारी, धीर धरमप्रिय वैश्य विचारी।
शूद्र लोकसेवा स्वीकारी, ब्राह्मण दे विद्या हितकारी ॥ ३ ॥

सौख्य सकल दुख देखन नाही, सब ही लोग वसे सुख माही।
माली कोम तवर नखधारी, 'जगजी' नाम सुगुण कह धारी ॥ ४ ॥

"पारी" तास प्रिया अतिप्यारी, है 'हरदेव' पुत्र सुखकारी।
खेती वाडी काम सदाई, सुख सतोष सुगुण वरताई ॥ ५ ॥

साधु सत सती जब आवे, दर्शन करण नमन कू जावे।
सत सगत उपदेश सुणीने, राजी ह्वै नवकार गुणीने ॥ ६ ॥

एक दिवस की बात बताऊ, कारण कारज जोग मिलाऊ ।
माली मालण उभय विचारे, सुत हरदेव बहुत गुण धारे ॥ ७ ॥

कामकाज सब समझ सवाई, खेतवाडी की अक्कल आई ।
अब अपणे कुछ चाहे नाही, थोक मिल्या है आय सारा ही ॥ ८ ॥

पारी कहत सब साची बात, सुख मिलिया है सब साक्षात् ।
पण आतम उद्धारण काई, ऐ तो ठाठमाठ दुनियाई ॥ ९ ॥

या सू अधिकाधिक कइ वारा, पण जनि मरण न पायो पारा ।
मनुष जनम फल धरम धर्या सू, करणी तप उत्तम करिया सू ॥१०॥
जची बात जगमल के जीव, आ तो है नरभव री नीव ।
पण बोले दोनो आपाई, कहो धरम कर सक हा काई ॥११॥

सीख दीख अरु भीख है दोरी, हिम्मत लेण न होवे मोरी ।
पारी कहे जो कोई ले तो, नही कहोला ना अब थे तो ॥१२॥

इती बात पर कायम रेजो, लो तो धरम दलाली ले जो ।
बोलत पति मजूर परतु, हरदेवो नहि ऐसो जतु ॥१३॥

अब जो सुत दूजो हो जासी, वो अवेस आतम उजलासी ।
इणविध बात विगत कर दोनो, दृढ निश्चय सम करि धरि मौनो ॥१४॥

बीतत केतिक काल लखाई, गरभ चिन्ह पारी तन माई ।
हरस विशेष हृदय मे होवे, भले विचार हृदय मे पोवे ॥१५॥

ओसवाल इक बाई कुसुम्बा, करत साथ धरम लोह चुंबा ।
सुणत वखाण सत सतिया को, पालत धरम जैन जतिया को ॥१६॥

चद्र-कला पहली यह ढाल, उलसित मन पूरी 'मुनि लाल' ।
जैन धरम है करे जिणारो, इह नहि जाति वरण को सारो ॥१७॥

सोरठा

वरसादा वरसीह, तरसो धरा तिरपत हुई।
करसा मिल करसीह सरसी हद खेती सुखद ॥ १ ॥

हरियाली छाई ह, खुशियाली आई क्षमा।
वनमाली भाई ह, शष्याली खाली न कित ॥ २ ॥

लहे लहरिया लाह, प्रेरित रहे पवन्न पण।
अह दे रह्या उमाह, कवि वर्णन कर कह रह्या ॥ ३ ॥

सावन आयो मास, मन भावन भादव लिया।
जेठ बेठावण जास, आश ढावण आपाढ भौ ॥ ४ ॥

पथिक छोड निज पथ, अथ हुआ भेला घरे।
कामणिया मिल कथ, थिर बैठा निगरथ पण ॥ ५ ॥

कला—दूसरी, तर्ज—तावड़ा धीमो

सुखद ऋतु सावन की आई रे सुखद ऋतु सावन की आई।
सदा न रेंवे धूप सदा घन रहे न वरसाई ॥ टेर ॥

सूरज कदी उघाडे मुखडे, कदि घन घुघटाई।
निरखे हरखे कदेक बादल, माहे छिप जाई ॥ १ ॥

इण अठखेली रगरेली मे, करसा साराई।
कर्‌यो विचार चलो खेता मे, निनाण करण ताई ॥ २ ॥

भेली हुय ने भायलणिया, मालणिया ऐ तो।
आवो आज जगाजी कानी, पारी रे खेतो ॥ ३ ॥

खुरपिया लेय गीत गावती, उण रे घर क् आय।
आवाज सुण पारी पण आई, स्वागत करे उम्हाय ॥ ४ ॥

वोले सव ही चालो जल्दी, मोडो हो जासी।
ले खुरपी है खेत मोटो जद, पारी परकासी ॥ ५ ॥

चालू पण नहि निनाण करसू, कह कर सबरे साथ।
चाली आली वाता करती, झाल हाथ मे हाथ ॥ ६ ॥

निनाण रो नाकारो करियो, पूछ्यो कोई निदान।
कह्यो दूजी यो देखो कोनी, दो जीवा अनुमान ॥ ७ ॥

जितेक तीजी बोली साथण, लीलोती रे पाप।
कीकर तोडे अकुरा ने, आ है धरमण आप ॥ ८ ॥

इतेक चौथी कह्यो जावे आ, विणियाण्या रे सग।
ढूढणिया री कथा मायलो, लागो दीसे रग ॥ ९ ॥

इतरे बोली सखी पाचमी, थे ही थे सब बोल।
सभी बात कर लेवो ला तो, चला लेसी आ पोल ॥ १० ॥

छट्ठी बोली मना करे कुण, बोलो अपणे आप।
नही बोल्या सू बोले जिगरी, लाग जावे है छाप ॥ ११ ॥

पारी कह्यो थे केवो जितरा, सब कारण है साथ।
महाजना री भी भेलप है, सतिया रे सगाथ ॥ १२ ॥

सुणू बखाण सो समझ पडी कुछ, धरम पुण्य ने पाप।
काई करिया काई हुवे सो, वे बतलावे साफ ॥ १३ ॥

लीलोती रो पापोदडो तो, निसचै है निनाण।
पण कीडी मकोडी टीड कातरा, जीवा रो घमसाण ॥ १४ ॥

सातमी बोली लो आ सुण लो, करी बात कैसी।
इतो पाप तो बता दियो पण, पुण्य गो कित पैसी ॥ १५ ॥

कह्यो आठमी अबे बोल तब, पारी दियो जवाव।
पुण्य तो करिया सू ही होवे, पाप तो अपने आप ॥ १६ ॥

सुणने बाया कह्यो खेती सू, घणा भरे है पेट।
पुण्य भी हो जावे परबारो, मन रो सासो मेट ॥ १७ ॥

'लाल' ढाल आ दूजी गाई, पुनवत गर्भ प्रभाव।
धरम भावना पाप भीरुता, अरु सुबुद्धि उपजाव ॥ १८ ॥

दूहा

पारी पभणे प्रेम सू, नर पशु पखी आय।
चरे-चुगे-खावे-लेवे, ते किम पुण्य हो जाय ॥ १ ॥
नहि आवण देवण निहच, करा कोटि कलाप।
अन्तराय देवा जिको, कठे जावसी पाप ॥ २ ॥
सुख देवण री चाह सू, करे जु आछो काम।
तिण माहे तो तुरत सू, पुरुष पुण्य फल पाम ॥ ३ ॥
कोई कह्यो मेहनत करा, खेत हेत थरखत।
धान सिवा ऊगे धरा, दड निनाण दिजत ॥ ४ ॥
नहि तो दोनु हि जात री, कदापि ऊगे नाय।
पारी कहे इतरी समझ, नही वनस्पति माय ॥ ५ ॥
आपा भी समझा जिकी, स्वार्थ वश्य कइ काम।
करा लगा अलखावणी, नारी धराय नाम ॥ ६ ॥
आ लीलोती अणसमझ, ए अज्ञानी जीव।
कछुक जरूरत कारणे, नहि दू नरक री नीव ॥ ७ ॥

कला—तीसरी, तर्ज—ख्याल

पारी रे खेता, चर्चा चाले रे ज्ञान विज्ञान की ॥ टेर ॥
केई जणिया इस पर बोली खेती करे सो खावे।
हक नाहक री हरेक आदमी साफ नीति सुणावे हो ॥ १ ॥
दियो जवाब पारी ऐ बाया ! आ किम होवे साच।
खेत आखा रो धान एकलो खा कुण सकसी जाच हो ॥ २ ॥
वामण वणिया ठाकर-ठूकर खेती करण नहि जावे।
तो भी देखलो खावे धान ए कुण इनकार करावे हो ॥ ३ ॥
गावा वणावे वुण कर ने वले गहणो घडे सुनार।
भाडा घडे कुभार देखलो वापरे सव संसार हो ॥ ४ ॥
आप आप रो काम करे सव स्वार्थं हृदय मे राख।
कुण उपकार करे है किणरो कहो परमेसर साख हो ॥ ५ ॥

धन्य-धन्य एक साध सती ही छोड जगत् को खेल।
तारे आतमा निज पर केरी पहुचावे शिवमहल हो ॥ ६ ॥

बोली लुगाया बाई आतो बात कही है साची।
जबाब होवे तो देवो इणने जियडा माहे जाची हो ॥ ७ ॥

इतेक एक जणी कोई बोली अपने खप री आप।
सभी जणा उपजावे चीजा ओ नीति रो नाप हो ॥ ८ ॥

जितेक दूजी बोल ऊठगी आ तो नीति ढेटी।
मिनख रे लुगाई चाहिजै तो काइ भोगे बेटी हो ॥ ९ ॥

सव जणिया तब हसणे लागी ठीक कही ये बात।
पारी री तो जीत हो गई धर्म तणी करामात हो ॥ १० ॥

पारी कहे धरम और सत री जीत होवती आई।
करो करावो चाहो ज्यू पण मानो साच सवाई हो ॥ ११ ॥

पाप करता सोरो लागे पुण्य करता अबको।
धरम रुचे है कोइयक जीव ने पण सुखदायी सबको हो ॥ १२ ॥

आखो दिन आनन्द मगल मे काम निनाण रे साथ।
भूठा विचारा रो निनाण पण हो गयो साथो साथ हो ॥ १३ ॥

साभ्फ समै निज-निज घर सब ही करती वा हीज बात।
आई गाव मे बात बिखेरी सुण अचरज उपजात हो ॥ १४ ॥

बाता करी विवेक री स इण पारी गर्भ प्रभाव।
नीकलिया मुखडा सु निहचै उपज्या जिसा जु भाव हो ॥ १५ ॥

गर्भ अवधि परिपूर्ण हुई जद शुभ वेला तिथि वार।
पारी सुन्दर पुत्र प्रसवियो हियडे हर्ष अपार हो ॥ १६ ॥

कुल क्रमागत विधि साचविने चोलो दियो जु नाम।
तीजी ढाल मे लाल मुनि कहे कथा अकुरित आम हो ॥ १७ ॥

दूहा

हरषे हिये हरेक ही, बालक ने अवलोक।
शिशु अवतार है ईश रो, मानो वृक्ष अशोक ॥ १ ॥
करे लाड लेवे करा, खेलावे घर खन्त।
फूल गुलाब सो फुटरो, पण नहि कटकवत ॥ २ ॥
जाणे जग जगमाल जी, अवे जनम अनमोल।
इसो कोई जन्म्यो नही, आगे अपणी ओल ॥ ३ ॥
पारी प्रेम समुद्र को, पाय लियो ज्यो पार।
रखे जतन मानो रतन, आतम करण उधार ॥ ४ ॥
जग मे धन जननी जनक, पाय जु ऐसो पूत।
नहितर रहणो नीक है, आखी उमर अपूत ॥ ५ ॥
सुण-सुण कर ऐसा सबद, लख-लख औ, दीदार।
उपज-उपज सुविचार कई, फरसहि तन सुकुमार ॥ ६ ॥
दिन-दिन वधै सधै सुगुण, चोल बाल चित चोर।
चिंता तम पर चद्रमा, आनन्द उदधि हिलोर ॥ ७ ॥

कला—चौथी, तर्ज—घनश्याम की

होवे जिसा ही होवणहार, वैसा सब जोग मिले।
दूर होवे है मोह दिवार, कलिया सू कमल खिले ॥ टेर ॥
हरदेवे हुशियारी लीधी, पिता देह थिति पूरी कीधी।
माता मन पडियो विचार ॥ १ ॥
धीरज धर दृढ कीधो निरणय, हरदेवा रो करके परिणय।
म्हे दोनो लेवा सजम धार ॥ २ ॥
एक दिवस पारी रे तन मे, व्ही तकलीफ अधीरी मन मे।
पण सावधान अपार ॥ ३ ॥
ओसवाल भटेवडा जाती, बाई कुसुम्बी ने बुलवाती।
आई है वा घर प्यार ॥ ४ ॥

बोली पारी सुण लीजो थे, काम एक ओ कर दीजो थे।
अब जीवण रो नही इतबार ।। ५ ।।

म्हा पर कोइ न लेणो देणो, हरदेवा रो रेणो सेणो।
है सब घर अनुसार ।। ६ ।।

पण टाबर है जो एक चोलो, घणो फूटरो मन रो भोलो।
इणरी थे रखजो सार ।। ७ ।।

चोखी बात सिखाइजो इणने, धर्म आखर दीजो गिण-गिण ने।
भर जो वैराग्य सस्कार ।। ८ ।।

कोमल कू पल मानु जरा-सी, ज्यो लूलावे त्यो लुल जासी।
भूल न कीजो लगार ।। ९ ।।

चोखा कोई मुनिवर आवे, मेहनत कर इणने सिखलावें।
वारे चढाजो चरणार ।। १० ।।

म्हारी इच्छा ही वरसा सू, पण शायद मै अब मर जासू।
थाने भोलाऊ आ बेगार ।। ११ ।।

बाई कुसुम्बी तब यू बोली, आ तो बात बडी अनमोली।
बेगार सबद निवार ।। १२ ।।

मै ओ काम तन मन सू करसू, इण सू मुझ आतम उद्धरसू।
धरम दलाली उर धार ।। १३ ।।

स्वामी सूरज मुनि रा चेला, राज ओर नथ मुनि अवेला।
वे है गुणा रा भडार ।। १४ ।।

वाने मैं बहरा देऊला, थारी मनसा भी केऊला।
राखेनी मन मे हिम्मत धार ।। १५ ।।

पण आ डोरी आयुष वारी, ही कमजोर वाधी थी पारी।
आ तो बोलती मुख नवकार ।। १६ ।।

सिर पर हाथ फैर पुचकार्यो, चौला ने पारी तज डार्यो।
चौथी ढाल मझार ।। १७ ।।

दूहा

भूलीजे किण भात सू, माता वालो मोह।
भेजा माहि भरीजगो, माथो मातारोह ॥ १ ॥

टाबर पणे टगीजता, लटू बता लहलू ब।
आखा इमरत उतरता, बालक री सुण बू व ॥ २ ॥

हीडो दे दुलरावती, पग अगूठ धर प्रेम।
बैठी घर कारज विविध, नहि विसरण रे नेम ॥ ३ ॥

दिखणी चीर दिशावरी, दिशावरी भी देख।
मगलीक ही मानती, पाती मन मुद पेख ॥ ४ ॥

सूके माहि सुवाणती, आले सुवती आप।
रोवतडा ने राखती, प्रमुदित सुनत प्रलाप ॥ ५ ॥

जाणतडाँ जननी तणा, गुण घणा हि गिरुआह।
पण न कहीजे पूरसल, हरे समय हिरुआह ॥ ६ ॥

कुसुम्बी बाई कोड सू, धरम भावना धार।
चोला ऊपर चित्त सू, पूरो राखे प्यार ॥ ७ ॥

हरदेवो हरबार ही, भ्रातृप्रेम भलभाव।
सब ही काम सभाल-तो, दिल सू दे दरसाव ॥ ८ ॥

दिना मासा वरसा दुरत, दुख कुछ दुर ही जाय।
सभी जणा री समझलो, समय ही करे सहाय ॥ ९ ॥

सूरज शिष्य पधारिया, पीपलिया रे माय।
धरमी जन मन मुद धरयो, हरसे सघ सवाय ॥ १० ॥

पारी कथन ने याद कर, बाई कुसुम्बी आय।
"चोला ने चेलो करो", कहियो साथे लाय ॥ ११ ॥

मुनिराजा उत्तर दियो, "यू नहि करा स्वीकार।
इणरा निकट रु दूर का, पूछ लेवो परिवारि" ॥ १२ ॥

कला—पांचवीं, तर्ज—तेरी फूल सी

धन्य इसा निर्लोभी मुनिवर निज पर आतम तारे रे।
शिष्य लोलुपता ज्यारे नाही सब ही कारज सारे रे।। १ ।।
बाई कुसुम्बी राजी होकर हरदेवा सू विचारे रे।
मातृ कथन उणने भी याद थो सो आ बात स्वीकारे रे।। २ ।।
पण जाण्यो कोई काका बाबा शामिल अथवा न्यारे रे।
काल दिना कोई देवे ओलभो तो हो जाऊ बारे रे।। ३ ।।
वो सब इण परमाद मे लागो मुनिवर कीध विहारे रे।
बासिये होकर चडावल मे परगट आप पधारे रे।। ४ ।।
पीछे पूछकर पीपलिया मे सावल काम सवारे रे।
बाई कुसुम्बी और हरदेवो पूछ लियो परिवारे रे।। ५ ।।
घणा जणा तो सहमत हूवा कोइयक विघ्न करारे रे।
वाने भी समझाया लोगा क्यो दो आडी अकारे रे।। ६ ।।
जो पुनवान हुवे शुभकर्मी सिद्ध काम ह्वै वांरे रे।
सब विधि सफल होय कर आया चडावल मझारे रे।। ७ ।।
स्वामी जी ने करे समर्पण चोला ने तिणवारे रे।
पण चडावल श्रावक सघ री साखे गुरुवर धारे रे।। ८ ।।
चादू नाम धर्यो वेला लखी मन मे हरस अपारे रे।
बाई कुसुम्बी और हरदेवो पाछा गाव सिधारे रे।। ९ ।।
चौथ गभीर बखत चाद यो वैरागो है चारे रे।
ज्ञान ध्यान करता ही रेवे विनय नही विसारे रे।। १० ।।
आपस माहे प्रेम सू रेवे वरते मगलाचारे रे।
गावो गाव मे जावे जठे ही सब ही का मन ठारे रे।। ११ ।।
साधु साधविया श्रावक श्राविका सघ चार सुखकारे रे।
गुरु और गुरुभाइया सू हरसे मन हरवारे रे।। १२ ।।
ओ परिवार तारणे वालो मभी जगह सत्कारे रे।
वो परिवार केवल एक ठोरा स्वार्थ सू पुचकारे रे।। १३ ।।

मातृ मोह और प्यार पिता को भाई वहन दुलारे रे ।
पण गुरु कृपा होवे पूरी तो रहे सव ही लारे रे ।। १४ ।।

इणविध ज्ञान अभ्यास धारणा उद्यम बुद्धि अनुसारे रे ।
आवश्यक स्तोकादिक आगम स्तवन सज्झाय चितारे रे ।। १५ ।।

अनुक्रम दीक्षा हुई तीन री नथ-मौक्तिक विस्तारे रे ।
स्वामि चौथ निज जोडकला मे पहुचे आरपारे रे ।। १६ ।।

'श्रमणलाल' पाचवी ढाले सार सार समझावे रे ।
गुण कुण पूरा कह सके बोलो रसना एक है म्हारे रे ।। १७ ।।

दूहा

सवत् उगणीसे पैसठे, नूतन वरस नीहार ।
रायपुराधिप हरिसिंह, श्रावक अरज गुजार ।। १ ।।

अब छोटे से शिष्य की, दीक्षा भली प्रकार ।
चैत्री पूनम की तुरत, तिथि थापी श्रीकार ।

छद—शिखरिणी

वजे बाजा गाजा, मुदित मन राजा प्रभृति है ।
हमेशां बदोला, हरस रस घोला निकलता ।
घणा भाया बाया, निकट वली दूरा निवसता ।
रहे आता जाता, नजर भर मेलो निरखता ।। १ ।।

करावे है कामा, हृदय अभिरामा नरवरा ।
जिमावे है सारा, करत सुखकारी सरवरा ।
सरावे है सारा, गजब मनुहारा सब करे ।
दुखी आवे कोई, विपद अलगी भी तस करे ।। २ ।।

वखाणा वाणे सू सकल जन लाभान्वित बणे ।
कई तो मिथ्यात्वी, तज कुमति साची सुमति ले ।
वणे पच्चक्खाणी, शपथ अति लेता अणु-महा ।
सिखे सीखावे है, विविध विध पाटी धरम री ।। ३ ।।

कई दूरां सू भी, मुनिवर पधार्या विचरता ।
अजाण्या जाण्या भी, स्व-पर समुदायी विनति सू ।।
पधार्या आर्यांजी, परम मुद बाया मन हुओ ।
घणा सामा जावे, विनय भल भावे भगति सू ।। ४ ।।

गवावे गावे है, समय अनुसारी स्तवन वे ।
कई चौवीसीया, मधुरतम धुन सू स्वर लयी ।
दिपावे मौका ने, सरस शुचि वातावरण सू ।
सुहावे लोगो ने, स्व-पर मत वाला जस करे ।। ५ ।।

कहे आयोडा यो, धन धन धरा रायपुर री ।
जठा रा लोगा तो, सुकृतमय आयोजन कियो ।
लहे ल्हावो देखो, निज नगर व्हावा कर दियो ।
अहोभाग्ये ऐसा, अवसर हमे भी कब मिले ।। ६ ।।

लखो वैरागी को, वदन मनहारी दमकतो ।
फबे गाबा चोखा, तनय मनु होवें नृपति को ।
गहेणा गांठा सू, अमर तरु जैसो जब रह्यो ।
पिता-माता यो रा, प्रगट शुभभागी बन गया ।। ७ ।।

कहे कोई प्रेमी, न कर इतनी कीर्ति कथनी ।
कली कच्ची देखो, नजर लगते ही मुरझती ।
भले ही तो है जो, गुरुवर तथा शिष्य लगते ।
जडा मानो हीरा, कनकमय भूषाऽऽभरण सा ।। ८ ।।

मिले चेला जी ये, दिन-दिन रती है बढ रही ।
कला चदा जैसी, सतत चढती नाम सदृशा ।
लगा है उम्हावा, मुह उपरि सोला झलहले ।
बढी तालावेली, विरति-वनिता से मिलन की ।। ९ ।।

किलो ह्वा जगी ही, दृढ तर भले ही मोह-नृप को ।
कषायो की खाई, विषय-जल वाली झिल रही ।
विकारो की ल्हेरा, विषम अति होवे प्रसरती ।
नही हारेला ये, विघन-घन पै ज्यो पवन है ।। १० ।।

उमगां लगी है, चढन हित दीक्षा शिखरिणी ।
इहा देगे ये तो, गढ दृढ मुनि हो करम का ।
सहारा देगे ये, गुरु अरु गुरुभाइय प्रते ।
वखाणां सेवाओ, सुजस वहु लेगे जन कहे ॥ ११ ॥

दूहा

बदोली बहु ठाठ सू, निकली घणी सनेह ।
शहर गाव अरु निकट रा, दूरा रा देखेह ॥ १ ॥

आज चोट डके तणे, घुरत निशाने घाव ।
दशो दिशाओ हो गया, दीक्षा का दरसाव ॥ २ ॥

चतुर काम चौड़ा तणो, करे न छाने कोय ।
देख कोई चेते मनुज, शासन उन्नत होय ॥ ३ ॥

आरभ को अनिवार्य लख, किय आत्मार्थि अनेक ।
आगे आगम मे कथा, जाणे लोग हरेक ॥ ४ ॥

चोरी कोइ री है नही, बाधक को नहि ब्हेम ।
साहू साहूकार सब, धरे धरम सू प्रेम ॥ ५ ॥

अविश्वास आतमा तणो, पछे पलेला या न ।
ओ भी छाने लेण मे, एक रहे अनुमान ॥ ६ ॥

मेलो मडियो मुलक रो, सूरजपोल साक्षात ।
जुडी खूब जनमेदिनी, मन उमग न समात ॥ ७ ॥

वैरागी वैराग्य रस, सत्सगति सर माय ।
झिले झबोला खाय है, देख्याँ हि आवे दाय ॥ ८ ॥

असवारी सू उतर के, उप गुरुवर के आय ।
वदन करे विवेक सू, पाचो अग नमाय ॥ ९ ॥

सभी सन्त सतिया प्रते, विधि सू क्रम अनुसार ।
छोटा वडा मुनि महासत्या, सब ही ने इकसार ॥१०॥

फिर दर्शक सब जन प्रते, "जयजिनेन्द्र" कर जोड ।
कर केसर के छाँटणे, हिय री होडाहोड ॥ ११ ॥

सुन मागलिक आज्ञा लही, सकल सघ की साख ।
फिर एकान्त ईशान मे, गये वेश अभिलाख ॥ १२ ॥

भूषण भार उतारियो, सीमित वस्त्र सुहाय ।
किय सिर मुडन कोड सू, स्नापक अस्त्र सुआय ॥ १३ ॥

मन को मुडन खुद कियो, केश कुभाव अभाव ।
सरल सुभाव सुधार निज, मुडित द्रव्य रु भाव ॥१४॥

कर्यो स्नान शुचिभूत हुय, विधि उल्लणिया लू छ ।
वर्यो वेष मुनिराज रो, मिटी जु घाछाघू छ ॥ १५ ॥

स्वस्तिक कियो सुहागिनी, राग धर्म रमणीय ।
कपाल तल पर कोड सू, कुकुम को कमनीय ॥१६॥

छंद—मोतीदाम

तटे कटि चोलपटो सु-लपेट,
दिवी पटली जु सुशोभित पेट,
लिवी फिर चादर आदर युक्त,
खवाँ तक छादित बाँधि यथुक्त ॥ ६ ॥

फबी मुख पै मुखवत्थि अनूप,
वधी युत दोरक शुद्ध सरूप,
अलकृत ह्वी दुहु कान सुपाय,
लियो उपजोग श्रुती सदुपाय ॥ २ ॥

दिपे मुख पीयूप कुभ समान,
लग्यो ढकणो तिण ऊपर तान,

कही उड जा न प्रमाद समीर,
बध्यो इन कारण कान सुधीर ।। ३ ।।

सुनो मत कोइ सुनाय अजोग,
वसै जग मे कइ भान्तिय लोग,
रखो निज के श्रुतिवध सदाय,
करे इम शिक्षण दोर सवाय ।। ४ ।।

वदो मत आप सुनो जितनो हि,
कहो सु जरूरत है इतनो हि,
सके पड कान अनिश्चित बात,
कढे मुख मे अविचारि न मात ।। ५ ।।

वद्यो इन हेतु वदन्न सुनाम,
वले मुखवत्थि कियो सु मुकाम,
बणी चवडी निज अगुल सोल,
वले इकवीस सु आयत ओल ।। ६ ।।

बणो तुम सोल कला युत चन्द,
वधो विसवा इकवीस अमद,
वदे प्रत आठ सुसीख सवाय,
रहो निज आठ गुणा प्रगटाय ।। ७ ।।

विना दवरे किय आप अनाथ,
घुसी घर दोनु हि आतन हाथ'
कदे दुहु साथ करे जु रमण्ण,
कदे इक साथ करे विचरण्ण ।। ८ ।।

कदे अवमानित हो रहि श्रौणि,
कदे उतरी अध साथल गौणि,
भटक्कत ज्यो हुय रूप विरूप,
अनाथ लहे विनिपातिक कूप ।। ९ ।।

फिर दर्शक सब जन प्रते, "जयजिनेन्द्र" कर जोड ।
कर केसर के छाँटणे, हिय री होडाहोड ।। ११ ।।

सुन मागलिक आज्ञा लही, सकल सघ की साख ।
फिर एकान्त ईशान मे, गये वेश अभिलाख ।। १२ ।।

भूषण भार उतारियो, सीमित वस्त्र सुहाय ।
किय सिर मुडन कोड सू , स्नापक अस्त्र सुआय ।। १३ ।।

मन को मुडन खुद कियो, केश कुभाव अभाव ।
सरल सुभाव सुधार निज, मुडित द्रव्य रु भाव ।।१४।।

कर्यो स्नान शुचिभूत हुय, विधि उल्लणिया लू छ ।
वर्यो वेष मुनिराज रो, मिटी जु घाछाघू छ ।। १५ ।।

स्वस्तिक कियो सुहागिनी, राग धर्म रमणीय ।
कपाल तल पर कोड सू , कुकुम को कमनीय ।।१६।

छंद—मोतीदाम

तटे कटि चोलपटो सु-लपेट,
दिवी पटली जु सुशोभित पेट,
लिवी फिर चादर आदर युक्त,
खवाँ तक छादित बाँधि यथुक्त ।। १ ।।

फबी मुख पै मुखवत्थि अनूप,
वधी युत दोरक शुद्ध सरूप,
अलकृत ह्वी दुहु कान सुपाय,
लियो उपजोग श्रुती सदुपाय ।। २ ।।

दिपे मुख पीयूष कुभ समान,
लग्यो ढकणो तिण ऊपर तान,

कही उड जा न प्रमाद समीर,
बध्यो इन कारण कान सुधीर ।। ३ ।।

सुनो मत कोइ सुनाय अजोग,
वसै जग मे कइ भान्तिय लोग,
रखो निज के श्रुतिवध सदाय,
करे इम शिक्षण दोर सवाय ।। ४ ।।

वदो मत आप सुनो जितनो हि,
कहो सु जरूरत है इतनो हि,
सके पड कान अनिश्चित बात,
कढे मुख मे अविचारि न मात ।। ५ ।।

वद्यो इन हेतु वदन्न सुनाम,
वले मुखवत्थि कियो सु मुकाम,
बणी चवडी निज अगुल सोल,
वले इकवीस सु आयत ओल ।। ६ ।।

बणो तुम सोल कला युत चन्द,
वधो विसवा इकवीस अमद,
वदे प्रत आठ सुसीख सवाय,
रहो निज आठ गुणा प्रगटाय ।। ७ ।।

विना दवरे किय आप अनाथ,
घुसी घर दोनु हि भ्रातन हाथ'
कदे दुहु साथ करे जु रमण्ण,
कदे इक साथ करे विचरण्ण ।। ८ ।।

कदे अवमानित हो रहि श्रौणि,
कदे उतरी अध साथल गौणि,
भटक्कत ज्यो हुय रूप विरूप,
अनाथ लहे विनिपातिक कूप ।। ९ ।।

लसे कर झोलिय पात्र समेत,
पधारत आप गुरु उपचेत ।। १६ ।।

छद—भुजंगप्रयात

करें वन्दना पाठ बोले तिक्खुत्तो,
विवेक कहे है जगो-मालिपुत्तो ।
दिरावो गुरुजी म्हने आप दीक्षा,
पलो ओ पसारूंसुचारित्र भिक्षा ।। १ ।।

लहो मडली आपकी मे अबे तो,
करू सेव बीत्यो अहो काल केतो ।
घडी आज आनन्द की चाल आई,
दिवानाथ ऊग्यो सु है सौख्यदायी ।। २ ।।

छंद—हरिगीतिका

जनि आधि व्याधि उपाधियां वार्धक्य पुनि मत्यूमयी ।
इस लोक मे अग्नी लगी है घास जनता नित नयी ।
हे नाथ ! मैं क्या-क्या बताऊ ? बुझाई बुझती नही ।
गर बुझादू इस तरफ तो उधर नूतन लग रही ।। १ ।।

जिधर देखू उधर ही बस ज्वाल माल कराल है ।
धांय-धाय जला रही हा ! लाय अति असराल है ।
जलते हुए निज सदन से जिस तरह स्वामी गेह का ।
बहुमूल्य कमभारीय वस्तु जो उसी के स्नेह का ।। २ ।।

लेकर उसे अन्यत्र जा एकांत सद्‌रक्षित रखे ।
तब सोचता निस्तार होगा मैं रहूगा अब अखे ।
बाद मे होगा हितावह और सुखकारी सदा ।
सामर्थ्य यह देगा मुझे कल्याणकर है सर्वदा ।। ३ ।।

करो कछु दोरक हेतु बयान,
सुनो तुम साजन देकर ध्यान,
तजावत जागतिको हु सम्बन्ध,
मनो मृतपिंड सुघाटित सध ।। १० ।।

प्रजापति तुल्य कह्या गुरुदेव,
भजो पद पद्म तजो अहमेव,
मिटावत चक्र परिभ्रमणोह,
हटावत दड परिक्रमणोह ।। ११ ।।

मुखे मुखवत्थि रहे सुफलाय,
न तो करवत्थि करोत लगाय,
हवाकिय जीव विराधन होय,
वले निकसे मुख सावज सोय ।। १२ ।।

रखो मुख मौन बुरी नहि बात,
बिना इसके नहिं लिंगि कहात,
पडे किम जैन मुनित्व पिछान,
लिख्यो परग्रथन के दरम्यान ।। १३ ।।

रहे घट वस्तु भर्या मुख बध,
करे कुण खालिय को सुप्रबध,
कहे कोई घोटक तोबड नेक,
लख्यो नहि गर्दभ तु ड कितेक ।। १४ ।।

तथा जु लग्यो वर पत्र टिकट्ट,
वरो शिव थानक आप प्रकट्ट,
कहो उत बेरिग झेलहि कौन,
अत अटके विन शीघ्र सुगौन ।। १५ ।।

दिपे मुख चाद वैरागिय केर,
लियो सुरजोहरणो कख फेर,

लसे कर झोलिय पात्र समेत,
पधारत आप गुरु उपचेत ।। १६ ।।

छद—भुजंगप्रयात

करे वन्दना पाठ बोले तिक्खुत्तो,
विवेक कहे है जगो-मालिपुत्तो ।
दिरावो गुरुजी म्हने आप दीक्षा,
पलो ओ पसारूसुचारित्र भिक्षा ।। १ ।।

लहो मडली आपकी मे अवे तो,
करू सेव बीत्यो अहो काल केतो ।
घडी आज आनन्द की चाल आई,
दिवानाथ ऊग्यो सु है सौख्यदायी ।। २ ।।

छंद—हरिगीतिका

जनि आधि व्याधि उपाधियां वार्धक्य पुनि मत्यूमयी ।
इस लोक मे अग्नी लगी है घास जनता नित नयी ।
हे नाथ ! मैं क्या-क्या बताऊ ? बुझाई बुझती नही ।
गर बुझादू इस तरफ तो उधर नूतन लग रही ।। १ ।।

जिधर देखू उधर ही बस ज्वाल माल कराल है ।
धांय-धांय जला रही हा ! लाय अति असराल है ।
जलते हुए निज सदन से जिस तरह स्वामी गेह का ।
वहुमूल्य कमभारीय वस्तु जो उसी के स्नेह का ।। २ ।।

लेकर उसे अन्यत्र जा एकात सद्रक्षित रखे ।
तव सोचता निस्तार होगा मैं रहूगा अब अखे ।
वाद मे होगा हितावह और सुखकारी सदा ।
सामर्थ्य यह देगा मुझे कल्याणकर है सर्वदा ।। ३ ।।

हे कृपालो ! आत्म मेरा एक वस सुखधाम है।
इष्ट-कान्त-मनोज्ञ-प्रिय सब ही तरह अभिराम है।
इसके विना ससार मे कोई न है मेरा प्रभो !
यही केवल है टिकाऊ पास मे मेरे विभो ! ॥ ४ ॥

मैं चाहता हू आप इसकी कर कृपा रक्षा करो।
लेकर चरण की शरण मुझ को अव दया से आवरो।
पट प्रव्रज्या मुकुट मडन सीस वेश दिलाइये।
मै वेश अनल निरोध धारू कर कृपा दिलवाइये ॥ ५ ॥

शिष्यत्व से स्वीकार कर मम चित्त की चिन्ता हरो।
रिक्त मेरे हृदय घट को रत्नत्रय गुण से भरो।
है न भगवन् ! आप-सा उद्धारकर्ता लोक मे।
ज्ञात मुझ को हो गया है ज्ञान के आलोक मे ॥ ६ ॥

छद—भुजगप्रयात

तभी सघ री लीवि आणा गुरु जी,
हुई मगलीका विधी सू शुरू जी।
करे ईरिया री क्रिया सर्व वामी,
पुन तस्स उत्तार रो पाठ नामी ॥ १ ॥

अहो नाथ ! सावद्य के त्याग होवे ।
जहा लो जिऊ पाप को साफ धोवे ।
मनो वाणी काया करू ना कराऊ ।
करे पाप ज्याने भला ना मनाऊ ।। ४ ।।

किया आज प्हेला हटू दूर वा सू ।
करू आत्मनिन्दा गरीहा गुरा सू ।
अभी बाह्य आत्मा दिवी वोसिराह ।
लिवी अन्तरात्मा तणी शुद्ध राह ।। ५ ।।

इसी भाति दीक्षा दियो मत्रपाठ ।
खडा जानु बाया रखा बैठ ठाठ ।
कह्या सिद्ध अर्हत ने दो नमुत्थु ।
विधी पूर्ण होता अभुट्ठीय अत्थु ।। ६ ।।

बिठाया कन्हे पाट माथे उणाने ।
लिया केश चोटी तणा लोच माने ।
करी वदना पूछता सन्त साता ।
सतावृन्द वादे यही नेम आता ।। ७ ।।

सुवेला जभी आपकी जैन दीक्षा ।
भला लग्न था सिह सिंहाश वीक्षा ।
द्वितीये धने भाव कानीन चद्र
सुते पचमे धन्वि केतू अतद्र ।। ८ ।।

मृतौ अष्टमे मन्द चन्द्रीय मीनी ।
नमे धर्म भावे रवी मेष लीनी ।।
महीपुत्र औ शुक्र की राशि वृष्य ।
रहे कर्म राज्ये नभो भाव शस्य ।। ६ ।।

तमो युग्म राशिस्थ इग्यारमे है ।
गुरु उच्च का कर्क का बारमे है ।।

सुदीक्षा हुई है सुराचार्य वारी,
भला नाम सामायिकाचार धारी ॥१०॥

दिने सातवे वार बुद्धे विशुद्धे।
बडे दीक्षितो मे हुए हैं प्रबुद्धे।
कराई गई है विधी पूर्व तुल्य।
"करेमी" ठिकाणे छजीवण्य मूल्य ॥११॥

इसी भाति दीक्षा ग्रही चान्द स्वामी।
स्पृहा दीर्घकालीन है पार पामी।
बने है गुरु के कृपापात्र आप।
गुरुभाइयो की तथा प्रेम छाप ॥१२॥

छंद—कवित्त

ले के जैन दीक्षा कीनो, शिक्षा को ग्रहण ठोस,
साहित्य औ व्याकरण, विषय नवीनो है।
जैनागम बोलचाल, थोकडे अनेक सीखे,
तीखी बुद्धि उपयोग, जाणपणो भीणो है।
सुन्दर अक्षर लिपि, सफाई अनोखी दिपी,
मन-वच-काय-योग, गुप्ति स्थिर तीनो है।
गमन भाषण और, एषणा आयाण-भड,
परिट्ठावणिया पच, साधु समीचीनो है ॥ १ ॥

महाव्रत पचक मे, रच क ना खच कहु,
सबे काम जयणा सो, आप अनुसरे है।
दशो ही उत्तरगुण, रस लेय रात दिन,
देख-देख सभी जन, जस अति करे है।
ज्ञान ध्यान सीखे और, औरनि सिखाय रहे,
आपणो परायो नित्य, ज्ञान घट भरे है।

गुणी और गुरुजन, साधु तथा साधवी को,
गुरु आज्ञा पाय लेख्य, लिख भेट धरे है ॥ २ ॥

वदे सन्त गुरुजन, और सब छोटे मुनि,
लगते सभी को आप, दुतिया के चन्द से ।
वान्चना सदा ही शुद्ध, स्वाध्याय अपाय विन,
सार-सार धार तीनो, अष्टमी अमन्द से ।
कला साथ कलक भी, बढाता लौकिक शशी,
आप निष्कलक नित्य, दायक आनन्द से ।
पूर्णिमा की ओर सदा, प्रगति प्रमाद बिन,
कषाय की लाय पर, शीतल निष्यद से ॥ ३ ॥

दोषा नाम रात का है, उसी का करने वाला,
दोषाकार होने से वो, आकर है होष का ।
मित्र अवसान मे ही, उदित होता है वह,
आपका सदैव उदै, मित्रता मे होशका ।
वह तो है अविरत, आप हो विरत नित्य,
उसका वियोगिनी पै, रहे भाव रोष का ।
अन्तर बहुत रहा, दोनो ही चाँदो के बीच,
तभी मार्ग आपका है, सुख औ सन्तोष का ॥ ४ ॥

सातवे आचार्य पूज्य, भीषम के शिष्य मुनि,
कानमल्ल गुरुजी के, वियोगी पधारे है ।
गुरु देव नथ मल, उदार सुधारवादी,
अध्यापन कराय के, योग्यता वधारे है ।
आपकी बढी है अति, मित्रता उन्ही से शुद्ध,
गुरुभाई गण तहा, प्रमोदता धारे है ।
पदवी दिराई उन्हे, अष्टम आचार्य किय,
स्वामी नाथ सब साथ, प्रभाव अपारे है ॥ ५ ॥

सभी बात सावजोग, पै व्याख्यान बाचे नाही,
गुरु गुरु भाई आदि, सब करे प्रेरणा ।
मन माहि भ्रम एक, ऐसा बैठ गया है कि,
या ते अभिमान आते, लगे कुछ देर ना ।
मुहूर्त दिखाय कर, नक्की कियो दिन पण,
टालने को ताहि माला, महामन्त्र फेरना ।
कीनी समझास अति, धरम कथा की रति,
उपजी न मन नेकु, या मे सार फेर ना ॥ ६ ॥
तीर्थंकर नाम कर्म, बाध कर जिन बने,
उनके तो वाणी ही ते, निर्जरा विशेष है ।
कषाय प्रथम गई, मान रत्ती रह्यो नही,
मोहिनी अज्ञान मयी, खई जु अशेष है ।
वाणी के पैंतीस गुण, प्रगट भई है धुन,
काय योग-मुद्रा चुन, हाव नही लेश है ।
भाव औ विभ्रम नही, विलास की चेष्टा नही,
दूर जाती रही किय, आत्म मे प्रवेश है ॥ ७ ॥
साची बात तीर्थंकर, मौन राखे छद्मस्थ लो,
पण बिन बोले काई, कदि मुक्ति गति जावे ना ।
सामान्य मुनि जो कोई, सदा काल मौन राखि,
निरवाण होवे ताको, कोई अटकावे ना ।
इती बात पे न दोनो, एककल्पी कहीजते,
मौनी छदमस्थ भाषा, समिति वतावे ना ।
आणा अनुसारी सारी, करत प्रवृत्ति फिर,
एक यहा आते बात, बाकी तो रखावे ना ॥ ८ ॥
इसी विधि अनेक ही, बात कही विना मन,
शुरू कियो भाग्य योग, व्याख्यान को वाचणो ।

तथापि घणी ही बार, टालके प्रसग आप,
राख लेता मनस्तोष, आतमा मे राचणो ।
गुरुदेव ढील छोडी, गुरुभाया मन राख्यो,
उपाय सरल और, कदियक जाचणो ।
अपणे उपावणे सू, शायद ही काम सरे,
परिस्थिति पावणे सू , मिटसी ओ खाचणो ॥ ९ ॥

उगणी से छियतरे, माघ वदि पचमी को,
गुरुदेव जोधपुर, स्वर्ग को सिधारे है।
आप खुद सबे विधि, योग्य और गुणवान,
गुणाकृष्ट गुरुजन, महर अपारे है।
गुरुभाई मित्रजन, पूज्य कान्ह पूर्ण प्रेमी,
और सब गुणीजन सहयोग सारे है।
लघु मुनि सती वृन्द, श्रावक समाज पुनि,
भक्ति भरे तो भी गुरु, गौन दुख भारे है ॥१०॥
सिततरे चौमासो ह्वो म्हामदिर कान्ह सह,
जोधाणे मे स्वामिवर्य, दयाचन्द राजते ।
बाबा गुरुराज स्वामी, थाणापति अन्य सत,
आने जाने वालो सह, सुखसाता साजते ।
वातनि अनेक जोग, साचवत सब तोग,
लाग को सजोग सेवा, छटा खुब छाजते ।
गुरु के वियोग हू को, प्रथम ही वर्ष यह,
पूरण भयो है ऐसे, गाजते औ बाजते ॥११॥
इठतरे साल माहि, चौमासे की विनतिया,
नागौर-कुचेरा-पाली, सोजतादि सघ की ।
सेठ जो की रीया और, पास मे पीपाड श्हेर,
मन सती यथायोग्य, राखी वात रग की ।

कुचेरे मे आप खुद, कान्ह पूज्य चौथ स्वामी,
रीया क्षेत्र सत योग्य, यही बात ढग की।
तब सब पूर्वापर, विविध चिन्तन कर,
आपकी अगवानी मे, विनति है अग की ॥१२॥
मित्रवर्य पूज्य कान्ह, आपके वक्तृत्व हेतु,
अलग चौमासा जैसी, उपजाई योजना।
समाज करणधार, आखिर होना है इन्हे,
छायेगे सभा मे कैसे, पडेगा जो बोझ ना।
निज शिष्य लघु चैन, मुनि सौप सेवा माहि
रीया के चौमासे भेजे, खरी करी योजना।
वाह-वाह ऐसे पूज्य, धन्य-धन्य सूझ-बूझ,
आप जैसे मित्र बिना, मित्रता की मौज ना ॥१३॥

दूहा

रीयाँ क्षेत्र अति राजतो, जबर घरां री जोड।
श्रावक श्राविका सावठा, करे न दूजो होड ॥ १ ॥
आप अवल बलि ओपता, चतुर लघु मुनि चैन।
जीत विरागी साथ जस, आगम पाठन ऐन ॥ २ ॥
स्व समुदायी विनय सिख, चदन स्वामी चग।
सरल सुभावी पर न सह, अद्वितीय अभग ॥ ३ ॥
कठकला मधुराकृति, व्याख्यानी विद्वान्।
वर धुरहूत विराजते, लह्यो स्हाज हर आन ॥ ४ ॥
सूत्र चौपाइ सुणावता, आपता उपदेश।
दृष्टान्त हेतु देवता, उपजत रुची अशेप ॥ ५ ॥
वरस इग्यारह विचरिया, गिरुए गुरुवर छत्र।
फेर गुरुजन फावता, अधिके प्रेम अमत्र ॥ ६ ॥
जस लीधो अति जुगति सू, प्रथम वारिणावास।
शहर पीपाड पधारिया, सत सती सोल्लास ॥ ७ ॥

मिगसर सुद दसमी दिवस, जीतमल्ल शुभजोग।
दीक्षा ह्वी गुरुभाई पद, उपज्यो हर्ष अभोग ।। ८ ।।

कला—छठी, तर्ज—मोहनगारो रे

भल अवतरिया रे, श्री चाद स्वामी जी उडुगण वरिया रे।
आज्ञा प्राप्त कर स्वामि चौथ की खुद चौमासा करिया रे।
प्रथम इठतरे रीयाँ लिया जस आप विचरिया रे ।। १ ।।
सुन्दर शोभामयी लिपि के लिख पत्रक कइ धरिया रे।
साधु सती कइ लिपि आपकी कर अनुसरिया रे ।। २ ।।
पिच्चियासिय माह वदी छट्ठ ने जोधाणे पूज्यवर्या रे।
कान्ह अल्पवय काल कियो निज मित्र विछडिया रे ।। ३ ।।
उनके लघु शिष्यो को निज सग रखे अध्ययन किरिया रे।
चैन मुनि विद्वान् हुए निज भार उतरिया रे ।। ४ ।।
निवियासिये मुनि मित्र छगन ठाणा तीन परिवरिया रे।
बगडी मे मुनि लाल हस्तीमल सेवा वरिया रे ।। ५ ।।
उणी वर्ष अजमेर सम्मेलन मुनि आया गुर्जरिया रे।
आबू तक गया आप सामने स्वागत सचरिया रे ।। ६ ।।
पूज्य चौथ समुदाय तरफ रा प्रतिनिधित्व आदरिया रे।
शार्दूल स्वामी री सेवा कीनी मुनि मरुधरिया रे ।। ७ ।।
रत्नचन्द्र जी शतावधानी वर्ष एक - सरवरिया रे।
स्वामी छगन युत चैन जीत पुनि विद्यावरिया रे ।। ८ ।।
नेऊआ री साल जयपुर मे लाल भवन लहरिया रे।
पजावी मुनि भागचन्द भी था उण विरिया र ।। ९ ।।
छिन्नू नानणे दो ठाणे मुनि धन्न धन्न उचरिया रे।
अट्ठाणू निज जन्मभूमि मे जीत वरिया रे ।। १० ।।
काती वद आठम ने झूठे चैन मुनि दिवसरिया रे।
विकसित हुए विना ही विखरी वो कच्ची कलिया रे ।। ११ ।।

कुचेरे मे आप खुद, कान्ह पूज्य चौथ स्वामी,
रीया क्षेत्र सत योग्य, यही बात ढंग की।
तब सब पूर्वापर, विविध चिन्तन कर,
आपकी अगवानी मे, विनति है अग की ॥१२॥
मित्रवर्य पूज्य कान्ह, आपके वक्तृत्व हेतु,
अलग चौमासा जैसी, उपजाई योजना।
समाज करणधार, आखिर होना है इन्हे,
छायेगे सभा मे कैसे, पडेगा जो बोझ ना।
निज शिष्य लघु चैन, मुनि सौप सेवा माहि
रीया के चौमासे भेजे, खरी करी योजना।
वाह-वाह ऐसे पूज्य, धन्य-धन्य सूझ-बूझ,
आप जैसे मित्र बिना, मित्रता की मौज ना ॥१३॥

दूहा

रीयाँ क्षेत्र अति राजतो, जबर घरां री जोड।
श्रावक श्राविका सावठा, करे न दूजो होड ॥ १ ॥

आप अवल बलि ओपता, चतुर लघु मुनि चैन।
जीत विरागी साथ जस, आगम पाठन ऐन ॥ २ ॥

स्व समुदायी विनय सिख, चदन स्वामी चग।
सरल सुभावी पर न सह, अद्वितीय अभग ॥ ३ ॥

कठकला मधुराकृति, व्याख्यानी विद्वान्।
वर धुरहूत विराजते, लह्यो स्हाज हर आन ॥ ४ ॥

सूत्र चौपाइ सुणावता, आपता उपदेश।
दृष्टान्त हेतु देवता, उपजत रुची अशेष ॥ ५ ॥

वरस इग्यारह विचरिया, गिरुए गुरुवर छत्र।
फेर गुरुजन फावता, अधिके प्रेम अमत्र ॥ ६ ॥

जस लीधो अति जुगति सू, प्रथम वारिशावास।
शहर पीपाड पधारिया, सत सती सोल्लास ॥ ७ ॥

मिगसर सुद दसमी दिवस, जीतमल्ल शुभजोग।
दीक्षा ह्वी गुरुभाई पद, उपज्यो हर्ष अभोग ॥ ८ ॥

कला—छठी, तर्ज—मोहनगारो रे

भल अवतरिया रे, श्री चाद स्वामी जी उडुगण वरिया रे।
आज्ञा प्राप्त कर स्वामि चौथ की खुद चौमासा करिया रे।
प्रथम इठतरे रीयाँ लिया जस आप विचरिया रे ॥ १ ॥
सुन्दर शोभामयी लिपि के लिख पत्रक कइ धरिया रे।
साधु सती कइ लिपि आपकी कर अनुसरिया रे ॥ २ ॥
पिच्चियासिय माह वदी छट्ठ ने जोधाणे पूज्यवर्या रे।
कान्ह अल्पवय काल कियो निज मित्र विछडिया रे ॥ ३ ॥
उनके लघु शिष्यो को निज सग रखे अध्ययन किरिया रे।
चैन मुनि विद्वान् हुए निज भार उतरिया रे ॥ ४ ॥
निवियासिये मुनि मित्र छगन ठाणा तीन परिवरिया रे।
बगडी मे मुनि लाल हस्तीमल सेवा वरिया रे ॥ ५ ॥
उणी वर्ष अजमेर सम्मेलन मुनि आया गुर्जरिया रे।
आबू तक गया आप सामने स्वागत सचरिया रे ॥ ६ ॥
पूज्य चौथ समुदाय तरफ रा प्रतिनिधित्व आदरिया रे।
शार्दूल स्वामी री सेवा कीनी मुनि मरुधरिया रे ॥ ७ ॥
रत्नचन्द्र जी शतावधानी वर्ष एक - सरवरिया रे।
स्वामी छगन युत चैन जीत पुनि विद्यावरिया रे ॥ ८ ॥
नेऊआ री साल जयपुर मे लाल भवन लहरिया रे।
पजावी मुनि भागचन्द भी था उण विरिया र ॥ ९ ॥
छिन्नू नानणे दो ठाणे मुनि धन्न धन्न उचरिया रे।
अट्ठाणू निज जन्मभूमि मे जीत वरिया रे ॥ १० ॥
काती वद आठम ने झूठे चैन मुनि दिवसरिया रे।
विकसित हुए विना ही बिखरी वो कच्ची कलिया रे ॥ ११ ॥

निन्नाणू पीपाड चौमासे जीत सहित सचरिया रे।
धर्मध्यान को ठाठ देख जन अचरज भरिया रे ॥ १२ ॥
दो हजार मे शहर नगीने तीन ठाणे पद धरिया रे।
धना मुनि और लाल मुनि सब जन मन हरिया रे ॥ १३ ॥
एके विरांटिये मेले वाले लगी धरम री झडियाँ रे।
हुए रायपुर बखत रूप युत गुरुभ्रातरिया रे ॥ १४ ॥
पांचा मे बर तीन ठाणे सू बीती आनन्द घडिया रे।
रूप मुनि गुरुभाई लाल लघु वखाण लडिया रे ॥ १५ ॥
स्वामी चौथ इण वरस नानणे पीड साथल उमरिया रे।
छक्के सोजत हुओऽपरेशन पण न सफलिया रे ॥ १६ ॥
लाल ढाल आ छठी कह दी गुरू बखत महरिया रे।
गुणवन्ताँ रा गुण गाया सू अघ निर्जरिया रे ॥ १७ ॥

दूहा

माते महामन्दिर मधे, चौमासो सब साथ।
हुओ पीड उपचार पण, बढती गई असात ॥ १ ॥
दो हजार आठा मही, अमरसिंह समुदायि।
स्वामि नारायण प्रेम सू, भेज्या श्रावक भाई ॥ २ ॥
अब के आप कृपा करो, भेज सघाडो एक।
लाभ चौमासो देवजो, क्षेत्र समदडी नेक ॥ ३ ॥
स्वामो चौथ सदेश सुण, कियो विचार उदार।
सेवामे दे लाल को, करा दियो विहार ॥ ४ ॥
धूनाडा होकर अजित, मिल नारायण स्वामि।
राणी दहीपुर आवताँ, रह्या रात आरामि ॥ ५ ॥
छट्ठ आषाढ सुदी दिवस, प्रवेश समय मध्यान्ह।
पण प्रभात अजानपन, स्खलना ह्वी असमान ॥ ६ ॥

पग ताचकता पड गया, लगी वाम कर चोट।
पुणचे अस्थि भग ह्वो, पीड भई भर पोट ॥ ७ ॥
जाणो दूर जरूर पण, ज्वराक्रान्त शरीर।
चलने लगे स्वाभाविकी, गति से वन कर धीर ॥ ८ ॥
वही गति गज की तरह, मुखमुद्रा पर शाति।
कोमलता वह कायिकी, छुपी कहाँ अशान्ति ॥ ९ ॥

छंद—सवैया

तपती धरती गरमी वरसे, वरसा इक वूंद नही वरसी।
वर आतप सो तप के सिकता, भडभुजिय भाड जिसी तरसी।
सब श्रावक और सराविका तो, चलते लगते पदपोष वशी।
हम साधु अनावृत पैर द्वयी, अपनी सहनात्मिक शक्ति रसी ॥ १ ॥
जलते उस रोज लखे पद तो, मन मोहि अनेक विचार उठे।
जलती नित ही इस भाँति क्षिती, अथ आज इते सुफुलिंग उठे।
वह अगन मगन जाय किते, जित ठड मिले कुछ चित्त तुठे।
वह गोबर पत्र तृणादिक शुष्क दिखे नहि किंचित काठ ठुठे ॥ २ ॥
इतनी महती धरती दिखती, पर पैर सुठौर दिखी न कही।
कई लोग कहे पग शीष धरो पर चाल अहो ! दिखलाइ नही।
सुर भाँति चलू चतुरगुल ऊर्ध्व प आई नही तजनी सु मही।
खुद सोवन कज धरो पग धन्य हमे जिन ! नीति बताइ यही ॥ ३ ॥
चित्त केन्द्रित था सुव्यथा निज पे नहि ख्याल रती किम पैर चले।
वर दीठि परी मुनि चाद प्रति पर शान्त नितान्त सुसौम्य भले।
गति मद वही निसपद सही यह क्या इनके पग नाँहि जले।
मनु कल्पित एक विकल्प अरे परते चरणाँबुज शीत जले ॥ ४ ॥
अथवा मथुरेश्वर शख मुनि हथनापुर चारि कदा विचरे।
पथ पूछत सोम पुरोहित तो अगनी पथ की कुदिशा उचरे।
जन कोई धरे पद ता पथ तो बहुधा मरते कहते अर रे।
पण पैर परत मुनीश्वर के पथ शीत भयो जु नदी सर रे ॥ ५ ॥

दूहा

वर्ष तीस सेवा करत, बीते पर उण वक्त।
ज्ञात हुआ मुनिराज ए, मन आतम सू शक्त ॥ १ ॥
देख धैर्य स्वमी जी को, मै मन कियो विचार।
धन्य इणारी साधना मै भी लेऊ धार ॥ २ ॥
होणो ज्यो होसी परो, चलू ठीक सर चाल।
समझायो समज्यो न मन, उदय भाव के जाल ॥ ३ ॥
इतेक छाया आ गई, कियो ग्राम प्रवेश।
म्हारी तो बाजी रही, मिट्यो औष्ण्य को क्लेश ॥ ४ ॥
सेवा करी सरावका, सभी भाति सुखकार।
खोड रह गई हाथ मे, करता कई उपचार ॥ ५ ॥
चौमासो उतर्या कर्यो, खाडप तरफ विहार।
मोकलसर सीवाणगढ, गढ जालोर पधार ॥ ६ ॥
फिर जोधाणे आवता, कोटडी औ, करमाव ।
मजलो मजल पधारिया, वसत पचमी साव ॥ ७ ॥
स्वामी चौथ वख्तावर, बड गुरुभाया भेट।
विरह महीना आठ को, सचित दियो जु मेट ॥ ८ ॥
लघुतर गुरुभाई जरत्, सुद छठ रूप मुनीश।
काल कियो गति आयुपुर, अखिलहिरहे अनीश ॥
स्वामी चौथ सहिष्णु मन, ज्ञान वृद्धि कर सार।
व्याधी अति वधती गई, अफल रह्या उपचार ॥
गभीर जानु अर्बुदा, केसरादि कह नाम।
जिसने जो समझा कहा, किया उपाय तमाम ॥
लेप दाव तपावणा, सेक इलेक्ट्रिक चीर।
यन्त्र मन्त्र आदिक सकल, सह्यो परीषह धीर ॥

कला—सातवीं, तर्ज—कांगसियो

म्हारा चौथ स्वामि गुरुभाई री ह्वो व्याधि विलये रे।
ह्वो व्याधी विलये रे मुनि चाद विनये रे ॥ टेर ॥

इतो समय सेवा मे घाटो पडियो सो निष्कासन रे।
रात दिवस आलस्य त्याग ने आप सदा शुभभावन रे ॥
होवो साता उदरे ॥ १ ॥

वा ही दिना मे शहर सादडी सम्मेलन री त्यारी रे।
आई अवाज सभी कानी सू सघ-ऐक्य री वारी रे ॥
कई सहमत हो गए रे ॥ २ ॥

स्वामीजी फरमायो मैं तो जा न सकू इण हेते रे।
आज्ञा दीधी चादू जा तू जीत लाल समेते रे ॥
प्रतिनिधित्व दे दये रे ॥ ३ ॥

आप अर्ज की कइ समुदाया है नही आवण वाली रे।
सघ-ऐक्य ऐसी हालत मे होसी नाम रो खाली रे ॥
ओ स शय मन मे रे ॥ ४ ॥

इण कारण जो मिलसी ज्यारे एका री है शका रे।
काम दिखावट होतो दीखे स्थाई बात है बका रे ॥
नहिं जाणो इण नये रे ॥ ५ ॥

व्यथा माहिने छोड आपने जाणो भी नहिं भावे रे।
कमी नहिं कोइ सेवा री पिण लाभ म्हने भी चावे रे ॥
है मन्शा अतिशये रे ॥ ६ ॥

स्वामीजी तब बोल्या ए सब बाता थारी आछी रे।
फिर भी लाभ कई जावण मे गत वेला नावे पाछी रे ॥
जन उचित रह जये रे ॥ ७ ॥

आपा अनुभव लियो प्रथम जो अजयमेरु सम्मेलन रे।
अब ए छोटा सन्त देखसी सग्रथन रो सुकलन रे ॥
मन होसी निर्भये रे ॥ ८ ॥

जीवन है संग्राम एक कब कैसी विरिया आवे रे।
इण कारण सब जाणण रो ओ अवसर नहिं गमावे रे।।
जाओ असशये रे।। ९ ।।

है तकलीफ पण आवो जितरे म्हारो काइयन होवे रे।
कम ज्यादा री बात अलग पण आयुप तो नहिं खोवे रे।।
म्हने ऐसो निश्चये रे।। १० ।।

गज गति चलजो स्व मे पर री पचायत न कराजो रे।
आगम सम्मत निर्णय ह्वे तो थे स्वीकृत कर आजो रे।।
भोलावण यू दये रे।। ११ ।।

आखिर आज्ञा मुजब ठाणा त्रय आप विहार आदरिया रे।
पाली पधारत मुनि कई मिलिया पजाबी मरुधरिया रे।।
प्रेमीवर परिचये रे।। १२ ।।

गाँवो गाँव विचरता करता कइ आगे कइ लारे रे।
मेरवाडी मेवाडी मालवी महाराष्ट्रिय परबारे रे।।
हुवो सादडी मुनिमये रे।। १३ ।।

गौमत गुरुकुल माँहे उतरिया नीचे ने वलि ऊचे रे।
निकट ठिकाणे सन्त विराज्या समय उपर सब पहुचे रे।।
बैठक ह्वे तिसमये रे।। १४ ।।

मिलिया हो तो कुछ कर विछडॉ मुख्य लक्ष थो यो ही रे।
नहिं परिपक्व परिस्थिति जिणसू जो हुओ भलो थो सो ही रे।।
मन कीनो सन्तोषये रे।। १५ ।।

आखातीज ने शुरू हुवो ने सुद चवदस तक चलियो रे।
बारह दिन छत्तीस समितिया विचार विनिमय फलियो रे।।
सब हुवो शाँतिमये रे।। १६ ।।

खमतखामणा प्रतिनिधित्व सू किया गजानन सामे रे।
शशी जीत लाल व्रज मधुकर यथायोग्य नम खामे रे ॥
मन समता उदये रे ॥ १७ ॥

लाल ढाल सातवी माहे सब विस्तार सकोची रे।
वर्णन कियो सम्मेलन रो रुख प्रज्ञा जहा तक पहोची रे ॥
मुनि विहरे फिर अये रे ॥ १८ ॥

दूहा

पाली आवत सुण लियो, जोधाणे तकलीफ।
उग्र विहार सु-आदरी, पहुच्या मांनु हरीफ ॥ १ ॥

वर्यो ईलाज सुवैद्य रो, मुख सू काढू रोग।
उदीरणा हुई आपरी, पण फलियो न प्रयोग ॥ २ ॥

वधी जिणी सू वेदना, जन सू लखी न जाय।
धन्य शान्ति समता धणी, स्वामी चौथ लखाय ॥ ३ ॥

सम्मेलन री बात सब, सुण सन्ता रे पास।
यथायोग्य अभिप्राय नित, सीमित कियो प्रकाश ॥ ४ ॥

सहमन्त्री हस्ती मुनि, भू पू पूज्य रत्नेश।
मिलिया वधियो मोद मन, बात करी तुर्येश ॥ ५ ॥

वर्षावास नागौर कुछ, जावण करजो जेज।
जाणण योग्य है आपरे, कहू बात सहेज ॥ ६ ॥

आयुष्यी आलोयणा, सामायिक सब सार।
वद आषाढ छठ शुक्र दिन, स्वय कियो सथार ॥ ७ ॥

दूजे दिन मुनि महासती, दरसन आये दौर।
कौम छत्तीस भी कोड सू, प्रचुर उमडते पौर ॥ ८ ॥

नवमी निकट बुलाय के, गुरुभायादिक सत।
स्वामी जी शिक्षा कही, शान्ती समता वन्त ॥ ९ ॥

राग-द्वेष मत राखजो, साधु श्रावक साथ।
खमतखामणा खात सू, करजो नमाय माथ ॥१०॥

सभी मुनि इण वात पर, कह्यो तहत्ति प्रमाण।
विरह कातर वाणी वदी, जिणरी इणविध जाण ॥११॥

कला—आठवीं, तर्ज—हां ! मति कर गर्व

हा ! चाद मुनि अर्ज गुजारी, सुणे चौथ गुरुभाई सारी।
सुणे उभा सब सन्त शात मन रख इकतारी रे ॥ टेर ॥

आप एकदम अनशन करियो, शिक्षा वचन एक उच्चरियो।
यथायोग्य प्रेम नही वरियो,
धरियो रती न ध्यान मोह ममता ही निवारी रे ॥ १ ॥

तीर्थंकर था वीरजिनेश्वर, वे भी मोक्ष जानके अवसर।
दिवी भोलावण सोलह प्रहर,
कह्यो न कुछ भी आप तोड्यो ज्यू तृणा बुहारी रे ॥ २ ॥

वा रे तीस वर्षा री सगत, अठे बणे अधिकाधिक रगत।
वे वीतराग इत रागी अगत,
देता प्रथम चेताय कही नही बात क्रिया री रे ॥ ३ ॥

स्वामी कह्यो काई मैं कहेतो, सभी बात हो सुजाण थे तो।
दुनिया ने कहो चेतो चेतो,
वाचो सरस वखाण बात नहिं कोई विकथा री रे ॥ ४ ॥

वे गौतम ने मेल्यो आगो, मै वैसो नहिं तोड्यो तागो।
उते कर्म इकतरफो दागो,
अठे दोनु ही समान नहिं कोइरी अधिकारी रे ॥ ५ ॥

म्हारो तो है इक ही कहणो, अपणा जत मत माहे रहणो।
ह्वे जैसो समभावे सहणो,
राग-द्वेष नहिं राख रेजो थे समताधारी रे ॥ ६ ॥

सस्कृत प्राकृत जाणो हो थे, स्व-पर भेद पिछाणो हो थे।
आगम ग्रथ प्रमाणो हो थे,
कभी नही कोइ वात जाणे समुदाया सारी रे ॥ ७ ॥
अब म्हने इक वात वताओ, कमी रही सो म्हने जताओ।
ग्रही नही जिकी वस्तु ग्रहावो,
म्हे कियो म्हारो काम जैसी थी वुद्धि म्हारी रे ॥ ८ ॥
बस, अब इण मे ही है सार, थे मन माही रखो करार।
मत्र सुणावो श्री नवकार,
श्रमणालाल कही ढाल आठवी हिम्मत धारी रे ॥ ९ ॥

दूहा

वा शासन री उन्नति, आगतुका री भीड़।
ओ उमग उत्साह अति, जाणी गई न पीड़ ॥ १ ॥
मेलो रहतो मडियो, सथारा री सेव।
त्याग वरत पचखाण री, उत लागी अहमेव ॥ २ ॥
शुभ आषाढ तृतीया तिथि, आई घडियो माय।
बजिया तीन निशि तीस पुनि, मितट कुछ क अधिकाय ॥३॥
देह आतम तज दियो, भलो समाधिभाव।
दिन तेरह से दीखतो, अनुपम अन्तर्भाव ॥ ४ ॥
हो य न कल्प्या हिये, इणरो नहिं उपाय।
स्वामी बख्तावर उपर, वजन पड्यो अति आय ॥ ५ ॥
दो हजार नव को कियो, महामन्दिर चौमास।
कारण पडियो विहरिया, हीरा भीखा आवास ॥ ६ ॥
कारणीक शरीर सू, रुकणो पडियो तत्र।
आखिर अस्त हुओ परो, धना मुनि नक्षत्र ॥ ७ ॥
ठाणा चार विहार किय, बावडी दिश नागौर।
पण सोजत मे उण बखत, मन्त्रीमण्डल और ॥ ८ ॥

मन्त्री पन्ना स्वामी के, प्रतिनिधित्व के रूप ।
जीत मुनि, मुनि लाल को, भेजे गये अनूप ॥ ९ ॥
आप बडे गुरुभाई श्री, बख्तावर दोय ठाण ।
गाव खागटे आगये, विनति करी प्रमाण ॥ १० ॥

कला—नवमी, तर्ज—मोटी हो जग मे मोहिनी

सोजत मन्त्रीमडले नव मासे हो अवलोकन कीन ।
सादडी निर्णीत नीति मे सशोधन हो परिवर्धन लीन ॥ १ ॥
चाद चरित्र सुहामणो भवि सुणाजो हो मन गुणजो ज्ञान ।
समकित निर्मल होवसी और आखिर हो पद ह्वै निर्वाण ॥ २ ॥
चौमासा निर्णय हुआ क्षेत्र दोनो हो लाभान्वित होय ।
स्वामी बखत मुनि लाल सू हरसोलाव ठाणा दोय ॥ ३ ॥
आप विराज्या खागटे गुरभाई हो सह लघु मुनि जीत ।
दो हजार दश वर्ष रो सुखपूर्वक हो वर्षालो बीत ॥ ४ ॥
शेषकाल में विचरता चउ ठाणा हो आया जोधाणा ।
उदैमन्दिर विराजिया स्वामी नारायण हो प्रेम पिछाण ॥ ५ ॥
विचर्‌या ठाणा दोय सू कोइ दीक्षा हो सतिया साथीण ।
महासती मेहताब जी प्रशिष्या हो दरियाव नवीन ॥ ६ ॥
स्वामी बखत नारायण सू निज-निज हो ले शिष्य सगात ।
धुनाडा पदधारिया चउठाणा हो वर प्रेम प्रभात ॥ ७ ॥
समदडी ठाणा दोय सू बख्तेश्वर हो शिष्य लाल समेत ।
वीर जनम कल्याण के ग्यारह दो हजारिय चेत ॥ ८ ॥
वद बैसाख वुध चौथ ने कियो ठाणा हो दो सू विहार ।
फिर धुनाडा आवता मुनि लाल ने हो पत्र मोच विचार ॥ ९ ॥
मारग मे दिन लागिया अक्षयतृतीया हो धुनाडा थाय ।
पाली पधारण भावना दोय विहरिया हो देवाणदी साय ॥ १० ॥

माडावास पधारतां तन वेदन हो अमाना होय।
स्वामी वखत आतम वली सेवाभावी हो श्रावक वहु जोय ॥११॥
शिष्य लाल पीडा पगे गुरुवर हो तन-मन ग्रेमुध।
बाकी सब साता हती पण वस्नी हो साधन अवरुद्ध ॥१२॥
आप गाव कइ फरसता आया पाली हो जोवना वाट।
माडावास री ठाह पडया दोय ठाणे हो आया पथ काट ॥१३॥
गुरुवर स्वामी वखत ने मन उपजी हो उण वखत समाध।
अवे चान्दमल आ गयो कह्यो मिटगी हो अव सर्व उपाध ॥१४॥
सघ आयो जोधाण रो पुर पाली हो सोजत नवसेर।
लूणी सव आग्रह कियो आप आवो हो करो नजदीक म्हेर ॥१५॥
नानणो सघ सेवा करी रह्या साथे हो चउठाण विहार
लूणी नदी पाडोस मे गाव ववो हो सवविध सुखकार ॥१६॥
कारण सू थिरता रही हुई साता हो दोया रे सर्व।
आप खूब सेवा करी गुरुभाई हो पण अगर्व ॥१७॥
दो हजार ग्यारह तणो वरसालो हो हुओ पुर जोधाण।
नवमी ढाल पुरी हुई सुणउपजे हो मन सौख्य रसाण ॥१८॥

दूहा

चौमासो उतर्यो तदा, काकरिया के बाग।
वड गुरुभाई बखत के, आख इलाज की लाग ॥ १ ॥
सफल हुवा सू विचरिया, पुर पीपाड की ओर।
रायपुर पधारिया, हर्ष्यो गाव हिलोर ॥ २ ॥
दो हजार बारह बरस, किशनगढ चौमास।
ठाणा चार पधारिया, हुओ हरस उल्लास ॥ ३ ॥
दो महीना था भादवा, वर्षावास सवाय।
धरम ज्ञान अभ्यास मे, वैसोहि लाभ लिराय ॥ ४ ॥

स्वामी बखत सिखावता, धरम सम्बन्धी ज्ञान ।
श्रावक श्राविका सर्व रो, प्रेमभाव असमान ॥ ५ ॥

पर्यूषण रो ऊठियो, अति हि उलझियो पेच ।
प्रथम दुतिय भादव करो, लगी जो खेचाखेच ॥ ६ ॥

सम्मेलन सादडी तणो, ऐसो निर्णय लीन ।
जदपि बहुत्व है प्रथम को, स्वागत अल्प्य मत कीन ॥७ ॥

हेतु हतो इण माहि इक, खैंचनिको की खीच ।
खातिर द्वार खुलो रख्यो, आगत स्वागत सीच ॥ ८ ॥

पण सोजत शीर्षक समिति, कियो न सघ प्रवेश ।
ता ते वही प्रस्ताव कछु, रह्यो समर्थ न लेश ॥ ९ ॥

खुद समर्थ असमर्थ किय, पर मानत निज बात ।
अनुगत मत रक्षा विधि, मन अचरज उपजात ॥१०॥

कइ कह्यो सोजत ही मे, बहुमत लावो ऊर्ध्व ।
अबे अल्पमत राखणो, माने तनिक न मूर्द्ध ॥११॥

कइ कह्यो न करो अभी, मत्रीमण्डल माय ।
चालण दो है ज्यू ही फिर, बृहत्समेलन ताय ॥१२॥

तब कोइ मुनि बोलिआ, इणरो काई लाभ ।
तो मैत्री सम्बन्ध को, प्रगट्यो अन्तरगाभ ॥१३॥

जिणसू बात रही जमी, जिको लग्यो अव जोर ।
नई-नई तर्का उठी, मुनिजन मानस कोर ॥१४॥

कला—दशवीं, तर्ज—वार वार में क्या

कोइ कह्यो जव तक है चालू तब तक तो मानो ।
वृहत्सम्मेलन स्थगित किया सू होसी स्वय हानो ॥
कोई कह्यो प्रस्ताव हुओ पण अवसर अव आयो ।
एकवार पालन कर उणरो दो जन दरसायो ॥

परिस्थिति वश दुतिय भादव का पर्यू पण ठहर्यां ।
तव स्वामी गुरुदेव वखत मन उठी यू लहर्या ।।
बोल्या मै तो प्रथम भादव मे करण चाहू भाई ।। १ ।।
सुनकर आप विनय जुगती सू ऐसी फरमाई ।
सब सू अलगा रहणा री आ मन मे क्यू आई ।। टेर ।।

स्वामी जी फरमायो मुझ मन इसो विकल्प आयो ।
इता वर्ष ओ कर्यो पजुषण यदि दू छिटकायो ।।
दुतिय भादव सावत्सरिक पर्व तक तन यदि चल जायो ।
तो जीवन री सर्व साधना दूपित ही थायो ।।
म्हारो तन है कारणिक सो थाने ही दीसे ।
इण कारण दो मुझने छुट्टी नही राग रीसे ।।
तजणो नही यावन्न सभी को निर्णय ह्वे स्थायी ।। २ ।।

युक्ति सहित सुण स्वामी जी ने मुनित्रय यो सोचे ।
ये तो बाता निर्विवाद है या ने कुण पहोचे ।।
एक सघाडे दोय सावत्सरिक लोग काइ कहसी ? ।
सामाजिकता आध्यात्मिकता दो मे किसी रहसी ।।
द्रव्य क्षेत्र काल और भाबा बात उचित लागे ।
पहला भादव माय पर्यू षण रेवेला सागे ।।
की पाचव की चौथ कालिकाचार्य ग्रथ माइ ।। ३ ।।
एक जिज्ञासा उठी मन मे उत्तरगुण ह्वे तो ।
अनागत अतिक्रान्त दोनो ही नही अटके ह्वे तो ।।
स्वामी जी कह्यो वा बात साधारण व्यक्तिगत जानो ।
पण सामूहिक परम्परागम इणने ये मानो ।।
मैं नहि हू नाराज जरा भी मनसा जो थारी ।
विचारधारा तन परिस्थिति पण मैं तो कही म्हारी ।।
सघ किशनगढ करी विनती हा सब साहायी ।। ४ ।।

निश्चय लीनो प्रथम भादव मे करिया पर्यूषण ।
धर्मध्यान उत्साह उमग की आत्मा निर्दूषण ।।
सावत्सरिक पारणो आयो स्वामी फरमायो ।
आगे भाव करणे रा वरते उमग मन आयो ।।
राग भाव को काम कठिन है आप मौन राखी ।
जीत लाल कह्यो आप कृपा करो आगे है पाखी ।।
किये पारणादिवस पारणो छद्मस्थता आई ।। ५ ।।
वील्या दिवस चार रविवारी दशमी दुतिय राते ।
वधी वेदना बखत स्वामी तन वाणी फरमाते ।।
बस आई जावण री वेला आलोयणा सुणलो ।
खमतखामण है ए छेल्ला नमस्कार गुणलो ।।
पच्चक्खाण तो चौविहार रा चालू है सारा ।
अबे जावजीव रो पचखू ओ है सथारा ।।
बात करता वपु ही वरत्यो सब रह्या लखताई ।। ६ ।।
रवीवार री घणा जणा तो पचखी छहकाया ।
और कई यू ही सवर कर सूता हा भाया ।।
अन्तिम दर्शन करिया सब ही वात एक बोल्या ।
स्वामी जी पर्यूषण करिया रह गइ रग रोलया ।।
धर्मकाम ने पेहली करणो सभी सबक लीनो ।
पछे सभी जन सुबह हुवा सू करणो ज्यो कीनो ।।
मुनि चाद सिरछत्र ऊठियो कियो जाय काँइ ।। ७ ।।
आर्तध्यान रो कारण वनगो मुनि मन यू बोले ।
स्वामी जी ने आगे वढने मे आपा कियो ओले ।।
नही लौकिक मे आयो अनशन शासन भी दीप्यो ।
हृदयराग भाव रो कारण दुखे जाय जीप्यो ।।

निर्णय कीनो अब कीने ही ना करा नाकारो।
लाल मुनि रे हृदय वह गयो अति तीखो आरो ।।
ऐसा सरल सबने ही व्हाला गुरु मिलणा नाई ।। ८ ।।

वर्ष ग्यारह गुरु सहचारी गुरुजन अडतीसो।
विचरे स्वामी चाद विनय सू अगणित गुण ईसो ।।
वैरागी पुखराज भेजियो पन्ना जी मतिया।
जिसो नाम गुण भी है वैसो सेवा सन्मतिया ।।
किसनगढ वखत स्मृति की पुस्तकालय स्थापी।
असाप्रदायिक काम सघ ने किया प्रेम व्यापी।
चौमासो उतर्‌या सू विहर्‌या हरमाडा ताई ।। ६ ।।

साधु सम्मेलन भीनासर रो आमत्रण आयो।
उण दिशि हुओ विहार कोटा को सघाड़ो पायो ।।
वयोवृद्ध श्री रामकुमार जी महाराज राजे।
वृद्धिचन्द जी रामनिवास जी सेवा के छाजे ।।
रूपगढ पर्वतसर हो कर बड़ मार्ग पाया।
कूचेरा नागौर ठहर कुछ गोगोलाव आया ।।
देशनोक और नोखामडी मुनिजन मिल जाई ।।१०।।

दो हजार दशे चौमासे महारथी जोधाणे।
परामर्श कर वाता चर्ची अभी सभी ठाणे ।।
मिलो जिका सब समझ-बूझ कर मान्य करो प्हेली।
फेर पछे भीनासर माहे आवेला नहली ।।
थली प्रान्त रा सब क्षेत्रो मे भक्तिभाव आछो।
भाया बाया साधु साधवियाँ नहिं जोयो पाछो ।।
बीकानेर संघ आय कर विनति दरसाई ।।११ ।।

मुनिमडल तव विचार करियो अगर आपा जावा ।
आगे कोटडी माय उतारे उठे जो नट जावा ॥
तो सब जाणो लिजाणो आ रो मतलब नहि राखे ।
अत विकाणे जाणे री स्वीकृति नहि भाखे ॥
स्थानक विपयक सादडी माहे जो विधान बणियो ।
परिस्थिति वग उपाचार्य श्री उण ने इत हणियो ॥
तव वोल्या कोई वुधवन्ता करो हो आप काई ॥१२॥

सावत्सरिक प्रथम भादव मे ज्या मनवा लीनो ।
वा कोटडी को निपेधकारक विचार किम मीनो ॥
व्यक्तिगत मकान मे उतरण जो नहि है त्याग्यो ।
तो कोटडी मे उतर जावो तो दोष किसो लाग्यो ॥
अध्यादेश आचार्य निकालयो उपाचार्य हेते ।
प्रथम भादवे पर्यूषण का भी निकला लेते ॥
जो जैसा हो उसे चला लो यह है अच्छाई ॥१३॥

चाद स्वामी ने फरमाया जरा और सोचो ।
यह निर्णय है पीछे हठ का पीछे से पहोचो ॥
सादडी के कुछ तो सोजत मे निश्चय गबडाये ।
यहा और उससे भी ज्यादा होगा दिखलाए ॥
जिसको जो भी छूट चाहिए वह यहा से लेगा ।
चला लेने वाला ही इसको यथेच्छ दे देगा ॥
सावत्सरिक की वस्तु सकारण वहा पर गबडाई ॥१४॥

आखिर विनति मान बिकाणे मुनिमडल आया ।
विशाल स्थान से किया कोटडी माहे उतराया ॥
सशील आया कवि जी आये आये पजावी ।

सम्मेलन की बना भूमिका भीनासर आये ।
स्वागतार्थी जनता की लाइन मडक दाये बांये ।।
नारे विविध भांति के पोस्टर पोशाक दिखलाई ।। १५ ।।

स्थगित किया प्रस्ताव सादडी सावत्सरिक वाला ।
कोटड़ी गत प्रतिबन्ध कटे ज्यो वह स्थानक वाला ।।
ध्वनिवर्धक की विधि के ऊपर अपवादिक आया ।
वडे छोटे सन्तो का अनुभव प्रसग पर आया ।।
कई समिति मै कई विमति मे कई समय असमय ।
देख देख कर केई वाते उपजा है विस्मय ।।
उपाध्याय मडल कर कायम कमी जो पूराई ।। १६ ।।

मत्रीमडल गहर सादडी सविषय वनवाया ।
प्रान्तवार इस समय वनाने का मन मे भाया ।।
स्वामी चान्द से मन्त्री पद के हित आग्रह कीना ।
प्रथम वार भी आप माय सू कोई नही लीना ।।
दिया जवाव है स्वामी हजारी हम मे से वृद्ध।
इन्हे वनाये आप मन्त्रिवर विनय वाणी विद्ध ।।
पद की प्रियता कभी आपने थी नहि अपनाई ।। १७ ।।

चातुर्मास की विनति वहा पर दिल्ली सघ करी ।
किन्तु पदाधिकारी मुनि ने गढसीवाण वरी ।।
वापिस किया विहार नगीने आये मुनि तीनो ।
—हरसोलाव सघ विनति की धर्म-प्रेम भीनो ।।
दो हजार तेरह वैसाख वद की दशमी मन्दा ।
वैरागी पुखराज दीक्षा ली अभिध्यो शुभचन्दा ।।
स्वामी चान्द के प्रथम शिष्य की पदवी है पाई ।। १८ ।।

मुनिमडल तब विचार करियो अगर आपा जावा ।
आगे कोटडी माय उतारे उठे जो नट जावा ।।
तो सब जाणो लिजाणो आ रो मतलब नहि राखे ।
अत बिकाणे जाणे री स्वीकृति नहि भाखे ।।
स्थानक विषयक सादडी माहे जो विधान बणियो ।
परिस्थिति वश उपाचार्य श्री उण ने इत हणियो ।।
तब बोल्या कोई बुधवन्ता करो हो आप काई ।।१२।।

सावत्सरिक प्रथम भादव मे ज्या मनवा लीनो ।
वा कोटडी को निषेधकारक विचार किम मीनो ।।
व्यक्तिगत मकान मे उतरण जो नहिं है त्याग्यो ।
तो कोटडी मे उतर जावो तो दोष किसो लाग्यो ।।
अध्यादेश आचार्य निकालयो उपाचार्य हेते ।
प्रथम भादवे पर्यूषण का भी निकला लेते ।।
जो जैसा हो उसे चला लो यह है अच्छाई ।।१३।।

चाद स्वामी ने फरमाया जरा और सोचो ।
यह निर्णय है पीछे हठ का पीछे से पहोचो ।।
सादडी के कुछ तो सोजत मे निश्चय गवडाये ।
यहा और उससे भी ज्यादा होगा दिखलाए ।।
जिसको जो भी छूट चाहिए वह यहा से लेगा ।
चला लेने वाला ही इसको यथेच्छ दे देगा ।।
सावत्सरिक की वस्तु सकारण वहा पर गवडाई ।।१४।।

आखिर विनति मान बिकाणे मुनिमडल आया ।
विशाल स्थान से किया कोटडी माहे उतराया ।।
सुशील आया कवि जी आये आये पजावी ।
शेप रहे मरुधरीय आये समर्थ समभावी ।।

सम्मेलन की बना भूमिका भीनासर आये।
स्वागतार्थी जनता की लाइन सडक दांये बाये ॥
नारे विविध भाति के पोस्टर पोशाक दिखलाई ॥ १५ ॥

स्थगित किया प्रस्ताव सादडी सावत्सरिक वाला।
कोटडी गत प्रतिबन्ध कटे ज्यो वह स्थानक वाला ॥
ध्वनिवर्धक की विधि के ऊपर अपवादिक आया।
वडे छोटे सन्तो का अनुभव प्रसग पर आया ॥
कई समिति मै कई विमति मे कई समय असमय।
देख देख कर केई बाते उपजा है विस्मय ॥
उपाध्याय मडल कर कायम कमी जो पूराई ॥ १६ ॥

मत्रीमडल शहर सादडी सविषय बनवाया।
प्रान्तवार इस समय बनाने का मन मे भाया ॥
स्वामी चान्द से मन्त्री पद के हित आग्रह कीना।
प्रथम बार भी आप माय सू कोई नही लीना ॥
दिया जबाब है स्वामी हजारी हम मे से वृद्ध।
इन्हे बनाये आप मन्त्रिवर विनय वाणी विद्ध ॥
पद की प्रियता कभी आपने थी नहि अपनाई ॥ १७ ॥

चातुर्मास की विनति वहा पर दिल्ली सघ करी।
किन्तु पदाधिकारी मुनि ने गढसीवाण वरी ॥
वापिस किया विहार नगीने आये मुनि तीनो।
—हरसोलाव सघ विनति की धर्म-प्रेम भीनो ॥
दो हजार तेरह वैसाख वद की दशमी मन्दा।
वैरागी पुखराज दीक्षा ली अभिध्यो शुभचन्दा ॥
स्वामी चान्द के प्रथम शिष्य की पदवी है पाई ॥ १८ ॥

बड़ी दीक्षा हुई जोधाणे धामधूम सागे।
वैरागी पारसमल आयो धरम रग रागे॥

चौमासे गढसीवाणा रो शोभायो भारी।
व्याख्यान वाणी धर्मध्यान रो आनन्द विन पारी॥

दशमी ढाल लाल पूरता वर्षावास विहर्या।
मारवाड रा क्षेत्र फरस कर व्यावर दिश विचर्या॥
मगरो देवगढ हो कर के मेदपाट माई॥ १६॥

दूहा

देलवाडा पउधारिया, मोतीलाल महाराज।
सन्त सावठा मेटिया, प्रेम पुराणो स्हाज॥ १॥

होली चौमासी करी, उदयापुर की ओर।
शील सातम करी वहा, क्षेत्र स्पर्शना जोर॥२॥

गोगुन्दा जसवन्तगढ, फरसत अनेक गाम।
आबू रोड खराडी हुय, पुर पालनपुर पाम॥ ३॥

कला—ग्यारहवीं, तर्ज—मु दड़ी

स्वामी चान्दमल जी महाराज उग्र विहारता जी।
देता भव जीवा ने साज धर्म प्रचारता जी॥टेर॥

आया सिधपुर और कलोल, पूगा अहमदाबाद की पोल।
आई विनतिया की ओल,
वम्बई अमरावती यू दोय आग्रह धारता जी॥ १॥

सूरत में जो पहली आसी, वे जन चौमासो पा जासी।
निज पहुचण री नीति प्रकाशी,
यो आश्वासन दे कर आप अग्र पधारता जी॥ २॥

केई शहर बीच मे आया, वडोदा वम्वइ सकेत पाया।
पण नहि अपणा वचन गमाया,
सूरत पहली वम्वई सघ सेवा स्वीकारता जी ।। ३ ।।

विलेपारला विनति मानी, चवदह दो हजार वर्पानी।
अमरावती जन दिवस दूजानी,
वा ने निराश जावणो पडियो विवशतारता जी ।। ४ ।।

ठाणा चार वैरागी पारस, स्वामी वान्द वचन सुधारस।
वम्वई सघ बडा ही वारस,
समदर सघी समुद्र समान काज कइ सारता जी ।। ५ ।।

विलैपारला करियो प्रवेश, सबके मन मे हर्प विशेप।
स्थानक साता ऋतू अशेष,
जैसे होय तपोवन वैसे शान्ति वधारता जी ।। ६ ।।

कवित्त

थानक विलेपारला को, लाखो माहि लख्यो एक,
आखो कहा ओपमा जो, जोडू पै जुडे नही।
वन है नदन किधो, चैत्य गुणशील किधो,
नदन है छटा मन, मोरे पै मुरे नही।
तीन-तीन द्वार जाते, जनता त्रिपथगा त्यो,
आवत है ताकि धार, तोरे तो तुरे नही।
दूसरे थानक या की, शोभा को तरस रहे,
चाहत अनेक विध, चोरे पै चुरे नही ।। १ ।।
द्वार-द्वार ठाढे भाति, भाति के सुरम्य वृक्ष,
वात्सल्य ते अतिथि की, स्वागत करत है।
हरत है मार्ग श्रम, सुशीतल छाव देय,
गेय ध्वनि मधुरिम, वायु ज्यो चरत है।

वडी दीक्षा हुई जोधाणे धामधूम सागे।
वैरागी पारसमल आयो धरम रग रागे॥

चौमासे गढसीवाणा रो शोभायो भारी।
व्याख्यान वाणी धर्मध्यान रो आनन्द विन पारी॥

दशमी ढाल लाल पूरता वर्षावास विहर्या।
मारवाड रा क्षेत्र फरस कर व्यावर दिश विचर्या॥
मगरो देवगढ हो कर के मेदपाट माई॥ १६॥

दूहा

देलवाडा पउधारिया, मोतीलाल महाराज।
सन्त सावठा मेटिया, प्रेम पुराणो स्हाज॥ १॥

होली चौमासी करी, उदयापुर की ओर।
शील सातम करी वहा, क्षेत्र स्पर्शना जोर॥२॥

गोगुन्दा जसवन्तगढ, फरसत अनेक गाम।
आबू रोड खराडी हुय, पुर पालनपुर पाम॥ ३॥

कला—ग्यारहवी, तर्ज—मु दड़ी

स्वामी चान्दमल जी महाराज उग्र विहारता जी।
देता भव जीवा ने साज धर्म प्रचारता जी॥टेर॥

आया सिधपुर और कलोल, पूगा अहमदाबाद की पोल।
आई विनतिया की ओल,
वम्बई अमरावती यू दोय आग्रह धारता जी॥ १॥

सूरत मे जो पहली आसी, वे जन चौमासो पा जासी।
निज पहुचण री नीति प्रकाशी,
यो आश्वासन दे कर आप अग्र पधारता जी॥ २॥

केई शहर वीच मे आया, वडोदा वम्वड सकेत पाया।
पण नहिं अपणा वचन गमाया,
सूरत पहली वम्वई सघ सेवा स्वीकारता जी ॥ ३ ॥

विलेपारला विनति मानी, चवदह दो हजार वर्षानी।
अमरावती जन दिवस दूजानी,
वा ने निराश जावणो पडियो विवशतारता जी ॥ ४ ॥

ठाणा चार वैरागी पारस, स्वामी वान्द वचन सुधारस।
बम्बई सघ बडा ही वारस,
समदर सघी समुद्र समान काज कइ सारता जी ॥ ५ ॥

विलैपारला करियो प्रवेश, सबके मन मे हर्ष विशेष।
स्थानक साता ऋतू अशेष,
जैसे होय तपोवन वैसे शान्ति वधारता जी ॥ ६ ॥

कवित्त

थानक विलेपारला को, लाखो माहि लख्यो एक,
आखो कहा ओपमा जो, जोडू पै जुडे नही।
वन है नदन किधो, चैत्य गुणशील किधो,
नदन है छटा मन, मोरे पै मुरे नही।
तीन-तीन द्वार जाते, जनता त्रिपथगा त्यो,
आवत है ताकि धार, तोरे तो तुरे नही।
दूसरे थानक या की, शोभा को तरस रहे,
चाहत अनेक विध, चोरे पै चुरे नही ॥ १ ॥
द्वार-द्वार ठाढे भाति, भाति के सुरम्य वृक्ष,
वात्सल्य ते अतिथि की, स्वागत करत है।
हरत है मार्ग श्रम, सुशीतल छाव देय,
गेय ध्वनि मधुरिम, वायु ज्यो चरत है।

गुणी को कदरदान, कूप जल पान हेत,
लेत है वलैथा ल्हेर, स्वच्छ भक्तिरत है।
निगुणी अपात्र को भी, देख लो दयालु यह,
कलू को निवाण नल, ठाडो राखी सत है॥ २॥

लागो साइन बोर्ड ज्यॉसू, ठोड जड जाय झट,
नाम कडवी वाई पैं, मिठास कियो जोर को।
जात की विराणी पै है, दान छितराणी जैसो,
सेठ है खुशाल देखो, इण ही के तौर को।
दीखे वागवाडी है, गवाडी जगी झाडन की,
लगी होड छुवे मिल, आभा हु की कोर को।
इष्ट ते आवत चल, आय इत वेस्ट हु मे,
सुन्यो जात कूजन, पिक टहूको मोर को॥ ३॥

सिरे वारणा पे झाड, पीपल विशाल ठाडो,
वोले मानो पल-पल, पी ले सौम्य रस को।
अन्दर उभय और, पुकारत सहकार,
मिले सहकार धारे, सम्यग दरस को।
चीकू के कहत झाड, चिकने न बाधो कर्म,
अशोक कहत रखो, नित्य ही हरस को।
इनके सिवाय भाति, भाति के प्रफुल्ल पुष्प,
पोषते रहते चित, नित रस कस को॥ ४॥

चारो ओर ठाढी शोभा, बाढिवे उमग अग।
मन हरनार है, कतार नारियल की।
गिनति के पत्र भले, शाखा प्रतिशाखा हीन,
छटा खूब छाजत है, झु ड श्री फ्ल को।

कहे नारिकेलि कीन, अन्दर की जान पर,
और पै हजूर या के, आगे जात हलकी।
पानी को जतन करी, जीवन को ढालने की,
करत हरेक सो या, वात है अकल की ॥ ५ ॥
सामने से ट्रेन कह, लगातार रैन दिन,
चार-चार लेन चाले, मानो चार गति सी।
आठ-आठ कर्म जैसा, आठ चहिला है चोडा,
दौडा-दौड करे रेल, जेज नही रति सी।
गाडी बिजली की कइ, तार के आधार चाले,
दोनू वाजू दुमूही सी, भागे है अछती सी।
एक पण समै हु को, चूको मत चेतन जो,
जिन्दगी है कहे मानो, जले एक बत्ती सी ॥ ६ ॥
कोई गाडी चाले फास्ट, आख भी न थमे जा पे,
स्टेशन अनेक छोड, जक्शन को लेवे है।
ता हू मे भी भीड ऐसी, लटु बे बाहर लोग,
डिब्बो के ऊपर भी तो, केई बैठा रेवे है।
दोय डिब्बा जुडे जठे, उभा कई जणा रहे,
पडण मरण डर, रति नही सेवे है।
गति आगति को दृश्य, दिखावे है भिन्न-भिन्न,
अब तो मुगती चाल, ज्ञानी जन केवे है ॥ ७ ॥
मोक्षमार्ग साधक के, प्रवचन-माता आठ,
घाट राखे नाहि ताके, पालन के काम मे।
वैसे इत धर्मियो के, कह अम्बा हाजिर है,
वायु और ठडक के, खास इन्तजाम मे।

गुणी को कदरदान, कूप जल पान हेत,
लेत है बलैया ल्हेर, स्वच्छ भक्तिरत है।
निगुणी अपात्र को भी, देख लो दयालु यह,
कलू को निवाण नल, ठाडो राखी सत है॥ २॥

लागो साइन बोर्ड ज्याँसू, ठोड जड जाय झट,
नाम कडवी वाई पै, मिठास किधो जोर को।
जात की विराणी पै है, दान छितराणी जैसो,
सेठ है खुशाल देखो, इण ही के तौर को।
दीखे बागवाडी है, गवाडी जगी झाडन की,
लगी होड छुवे मिल, आभा हु की कोर को।
इष्ट ते आवत चल, आय इत वेस्ट हु मे,
सुन्यो जात कूजन, पिक टहूको मोर को॥ ३॥

सिरे वारणा पे झाड, पीपल विशाल ठाडो,
बोले मानो पल-पल, पी ले सौम्य रस को।
अन्दर उभय ओर, पुकारत सहकार,
मिले सहकार धारे, सम्यग दरस को।
चीकू के कहत झाड, चिकने न बाधो कर्म,
अशोक कहत रखो, नित्य ही हरस को।
इनके सिवाय भाति, भाति के प्रफुल्ल पुष्प,
पोषते रहते चित, नित रस कस को॥ ४॥

चारो ओर ठाढी शोभा, बाढिबे उमग अग।
मन हरनार है, कतार नारियल की।
गिनति के पत्र भले, शाखा प्रतिशाखा हीन,
छटा खूब छाजत है, झु ड श्री फल को।

कहे नारिकेलि कीन, अन्दर की जान पर,
और पै हजूर या के, आगे जात हलकी।
पानी को जतन करी, जीवन को ढालने की,
करत हरेक सो या, बात है अकल की ॥ ५ ॥
सामने से ट्रेन कह, लगातार रैन दिन,
चार-चार लेन चाले, मानो चार गति सी।
आठ-आठ कर्म जैसा, आठ चहिला है चोडा,
दौडा-दौड करे रेल, जेज नही रति सी।
गाडी बिजली की कइ, तार के आधार चाले,
दोनू वाजू दुमूही सी, भागे है अछती सी।
एक पण समै हु को, चूको मत चेतन जो,
जिन्दगी है कहे मानो, जले एक बत्ती सी ॥ ६ ॥
कोई गाडी चाले फास्ट, आख भी न थमे जा पे,
स्टेशन अनेक छोड, जक्शन को लेवे है।
ता हू मे भी भीड ऐसी, लटु बे बाहर लोग,
डिब्बो के ऊपर भी तो, केई बैठा रेवे है।
दोय डिब्बा जुडे जठे, उभा कई जणा रहे,
पडण मरण डर, रति नही सेवे है।
गति आगति को दृश्य, दिखावे है भिन्न-भिन्न,
अब तो मुगती चाल, ज्ञानी जन केवे है ॥ ७ ॥
मोक्षमार्ग साधक के, प्रवचन-माता आठ,
घाट राखे नाहि ताके, पालन के काम मे।
वैसे इत धर्मियो के, कह अम्बा हाजिर है,
वायु और ठडक के, खास इन्तजाम मे।

साधु साधवी की कइ, आधि और उपाधि मिटे,
सेवाभाव राखे कान, धन्य आठो याम मे।
दो हजार पाच साल, डेढ लाख रुप्यको मे,
ले के राख्यो थानक को, हमेशा हगाम मे ॥ ८ ॥

प्रतिवर्ष चातुर्मास होत, साधु साधवी के,
चले जैन शाला फिर, धार्मिक सिखाइबे।
सघ और बाकी सब, सुव्यवस्था राखी देखो,
कमेटी मिटिगा करे, प्रेम को वढाइबे।
सन्त सती कोई कही, पढिबो जु चाहे ता को,
सब ही प्रबन्ध करे, सुपथ चढाइबे।
ऐसो ऐसो करे काम, सब ही को दे आराम,
शासन की सेव करे, उन्नति उपाइवै ॥ ९ ॥

दो हजार चवदे के, चौमासे मे स्वामी चाद,
सान्धी सब लोगा सेती, धार्मिक आतमीयता।
सेवा माहि "जीत" "लाल", 'शुभमुनि' ठाणा चार,
वैरागी 'पारसमल', धैर्य धरे णीयता।
साम्वत्सरिक पर्व को, व्याख्यान ह्वौ कलाक नौ,
कही पूज्य जयमल्ल, कथा मननीयता।
प्रतिपूर्ण पौषध जो, कह्या एक सौ ने आठ,
सवा सौ से ज्यादा हुए, धर्म दर्शनीयता ॥ १० ॥

विलेपारला की सख्या, चौवीसमी आजू बाजू,
पूरब पच्छिम जा के, वैमानिक धाम है।
बी बी एण्ड सि आई को, रेलवे है मध्य माहि,
आजकल बोले या को, पश्चिम के नाम है।
वल्लभ भाई रोड पे, स्टेशन के नजदीक,
स्थानक को नम्बर, पेंसठ शभ ठाम है।

सभी ऋतु साताकारी, बारी ज्ञान ध्यान हू को,
मौके पै मकान सब, भाति सो ललाम है ॥ ११ ॥

दूहा

शशि गुरु बच अगी करी, एकादशी तैयार ।
श्रमण लाल इकवीस मइ, गुणसठ ने गुरुवार ॥ १ ॥

कला—ग्यारहवी, तर्ज—वही

पूर्यो चौमासा को काल, आए चीचपोकली चाल ।
उपाध्याय श्री प्यार विशाल,
रात्निक लाभ चौथ मन शुद्ध मिले प्रियता रता जी ॥ ७ ॥
शाकाहारी पार्टी विदेशी, सघ ने स्वागत किया शुभेषी ।
शोभा मुनियो की सुविशेषी,
आये कादावाडी चाद नीति निखारता जी ॥ ८ ॥
श्रावक सघ श्रोता गुणग्राही, वर्षावास हृदय मे चाही ।
आये मुख्य जवाहर शाही,
ले गए मेघदूत निज थान भाव भक्तिरता जी ॥ ९ ॥
वोहरा जी श्री दुलहराज, मुखिया बैंगलोर समाज ।
विनति आग्रह की सुखसाज,
इधर मुणोत महाराष्ट्र पालब पसारता जी ॥ १० ॥
वम्बई बैंगलोर मराठा, आग्रह तीनो का ही काठा ।
रख कर पूना का विच पाठा,
करिवो उणी दिशा सुविहार कर्णाटक सूरता जी ॥ ११ ॥
विच मे आई है पनवेल, बाठिया श्रावक पुण्य सुवेल ।
आया वम्बइ का संघ गेल,
अर्जी गुजार रह्या इण भात विनय विचारता जी ॥ १२ ॥

समझ लो इसको ही ग्रब पूना, सन्त ग्राप मरुधर का जूना ।
ग्रागो पडसी मारग दूना,
मानो विनति ग्रग्रिम ग्राप भू न वधारता जी ॥ १३ ॥
तो भी राखण हेतु जवान, चढिया घाट खडाला ग्रान ।
पैंसठ वर्षीय वृद्ध जवान,
मन मे उमग तन की शक्ति ग्रति विस्तारता जी ॥ १४ ॥
लोनावला पधारे ग्राप, फागण वद गुरुवार प्रताप ।
स्थिरता दो दिन की मन माप,
पण नहिं ग्रपने हाथ कुछ वात होवे होणारता जी ॥ १५ ॥
शुक्रवार का दिन मध्यान्ह, कायिक चिन्ता लाल निदान ।
बोले चाद स्वामी पुनवान,
ले जा मेरी यष्टि हाथ रहे सहारता जी ॥ १६ ॥
परन्तु भावी भाव प्रधान, बात न गुरुदेव की मान ।
जाता मार्ग हुई है हान,
साइकिल एक्सीडेट से पैर दक्षिण प्रहारता जी ॥ १७ ॥
इग्यारहवी हो गई ढाल, बोले यहा पर यू मुनि लाल ।
जो वरते गुरु ग्राज्ञा टाल,
वां ने परतिख परचो शीघ्र मिले यह धारता जी ॥ १८ ॥

दूहा

नल की हड्डी टूटगी, लटक गयो पग लेख ।
मुझ मन भयो विचार ग्रति, दशा करम री देख ॥ १ ॥

क्यो उल्लघ् गुरु वचन, मन मसताइ राख ।
भण गुण ने उपदेश दू, ग्राज हुवो सब राख ॥ २ ॥

पग टूटो तनपीड नही, पण मन ग्रति उतपात ।
ग्रब इण सावल होण मे, कितरो दुख उपजात ॥ ३ ॥

कितरा दिन किणठोर पुनि, किसो हुसी उपचार ।
खोड कदाचित रह गई, तो जीवन होसी भार ।। ४ ।।
स्ट्रेचर माहि उठाय के, लाया उतरण थान ।
मेलो मडियो उण जएह, जैन अजैन सब आन ।। ५ ।।
डाक्टर सरकारी कह्यो, अठे न होय इलाज ।
पूने ले जावो परा, मोटर केरे साज ।। ६ ।।
सुनता तत्क्षण मे कह्यो, आ नहि होवे वात ।
अनशन कर लेसू परो, सुन सब जन अकुलात ।। ७ ।।
देख हाल गुरु देव यह, अट्ठम तप चौविहार ।
ठाय ध्यान विराजिया, जप माला कर धार ।। ८ ।।
मन उदास मुनि जीत शुभ, पार्श्व विरागी और ।
गुरु आज्ञा के भग को, कितरो दुख कठोर ।। ९ ।।
छोरू कूछोरू हुवे, मायत कुमायत नाय ।
कई बार काना सुणी, सो साची आय दिखाय ।।१०।।
मैं कुपात्र मानी नही, हित री चित री आण ।
तो भी मायत तुरत ही, लिय अट्ठम पचखाण ।।११।।
वातावरण विलोक के, कीधो बम्बई फोन ।
आयो जबाब आवा हमां, जिते कुछ भी करो न ।।१२।।
मै अनशन राख्यो स्थगित, पै स्वामी पचखाण ।
राख्यो अविचल ध्यान पुनि, गुरु धन्य गुण खान ।।१३।।
उवसगहर उचारता, हुओ ध्यान मुझ लीन ।
इतेक आयो डाक्टर, प्राइवेट प्रवीन ।।१४।।
टेम्प्रेरी कर प्लास्टर, कह्यो नेवी इत केम्प ।
हो जासी हर भाति सू, लग्यो तमसि ज्यू लेम्प ।।१५।।
शुक्रवार की वात यह, शनि को एक्सरे होय ।
रविवार को आये प्रमुख, बम्बइ डाक्टर लोय ।।१६।।

कला—बारहवी, तर्ज—म्हांड

सघ बम्बइ को आयो, भक्ति सवायो, सोहायो मन मांय ।। टेर ।।
डाक्टरी विधि प्रारम्भियो रे इलाज पुण्य प्रभाव ।
रवि-रवि आय सभाल लेवता मुखिया जन धर भाव हो ।। १ ।।
जो सुणिया सो आया दर्शन ने सब क्षेत्रा रा भक्त ।
सघ लोणावलो सभी तरह सू स्वागत मे रह्यो शक्त हो ।। २ ।।
च्चिट्ठी पत्री तार फोन सू सुखसाता पूछन्त ।
सब ने बराबर जाब देयकर लिखताथा विरतत हो ।। ३ ।।
पूना सू पडितजी मुनि श्री सिरेमल जी आय ।
सुणता ही दो ठाणा सू वे सेवा देण सहाय हो ।। ४ ।।
मास एक सू धीमे-धीमे हड्डी ठिकाने आय ।
पट्टो बाध दियो चूना रो पैंतालिस दिन थाय हो ।। ५ ।।
केवल चित्त ही सूता रेणो सब ही काम तथेव ।
सब ही जणा सावधानी राखी सेवा माय सदेव हो ।। ६ ।।
कादावाडी चौमासा री विनति करी मजूर ।
इलाज री सुविधा रे कारण रेणो नाहि दूर हो ।। ७ ।।
कोई कह्यो ठैला मे ले चालो कोइ बाबा गाडी माय ।
म्हारे मन डोली री जचगी गृहस्थ उठाय ले जाय हो ।। ८ ।।
पग-पग मन रेसी पछतावो कहसी लोग कुबोल ।
वायु विराधन वली सवारी ठीक नहिं यह डोल हो ।। ९ ।।
लोणावला सू बम्बई दिशा मे पाछो कियो प्रयाण ।
पुण्यपतन तो रह्यो नाम को मिलियो नहि ओसाण हो ।।१०।।
पद्रह रो चौमासो कादावाडी मास ज पाच ।
फेर पजुसण री तो लागी सघ मे खेचाखाच हो ।।११।।
उपाचार्य श्री अतरग मे देख निजी कुछ हान ।
राखी बात सादडी वाली टूटी जिणसू तान हो ।।१२।।

उपाध्याय गज और आनन्द मत्री पान्ना मिश्रीश ।
चारो मिल के लीनो निर्णय जिण मे राग न रीस हो ।।१३।।
सावत्सरिक समिति ही रहसी निर्णायक इण हेतु ।
आचार्य और उपाचार्य दोनो रहो इणसू रहेतु हो ।।१४।।
प्रथम क्रिया इण हेतु पजूषण पण दूणो धर्मध्यान ।
हुबो इलाज सविधि सम्पूर्ण पच समवाय प्रधान हो ।।१५।।
खोड रही नहि कोइ वात री सुफलिया सब ही प्रयास ।
स्वामी चान्द प्रसन्न देखकर मुझ मन अमित उल्लास हो ।।१६।
ढाल वारहवी कही इस तरह बम्बई फरस्यो फोर्ट ।
क्षेत्र स्पर्शना साल सोलह रो चौमासो उण कोट हो ।।१७।।

दूहा

कादावाडी चौमास की, उपलब्धिया अपार ।
तन मन धन त्रिवेणी सू , साता हुइ सुखकार ।। १ ।।
ज्ञान ध्यान प्रश्नोत्तरा, शका ने समाधान ।
विचार वाच वचावता, पायो ज्ञान निधान ।। २ ।।

तपसी रामजी वीरजी, श्रावक सतरा गोत ।
ज्यारी तपस्या देखकर, मुझ मन ह्वो उद्योत ।। ३ ।।
वह शान्ति वह प्रसन्नता, वह ज्ञान अभ्यास ।
वह दिन रात स्वाध्याय रति, वह तापस उल्लास ।।४।।

पूर्वभवीय सबध को, स्वामी चान्द के साथ ।
प्रगट्यो पुण्योदय थकी, विधि पकडायो हाथ ।। ५ ।।

मोहमयी मे तीसरो, चौमासो हो कोट ।
दो हजार सोलह विषे, वधी धरम री पोट ।। ६ ।।

परिचय वधियो प्रेम रो, जिज्ञासु जनता हि ।
अति आग्रह अमरावती, दिशि स्वामी विहर्याहि ।। ७ ।।

कला—तेरहवी, तर्ज—नेम जी की जान

स्वामी श्री चान्द सुखकारी, मही महाराष्ट्रिय पदचारी ।। टेर ।।
साथ मे गुरभाई जीत, भतीज शिष्य लाल सप्रीत ।
मुनि शुभचद्र प्रकृति शीत, वैरागी पारस सुविनीत ।।

नासिक आता मिल गया, मुनि कल्याण ऋपीश ।
रह्यो समागम सरल प्रेममय विमल सुविश्वावीश ।।
तिथि सुदि चैत्र सतरा री ।। १ ।।

लासलगाव धरम की स्कूल, क्षेत्र मनमाड खिलियो फूल ।
नान्दगाव श्रावक अनुकूल, गाव कइ कोई न प्रतिकूल ।।

भूसावल मे भाव सू, रह्या एक दो रात ।
वरणगाव होकर के आये जलगाव मेरू ख्यात ।।
पुण्य तिथि पूज्य जयकारी ।। २ ।।

पाचोरा क्षेत्र है स्पर्शा, मलकापुर आवत सघ हर्पा ।
नान्दूरा दर्शन कर सरसा, लाल पुन आया तीस वर्पा ।।
खामगॉव तो क्षेत्र है, मम प्रथम चौमासी ।
उगणीसे सितियासी अन्दर स्वामी गणेश सकाशी ।।
पुराणी स्मृति जागी सारी ।। ३ ।।

बालापुर बडगाव आये, तादली बुजरक सोहाये ।
मैंने (लाल ने) जहा सजम गुण पाये, भूमि जहा तीर्थभूत भाये ।।

आकोले चौमास था, तैयासी के माय ।
वैरागी था उसी समय मैं गुरु गणेश बखत पसाय ।।
शील परिवर्तन सस्कारी ।। ४ ।।

मूर्तिजापुर और बडनेरा, अमरावतीपुर आया नेरा ।
चौमासा सतरा की ल्हेरा, भविक आनन्द हुआ ग्हेरा ।।

तपसी जी श्री राम जी, ठायी तपस्या जाण ।
वातावरण बढा धरम का, तपोधाम गुणग्राम ।।
शासन की महिमा विस्तारी ।। ५ ।।

तेला का तप ऐसा फैला, अजैनो तक ने भी झेला ।
उज्ज्वल किय आतम जो मैला, वृद्ध युव बालक अलबेला ।।

सभी लोग हर्षित हुए, तप पूत किय देश।
दर्शनादि गण निकट दूर के उमडे हर्ष अशेष ॥
जिनागम वर्षा हुवी भारी ॥ ६ ॥

आई तहा वाई उमराव, जिसी का टीटवा गाँव।
प्रज्ञामय नेत्र है साव, जिनागम पठन तीव्र भाव ॥

उतर चौमासे विचरिया, फरस्या क्षेत्र अनेक।
चादुर धामक और टीटवा जहाँ वहुत विवेक ॥
मागला देवी सभारी ॥ ७ ॥

यवतमाल बाइस दिन थिरता, रालेगाव आये विहरता।
होली चौमासी जहा करता, धर्ममय प्रेम तत्परता ॥

नागपुर की वीनती, मान्यो वर्षावास ॥
विचर्या पाठरकवडा कानी वणी धरम विकास ॥
बरूडे प्रियता वरतारी ॥ ८ ॥

नागपुर धर्म उद्योते, कटगी के श्रावक पहोते।
विनति दीक्षा की होते, बीज जो धर्म का बोते ॥

दुतिया जेठ एकादशी, सुद पख शनिसर वार।
वैरागी से मुनी बना है पारसमल श्रीकार ॥
खिली हृत्कज कलिया सारी ॥ ९ ॥

जोडी शुभ गुरुभाई प्यारा, बडी दीक्षा हुई भडारा।
चौमासा नागपुर धारा, छत्तीसगढ उमडा है सारा ॥

द्विमासिक तप आदरा, तपसी रामजी आय।
समतावान क्षमा के सागर साधुजी के दाय ॥
छाप सबही के सिर डारी ॥१०॥

रायपुर छत्तीसगढ वारी, विनतिया मान सुविहारी।
भडारा भलगट परिवारी, स्वामी त्रय ठाणा सुखकारी ॥
आप वहा विराजिया, भेजा शुभयुत लाल।
राजनान्दगाव दुर्ग हो आये रायपुर चाल ॥
आकर्षण इक्कीस दिन कारी ॥११॥

ठाणे दो पीछे ही विहरे, दुर्ग मे कुछेक दिन ठहरे।
राजनान्दगाव के शहरे, अष्टग्रही योग को लहरे।
भडारा से स्वामी जी, वालाघाट पधार।
विराजने लगे वही पर होली चौमासी स्वीकार ॥
दर्शन की लालसा भारी ॥१२॥

ठाणे दो गोदिये आये, जहा पर गुजराती आये।
विहरे गुरुदर्शन है पाये, हृदय मे मोद नही माये ॥
उण दिन को आनन्द तो, तनिक न वर्ण्यो जाय।
प्राप्त सफलता विरह मिटण री जीवन को सुख पाय ॥
धन्य क्षिति वालाघाट वारी ॥ १३ ॥

रायपुर राजनान्दगाँव, तीजो दुर्ग सघ को नाव।
विनति वर्षावास भाव, लग्यो राजनान्दगाव दाव ॥
दो हजार उगणीस का, सुखमय वर्षावास।
महाभारत व्याख्यान रात मे सुना सभी सोल्लास।
स्वमत परमत मे प्रतिभारी ॥ १४ ॥

छत्तीसगढ आग्रह स्वीकारी, कवर्धा तरफ विदा धारी।
आये वहा दो को विहारी, मुगेली कानी सचारी ॥
होली चौमासी रायपुर, विनति वर्षावास।
शेपकाल मे दुर्ग वालोद तक फिर भेजे धमतरी खास ॥
धर्मश्रद्धा जनता धारी ॥ १५ ॥

रायपुर हुआ चौमासा, अधिक था कार्तिक का मासा।
किन्तु नहि गिना उसे खासा, होली आती थी तिन मासा ॥
लौकिक कार्तिक मास को, अपना मिगसर जान।
रखा विहार ही कर लेने का कल्प कल्पना भान ॥
सघ मद्रासीय जसधारी ॥ १६ ॥

अत्याग्रह आश्वासन पाया, उणी दिश विहार करवाया।
मार्ग वह पीछा अपनाया, धन्य हो चाद महाराया ॥
हिगणघाट होते हुए, चान्दा गये पधार।
सघ सिकन्द्राबाद का आया हर्ष उछाह अपार ॥
विनति कीनी हदपारी ॥ १७ ॥

ढाल आ तेरमी पूरो, मजोल अब तक अधूरी।
स्वामीजी की कीर्ति है भूरी, आई है बलारसापुरी ॥
आसिफाबाद कागजनगर, पल्ली नाम कइ गाम।
काजीपेठ पहुचते वापिस सघ सिकन्दरा ताम ॥
वरंगल तक हुए अनुसारी ॥ १८ ॥

दूहा

दिवस चार भी आ वहा, यदि रह विराजमान।
हो तो हम यह मान ले, वर्षावास समान ॥ १ ॥

सस्ता सौदा देखकर, विनति लीनी मान।
स्वामी ठाणा पाच से, होली चौमासी स्थान ॥ २ ॥

चातुर्मास की वीनति, रायचूर मद्रास।
तीजी सिकदराबाद की, अतिआग्रह की खास ॥ ३ ॥

पहली वार पहली हुई, शेष दूसरी वार।
पै मद्रासिय की हृदय, कुछ आश्वासन धार ॥ ४ ॥

वोलारम मे मान्य हुी, बही प्रेम की धार।
चैत्र अधिक के हेतु से, समय सहाय विहार ॥ ५ ॥

फग्स उपनगर चल दिये, नागार्जुन की ओर।
मों माइल तक सघ ने, तजी न अपनी दौर ॥ ६ ॥

सेवाभावी आ गये, श्रावक मद्रासीय।
नन्दलाल तातेड जो, मुनीम भाडारीय ॥ ७ ॥

दो हजार इक्कीम का, वीर जन्म कल्याण ।
गुडूर दुग्गड नेमि का, आग्रह रखा प्रमाण ।। ८ ।।

कारा मोटरा औ वसा, रेला द्वारा लोग ।
वाथा भाया पनरसौ, आ पहुचे पुन जोग ।। ९ ।।

घुमडीपुडि पुने रि पुनि, सुलूर कवरापेट ।
रेडहिल्स अरु केसरीय, वाडी आये ठेट ।।१०।।

कइ पेट होते हुए, पहुचे मिट स्ट्रीट ।
उमडे लोग स्वागत विपै, समा सके जो नीत ।।११।।
आसपास के उपनगर, कहलाते वाजार ।
रायपुरम् मैलापुरम्, सब की भक्ति अपार ।।१२।।

कला—चवदहवी, तर्ज—सदा तुम जैन धर्म पालो

वयोवृद्ध चान्दमल्ल स्वामी, मरुधरीय मुनियो मे नामी ।
साहूकार पेट चौमासो दो हजार इक्कीस ।
सघ सभी साधु औ श्रावक वात रखी इक्कीस ।
भाया बाया बहुत से आये धर्म का ठाट लगवाये ।।

वखाणा वाणी सुण जाये ज्ञान ध्यान सीखे सिखलावे ।।
प्रगट घट आनन्द पाये बे ।। १ ।।

चौमासो उतर्या के पहली बेंगलोर को सघ ।
आया विनति आगामी ले मन मे बहुत उमग ।
पैरम्बुर माम्बलम नकसा रायपेट अयनावरम् सकसा ।
फरसे बजार सभी अकसा, पलावरम् तामरम निष्पक्षा ।।
भक्ति वर भाव सुरक्षावे ।। २ ।।

सदापेट आलदुर फरस्यो तिरुमझिसाई फेर ।
पूनमली पटाभिराम और तिन्नानुर लघु शहेर ।
छूट्या कह नाम बाजारा भक्ति का भाव अपारा ।
स्व पर नही भेद लिगारा गाव है मरुधर का सारा ।।
हिया मे हेज धरा वे ।। ३ ।।

तिरुवेलोर होली चौमासो विनति आग्रह पूर।
मैलापुर सघ था अगवानी जन मद्रास सनूर।
चौमासो और एक करणो वरस भर दूर न विहरणो।
नाग्लापुरम भी विचरणो स्वामी की आज्ञा अनुसरणो॥
लाल शुभ काम करणो वे॥ ४॥

ऊतकोटो आयो मारग मे पाछा तिरवेलोर।
आरकोणम तरफ विचरिया ठाणा पाच हजूर।
काजीवरम छोटी वडी पाया वीर जिन जन्म मनाया।
सघ केइ गाव रा आया मद्राम वैंगलोर रा भाया॥
हजारो चार कहाया वे॥ ५॥

मैलापुर चौमासा स्वीकृत विनति आखातीज।
साहूकार पेट की मानी स्वामी जी किय रीझ।
सघ यह विल्लीपुरम् को हेतु इण आग्रह किय बको।
पठियो शुभ लाल नि सकोच उलूदुरपेट को डको।
उत्तिरामेरु अचरापाक को वे॥ ६॥

दो हजार बाइस साल को मैलापुर चौमास।
भीकम भवन सुराणे निवसिया चौरडिया आवास॥
बच्यो जहाँ पर व्याख्याना सवत्सरी स्कूल मैदाना।
मेदिनी जनता असमाना, सभी जन धर्म प्रेम जाना॥
तपस्या झडी लगाना वे॥ ७॥

चौमासो उतर्या विहरिया वैंगलोर के लक्ष्य।
होला चौमासी वैलूर की प्रभु वीर जन्म प्रत्यक्ष।
राबर्टसनपेट पधारे चौमासा वही पर स्वीकारे।
हर्ष अलसूर वाजारे सावण दो थे इस बारे रे॥
मोतियाविन्द हुओ उपचारे॥ ८॥

होली चौमासो दौडवालापुर चिकपेट वर्षावास।
करीम विल्डिंग वेंग्लोर मे वरवाण स्कूल मे खास।

तेइस चौइस की साले चौसासे दो वैंगलोर वाले ।
धर्म और ध्यान की चाले चली होडाहोड मतवाले ।।
पिये है प्रेम के प्याले वे ।। ६ ।।

वम्बई की दिश भये विहारी खीचा मोडूलाल ।
सेवाभाव विहार साथ मे लूकड लूणिया वाल ।
हिन्दुपुर अनन्तपुर आये वलारी सिरीगुफा पाये ।
सिधनूरचिनूर कहलाये रायचूर क्षेत्र सोहाये ।।
सैदापुर पेट आये वे ।। १० ।।

यादगिरी धोका की नगरी मारवाड साथीण ।
सौरापुर होली चौमासी इल्कल पुरी अदीन ।
वीर जिन जन्म कल्याणा विलेपारला सघ आना ।
वर्पावास विनति माना वागलकोट वेताला स्थाना ।।
वीजापुर पारणा ठाना वे ।।११।।

सोलापुर से पूना आये पुष्कर मुनि मिलाप ।
मरुधरिय सघ प्रवृत्ति परिचित भई अमाप ।।
खडकी से चीचवड फरसी आया बडगॉव भाव सरसी ।
लोणावला श्हेर अमृत वरसी देखता आतमा हरसी ।।
मिट्यो दुख भक्ति प्रकर्षी वे ।।१२।।

खडाला खोपोली विच का उतरा घाट दुबारा ।
धन्य चाद स्वामी आप री प्रेम वत्सली धारा ।।
कोकण जनपद की राजधानी थाणापुरी है मन के मानी ।
वम्बई नगरी कू आनी साल पचीस पोछानी ।।
भूमि विलेपारला मानी वे ।।१३।।

सघ समग्र हर्प अनुभवियो मित्र विछडिया मिलिया ।
स्वामी जी के भी हिरदे की खिली मनु सब कलिया ।
स्थानक मे कुछ था परिवर्तन नम्बर चौवीस से था छप्पन ।
तथापि प्रसन्न था तन मन अचम्भा करते थे सब जन ।।
लगा है मास सावन वे ।।१४।।

मोतियाबिद दूसरी आख का इलाज है करवाया।
मिली सफलता श्रुत वाचन का आनन्द अधिक उपाया ॥
शरीर के वर्ष पचहत्तर स्वामी जी तीन तरह स्थेविर।
क्रिया मे सुस्त न रत्तीभर क्षेत्र यह सव ही विधि सुख कर ॥
लोग कहे आवो मरुधर वे ॥१५॥

स्वामी जी ने मन मे सोचा अवे नपस्या करणी।
साताकारी जगह यहा की सुविधा जाय न वरणी।
तपोवन जैसा लगता है चित्त भी कही न भगता है।
धर्म का ध्यान लगता है आगम मे हृदय उमगता है ॥
लक्षण क्यो अलगता है वे ॥१६॥

लाल ढाल चवदमी पूरी स्वामी चांद चरित्र।
अकस्मात प्रसन्नता इतनी यद्यपि परम पवित्र ॥
फेर भी बहम उपजाती छद्मस्थता कई रग लाती।
करम गति जब उदय आती कई विध निमित्त बतलाती ॥
समभ कुछ काम न आती वे ॥१७॥

दूहा

दीपावली चली गई, गुर्जरीय नव वर्ष।
वीर सवत् के रूप मे, लग्याँ उपजियो हर्ष ॥ १ ॥
पण जुकाम कुछ हो गयो, स्वामी चाद शरीर।
जिणनें आप धार्यो नही, सहनशील सधीर ॥ २ ॥
सही तपत सर्दी सही, सही भूख अरु प्यास।
ताव बुखार बिमारिया, सहित सही स्मितहास ॥ ३ ॥
अकस्मात सुद चौथ ने, शुक्रवार दिन आय।
पौने पाच वजे वखत, खडे हि ध्यान लगाय ॥ ४ ॥
वाँये करवट गिर पडे, देख आये चउ सन्त।
उठाय के वैठे किये, वामाङ्घ्रि क्षतिवन्त ॥ ५ ॥
पाटा उपरि सुवाणिया, वाम हाथ अरु पैर।
उठे सन्तुलित नहिं लगे, पुनि वोलन मे फेर ॥ ६ ॥

डाक्टर आये देख कर, लखि रसना दुहुँ पक्ष ।
पसवाडे फिरवाय के, अक्षि उपरितो लक्ष ॥ ७ ॥

प्रत्युत्तर यथार्थता, और विशेप प्रकार ।
परीक्षण करते जचा, न पक्षाघात प्रसार ॥ ८ ॥

चक्कर से नस मगज की, हो गई हो वेकार ।
वी पी एकसौ सितर था, यह निदान का सार ॥ ९ ॥

डाक्टर साहव दूसरे, देख उचारा वैन ।
गिरने से अस्थि भगी, ज्यो कर पग चलते न ॥१०॥

इतने मे सूर्यास्त था, प्रतिक्रमण लेटे हि ।
किया गिने दैनिक सव हि, स्तोत्र सज्भाय सनेहि ॥११॥

कला—पद्रहवी, तर्ज—क्या रामचद्र से मेरी

क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ।
लो कर दो मुझ को खडा अहो यह भुज है ॥ टेर ॥

स्वामी जी वारवार उठ कर बोले,
कुछ रखो सहारा चल लू होले होले ।
कहते क्यो कर लोग चला नहि जाता ।
मेरे तन मे कोइ न दर्द कही दिखलाता ॥

होता अनुभव स्वास्थ्य विषय का मुझ है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ १ ॥

बोले गुरुभाई जीत डाक्टर यो कहते,
है अस्थि भग्न कटि माहि कही वे लहते ।
इसीलिए नहिं तनिक डुलन मत देना ।
कही इधर उधर खिसके तो कारी लगे ना ॥

स्वामी जी सुस्ताय सोये ज्यो अरुज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ २ ॥

निशि दशवादन समये डाक्टर आये,
देखा तो वी पी दो सौ लगभग पाये ।

नाडी सीना थे ठीक चौविहाहारी ।
वी पी के लिए न हो सकता उपचारी ॥
है अनशन का सागारी खास अनुज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ ३ ॥

छब्बीस दश अडसठ पचमी ज्ञाना,
शनि प्रात देखा तो डाक्टर किया बयाना ।
वी पी है दो सौ शुरु किया उपचारा ।
इजेक्शन टेबलेट्स का लिया सहारा ॥
ज्यो लकवा बी पी और अस्थि अरुज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ ४ ॥

दो वर्ष पूर्व बैंग्लोर मे हल्का झटका,
'आया तब अन्न त्याग दिया बे-खटका ।
व्याख्यान मे कादावाडी सघ विनन्ती ।
की चौमासा सम्बन्धी आग्रहवन्ती ॥
कहा करू गुरु से अर्ज काम यह मुझ है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ ५ ॥

लोणावला के समय आपकी सेवा,
दिया सयम मे साज साक्षी जिनदेवा ।
मै हू उस ऋण मे बद्ध निपेध करू ना ।
इनको आश्वासन जान उमग हुआ दूना ॥
फिर वैधानिक की अरजी स्वामी कही गुज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ ६ ॥

थी मरुधर दिशि जिगमिषा किन्तु तन कारण,
यह तो दिखती है स्थगित यही उच्चारण ।
बन्धी सघ को आश चौमासा या ही ।
होता प्रतीत होता है शका नाही ॥
छठ रवि सताइस ऊग गया सूरज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥ ७ ॥

फेक्चर देखन को एक्सरे मशीन है लाये,
बोले डाक्टर देखा ध्यान लगाये ।
नानावटी अस्पताल मे ले के आओ ।
पूछा मुनियो से क्या आज्ञा फरमाओ ।।

कहे मुनि नाजुक हालत यही की सुझ है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ।। ८ ।।

बोले श्रावक सघ स्थिति मत देखो,
हो सेवा का निज भाव परिस्थिति पेखो ।
इससे भी नाजुक केस कही उद्धरते ।
पर टाइम लेता अधिक बिमारी हरते ।।

कहे जीत यह आप हमारे अनुज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ।। ९ ।।

है डाक्टरीय सिद्धान्त श्वास अन्तिम तक,
इलाज करते जाने की नहि तजते तक ।
किन्तु साधु हम ऐसे वक्त न खोते ।
है सावधानी पर्यंत सभी कुछ होते ।।

तब तक तो विधिया धरे धर्मी की धुज है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ।।१०।।

तव बोले श्रावक सघ श्रावक डाक्टर गण,
रहे आप नि शक हमारा है प्रण ।
रहे आप अति देश जहा रोगी को ।
नही मरण सिवा कोइ शरण दु खभोगी को ।।

यह बम्बई है कइ साधन विशेषी सुझ है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ।।११।।

इनकी तो बात सामान्य न खास बिमारी,
सुन चुकने पर भी वाणी जीत उचारी ।
कही ऐसा नहि हो जाय आप तथापि ।
रहो करते ही उपचार प्रयोग अमापि ।।

हम तम मे ही रह जाये समय नहिं बुझ है ।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ।।१२।।

बोले डाक्टर लोग हम भी श्रावक है,
ऐसी न चलेगी पोल धर्मभावक है।
देखेगे वैसी बात चेता ही देगे।
और क्रिया सभी जो होगी करवा देगे ॥

तय रहा होस्पिटल जाना उलझ सुलझ है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१३॥

स्वामी जी कहे मुझे सथार दिरावो।
तब डाक्टर बोले भले यथेच्छ पचखावो।
खुद ने किया पचखाण न खाना पीना।
ऊपर का उपचार छूट रख लीना ॥

हो जैसा भावी भाव वही सुसमझ है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१४॥

कई नलिया लगाई गइ समय मर्यादा,
कइ दाब चाप कर लिए अल्प और ज्यादा।
बीता सातम सोम दिनाक अठाइस दश।
कुछ सुधार जैसी बात न आई दृग वश ॥

स्वामी जी हाथ मे माला प्रभु को भज है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१५॥

करते रहे स्वाध्याय ध्यान निज चिन्तन।
स्तोत्र पाठ नित नियम मौन और मनन।
देवसिय और राइय किय पडिकमणा।
छोड दूसरी बात आतम मे रमणा ॥

शुभ पारस दिन-रात नहि तज है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१६॥

आठम मगलवार दिनाक उनतीसा,
कार्तिक शुक्ल का पक्ष साल पच्चीसा।
साढे आठ बज गये बोलते डाक्टर।
यह सुप्रभात है अब मत चूको अवसर ॥

मुनि जीतमल्ल महाराज साज दिये सज है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१७॥

सावचेत सवतरह स्वामी जी तब थे।
सथारा चौविहार पच्चखाये जब थे।
घटा सवा अनुमान रही वह वेला।
व्याख्यान हॉल के माय खतम हुआ खेला॥
निर्वाणवर्ति काउसग्ग किया मुनि रज है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१८॥
यह ढाल परनमी हुई यहा पर पूरी।
देहिक जीवन लीला रही न अधूरी।
ऊठ गया सिर क्षत्र जीत यहा हारा।
आयुष्य कर्म के क्षये लगे न सहारा॥
लाल वदन था स्याह रही न सुध मुझ है।
क्यो सोया रखते आप मुझे क्या रुज है ॥१९॥

दूहा

शुभ के उदय भयो अशुभ, पारस भी रसहीन।
गुरु वियोग को अनुभवे, यह दुख तिमिर नवीन ॥ १ ॥
पाठ प्रेम सू देवणो, सुणणो कने बिठाय।
पिछली रात उठाय के, देणा सभी गुणाय ॥ २ ॥
पग-पग पर चेतावणा, रग-रग मे रस नीति।
जग-जग कह जगावणा, भग-भग भ्रम सू भीति ॥ ३ ॥
यद्यपि गुरु जन कोई भी, कमी आवण दे नाय।
पण गुरु समता कर सके, नर ऐसो जग नाय ॥ ४ ॥
सब सुख तज सेवा करी, देख्या घणाय दुख।
पण जीवित नहिं रख सक्या, अब कित देखा मुख ॥ ५ ॥
देहरासर रो उपासरो, स्थानक रे पाडोस।
भानुविजय जी पूज्य श्री, आये प्रेम को पोष ॥ ६ ॥
जीत मुनि, मुनि लाल को, औ दोनो लघु को हि।
यथायोग्य दिय सात्वना, आश्वासन कीनो हि ॥ ७ ॥
निज विधि श्रावक सघ किय, प्रातिवेश्मिक मिलाय।
देह दाहना वार बुध, नवमी दिवस कराय ॥ ८ ॥
समाधि शरण की सूचना, पहुची देश विदेश।
टेलीग्राम ट्रंकोल वलो, रेडियो कह्यो विशेष ॥ ९ ॥

प्लेना ट्रेना मोटरा, कारा साधन हूत।
सर्व प्रात रा भक्त जन, प्रेम समेत पहून ॥ १० ॥
अचरज सब अवलोकियो, हल्को हुओ शरीर।
कृश कृशतर होतो गयो, ज्यो वद पक्ष सुधीर ॥ ११ ॥
जन समद उलट्यो जबर, शवयात्रा दरम्यान।
फोटोग्राफर पग पगे, छवियां लीवी छान ॥ १२ ॥
ही वाडी वाघ जी तणी, श्मशान को अभिधान।
वहा ले गये औ किया, काया का कल्याण ॥ १३ ॥

कला—सोलहवी, तर्ज—कांगसिया

इण उग्र विहार रो ह्लावो चाँद स्वामी जी ले गया रे।
ले गया ले गया ले गया रे, म्हाने विरहो दे गया रे ॥ टेर ॥

पीपलिया मे जन्म्या हा वे दीक्षा रायपुर लीधी रे।
स्वामी नाथ ज्याने बतलाई शिवपुर सडका सीधी रे ॥
वे उण पर ह्वे गया रे ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरित्र ये तीन रतन सग्रहिया रे।
समता क्षमता और कई गुण पूरा वा मे भरिआ रे ॥
वे मध्यस्थ हो गया रे ॥ २ ॥

तन सू तो वे विचर्या हा निर्मोही ज्ञान बतायो रे।
पण आतम गुण री विधिया सू सब मे स्थान जमायो रे ॥
जन मन मे रस गया रे ॥ ३ ॥

मरुधर सू मेवाड होय गुजरात बम्बई आया रे।
महाराष्ट्र ने मध्यप्रदेशे जिन शासन चमकाया रे ॥
सब याद कर रह्या रे ॥ ४ ॥

आंध्र और मद्रास बैंगलोर कृपा आप वरसाई रे।
पाछा विलेपारले आता अन्तरात्म हरसाई रे ॥
युग पूरा ह्वे गया रे ॥ ५ ॥

उग्र विहार ने सहनशीलता वचन माधुरी पूरी रे।
पूर्ण चौमासो स्थिरता छह दिन कीकर रखी अधूरी रे ॥
कारण नहि कह गया रे ॥ ६ ॥

सथारो कर सवा कलाक रो मृदु मुस्कान विखेरी रे ।
म्हाने सब ने छोड सिधार्या देह नेह खखेरी रे ।।
सब जोता ही रह गया रे ।। ७ ।।

जीत मुनि मुनि लाल सामने चेला आवेहूवारे ।
शुभ मुनि पारस मुनि दोय ए डावा जीमणा ऊभा रे ।।
शुभ दृष्टि दे गया रे ।। ८ ।।

उणा जिसा गुणवान वणा म्हे कर शासन री सेवा रे ।
आतम रो कल्याण करा पण कोई सू न लेवा देवा रे ।।
मन एम ह्वे रह्या रे ।। ९ ।।

सभी जगह रा लोग आज मिल श्रद्धाजलिया देवे रे ।
स्वामी जीतमल्ल आज्ञा दी श्रमण लाल यू केवे रे ।।
गुण लारे रे गया रे ।।१०।।

समाप्ति कलश

यह ज्ञान दर्शन चरण स्पर्शन कर्म घर्षण ठानिये,
सुगुरु मुख मे सत्य रुख से सुक्ख से पहचानिये ।
सदुपदेशक तद्गवेषक बेशक जो उपकारक,
आचार्य जयमल राय खलदल पल पल के उद्धारक ।।
स्वामी कुशाल विशाल मन के शिष्य श्री भगवान थे,
तच्छिष्य सूरजमल्ल तदनुग स्वामि नाथ सुजानिये ।
शिष्य तीजे गुण गहीजे चान्द स्वामी जी हुए,
मम गुरु श्री बखत के जो गुरुभाई है हुए ।।
जीवन चरित उनका बनाऊ थी कभी की भावना,
गाय गुण उपकारि के निज चरित को सरसावना ।
दो हजार पैंतीस कार्तिक सिताष्टमि दिन आ गया,
खागटा शुभ गाम मे यह काम पूरा हो गया ।।
जो सुनेगा औ पढेगा मढेगा अपने हृदय,
श्रमण लाल सदा रहेगा वह अभय औ सौख्यमय ।

लिपिचित्र (१) किशोर केलि   बारह वर्ष की अवस्था मे वैरागीपने मे किशोर केलि करते हुए स्वामी जी के हस्ताक्षर।

लिपिचित्र (३) स्तवन पत्र का अन्तिम पृष्ठ दीक्षा ग्रहण करने के छह वर्ष बाद विक्रम सवत् १६७१ मे स्वामी जी द्वारा लिखित अपने गुरुवर्य स्वामी जी श्री नथमल जी महाराज द्वारा विरचित स्तवनो का सग्रह ।

लिपिचित्र (५) अपकर्ष पत्र का प्रथम एव अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् १९८२ मे लिखित स्वामी जी के शास्त्रीय हस्ताक्षर।

नित्यवादे विनाशवादेऽपि समास्त एव परस्परध्वंसिषु कण्टकेषु जयत्यधृष्यं जिनशासन
ते २६ नैकान्तवादे सुखदुःखभोगौ न पुण्यपापे न च बन्धमोक्षौ दुर्नीतिवादव्यसनासिनैवं
परैर्विलुप्तं जगदप्यशेषम् २७ सदेव सत्स्यात्सदिति त्रिधार्थो मीयेत दुर्नीतिनयप्रमाणैः य
थार्थदर्शी तु नयप्रमाणपथेन दुर्नीतिपथं त्वमास्थः २८ मुक्तोऽपि वाऽभ्येतु भवं भवो वा भव
स्थशून्योऽस्तु मितात्मवादे षड्जीवकायं त्वमनन्तसंख्यमाख्यस्तथा नाथ यथा न दोषः २
९ अन्योन्यपक्षप्रतिपक्षभावात् यथा परे मत्सरिणः प्रवादाः नयानशेषानविशेषमिच्छन् न पक्षपा
ती समयस्तथा ते ३० वाग्वैभवं ते निखिलं विवेक्तुमाशास्महे चेन्महनीयमुख्य लङ्घेम जङ्घालत
या समुद्रं वहेम चन्द्रद्युतिपानतृष्णाम् ३१ इदं तत्त्वातत्त्वव्यतिकरकरालेऽन्धतमसे जगन्मायाकारै
रिव हतपरैर्हा विनिहितम् तदुद्धर्तुं शक्तो नियतमविसंवादिवचनस्त्वमेवातस्त्रातस्त्वयि कृ
तसपर्याः कृतधियः ३२ इति स्याद्वादमंजरी नाम्नी लिपिकृतं ऋषि ... लालचन्द्र ...

लिपिचित्र (६) स्याद्वाद मजरी का अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् १९८३-८४ के मध्य स्वामी जी द्वारा वर्तमान पडित मुनि श्री लालचन्द जी महाराज के लिए लिखित।

लिपिचित्र (७-क) उत्तराध्ययन, हरिकेशीयाध्ययन, खरतरगच्छीय कमलसयमोपाध्याय विरचित सर्वार्थसिद्धि नामक टीका · विक्रम सवत् २००१ में वर्तमान आचार्य-प्रवर श्री जीतमलजी महाराज के लिए स्वामी जी द्वारा लिखित ।

लिपिचित्र (७-ख) वीरस्तुति सटीक, अन्तिम पृष्ठ विक्रम सवत् २००१ मे
स्वामी जी द्वारा लिखित ।

लिपिचित्र (८) मन्त्रावलि पत्र का तरहवा पृष्ठ